



रस

श्री तारतम वाणी

# श्री रास

टीका व भावार्थ

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

[www.spjin.org](http://www.spjin.org)

सर्वाधिकार सुरक्षित (चौपाई छोड़कर)

© २०१४, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण — २०१८

## प्रस्तावना

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी के दिल में इल्म के अनन्त सागर हैं। उनकी एक बूँद महामति के धाम-हृदय में आयी, जो सागर का स्वरूप बन गई, इसलिये कहा गया "नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी रोसन" अर्थात् ज्ञान के सागर के रूप में यह तारतम वाणी है जो मारिफत के ज्ञान का सूर्य है। यह ब्रह्मवाणी सबके हृदय में ब्रह्मज्ञान का उजाला करती है।

"हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन अक्षरशः सत्य है। इस ब्रह्मवाणी की अलौकिक ज्योति सुन्दरसाथ के हृदय में माया का अन्धकार कदापि नहीं रहने देगी। इस ब्रह्मवाणी की थोड़ी सी अमृतमयी बूँदों का भी रसास्वादन करके जीव अपने लिये ब्रह्म-साक्षात्कार एवं अखण्ड मुक्ति का दरवाजा खोल सकता है।

इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अवतरित इस ब्रह्मवाणी का टीका सरल भाषा में प्रस्तुत हो। यद्यपि वर्तमान में अनेकों सम्माननीय मनीषियों की टीकायें प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी भी टीका हो, जो विश्लेषणात्मक हो, सन्दर्भ, भावार्थ, स्पष्टीकरण एवं टिप्पणियों से युक्त हो।

मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये यह कदापि सम्भव नहीं था, किन्तु मेरे मन में अचानक ही यह विचार आया कि यदि कबीर जी और ज्ञानेश्वर जी जैसे सन्त अपने योगबल से भैसे से वेद मन्त्रों का उच्चारण करवा सकते हैं, तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मेरे से टीका की सेवा क्यों नहीं करवा सकते? इसी आशा के साथ मैंने अक्षरातीत श्री जी के चरणों में

अन्तरात्मा से प्रार्थना की।

धाम धनी श्री राजश्यामा जी एवं सद्गुरु महाराज श्री रामरतन दास जी की मेहर की छाँव तले मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा ने मुझे इस कार्य में दृढ़तापूर्वक जुटे रहने के लिये प्रेरित किया। इन सबका प्रतिफल यह टीका है।

सभी सम्माननीय पूर्व टीकाकारों के प्रति श्रद्धा –सुमन समर्पित करते हुए मैं आशा करता हूँ कि यह टीका आपको रुचिकर लगेगी। सभी सुन्दरसाथ से निवेदन है कि इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधार कर मुझे भी सूचित करने की कृपा करें, जिससे मैं भी आपके अनमोल वचनों से लाभ उठा सकूँ एवं अपने को धन्य – धन्य कर सकूँ।

आप सबकी चरण-रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा

जिला- सहारनपुर, उ० प्र०

## अनुक्रमणिका

प्र.	विषय	पृष्ठ
	अनुभूमिका	१३
१	हवे पेहेलां मोहजलनी कहुँ वात	३४
२	माया गई पोताने घेर	१३९
३	भूंडा जीव जागजे रे	१६९
४	प्रेम सेवा वाले प्रकट कीधी	१९९
५	एणे पगले आपण चालिए	२०९
६	अखंड सरूपनी अस्थिर आकारे (श्री ठकुराणीजीनो सिणगार)	२४३
७	जोगमाया नो देह धरीने (श्री साथनों सिणगार)	३०७
८	पेहेलो सिनगार कीधो मारे वालेजीए (श्रीराजजीनों सिणगार)	३१७

९	वालैयो वाणी एम उचरेजी (उथला)	३५७
१०	जीवन सखी वृंदावन रंग जोइएजी (वृंदावन देखाडयूं छे)	३९७
११	वाले वेख लीधो रलियामणो (रामत पेहेली)	४१७
१२	मारे वालैए करी उमंग	४३१
१३	वालैयो रमाडे रे	४४०
१४	आवोरे सखियो आपण हमची खूंदिए	४५४
१५	वाला आपण रमिए आंख मिचामणी	४५९
१६	सखी वृखभान नंदनी	४७०
१७	ओरो आव वाला आपण फूंदडी फरिए	४८५
१८	भूलवणीनी रामत कीजे	४९१
१९	आज राज पूरण काज	४९६
२०	रामत गढ़ तणी रे	५०४



२१	रामत करतालीनी रे	५१०
२२	उमंग उदयो साथ	५१५
२३	ओरो आव वाला आपण घूमडले घूमिए	५२३
२४	कोणियां रमिए रे मारा वाला	५२८
२५	आवो वाला रामत रासनी कीजे	५३५
२६	सखी एक भांत रे	५४२
२७	रामत आंबानी कीजे मारा वालैया	५४७
२८	रामत उड़न खाटलीनी	५५४
२९	वाला तमे निरत करो मारा नाहोजी रे	५६०
३०	मृदंग चंग, तंबूर रंग, अति उमंग	५६७
३१	हमचडी सखी संग रे	५७४
३२	वृंदावनमां रामत करतां (रामत अंतरध्याननी)	५८५
३३	आनंदे रोतां रमिए एम	६२७

३४	उछरंग अंग सुंदरी	६५२
३५	आपण रंग भर रमिए रास	६६०
३६	रमत रास करत हांस	६६८
३७	जुओ रे सखियो तमे वाणी वालातणी	६७४
३८	बलियामां दीसे बल	६८२
३९	आवी केसरबाई कहे रे बेहेनी (केसरबाईनो झगड़ो)	६९३
४०	छेड़ो न छटके, अंग न अटके	७०३
४१	ऊभा ने रहो रे वाला ऊभा ने रहो	७२०
४२	एणे समे रामत गमे	७३४
४३	छेल छंछेरीने लीधी बाथ जुगते	७४१
४४	सखी सखी प्रते स्याम	७४८
४५	अणी हारे झीलण रंग सोहांमणां रे (झीलणां)	७५२

४६ फरतण फेर बाजोटिया (भोग) ७७०

४७ वाला वालमजी मारा ७८२

निजनाम श्रीकृष्ण जी, अनादि अछरातीत।  
सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहीत॥१॥  
श्री स्यामा जी वर सत्य हैं, सदा सत सुख के दातार।  
विनती एक जो वल्लभा, मो अंगना की अविधार॥२॥  
वानी मेरे पिउ की, न्यारी जो संसार।  
निराकार के पार थें, तिन पार के भी पार॥३॥  
अंग उत्कण्ठा उपजी, मेरे करना एह विचार।  
ए सत वानी मथ के, लेऊँ जो इनको सार॥४॥  
इन सार में कई सत सुख, सो मैं निरने करूँ निरधार।  
ए सुख देउं ब्रह्मसृष्ट को, तो मैं अंगना नार॥५॥  
जब ए सुख अंग में आवहीं, तब छूट जाए विकार।  
आयो आनन्द अखण्ड घर को, श्री अछरातीत भरतार॥६॥

## रास

श्री प्राणनाथ जी मन्दिर (गुम्मत जी) पन्ना में विराजमान तारतम वाणी की मूल प्रति में रास ग्रन्थ में छठी चौपाई नहीं है तथा श्री श्यामा जी के स्थान पर "श्री देवचन्द्र जी सत्य छे" लिखा हुआ है।

ऐसी मान्यता है कि जब अक्षरातीत श्री राज जी श्री देवचन्द्र जी (श्री श्यामा जी) को श्याम जी के मन्दिर में दर्शन देकर उनके धाम हृदय में विराजमान हुए, तो मात्र एक चौपाई का तारतम—

**"निजनाम श्री कृष्ण जी, अनादि अछरातीत।**

**सो तो अब जाहेर भये, सब विध वतन सहीत।।"**  
अवतरित हुआ। किन्तु यह चौपाई उस समय अवतरित हुई, जब श्री देवचन्द्र जी श्याम जी के मन्दिर से चलकर अपने घर (श्री राज मन्दिर) आये। श्याम जी के मन्दिर

में तो धाम धनी के साथ केवल वार्ता ही हुई थी।

दूसरी, तीसरी, चौथी, व पाँचवी चौपाई दीवबन्दर में श्रीजी के मुखारविन्द से उस समय प्रकट हुई, जब वे जयराम कन्सारा को जाग्रत करने के लिए दीवबन्दर गये हुए थे।

जब अनूपशहर में प्रकाश हिन्दुस्तानी का अवतरण हुआ, तो प्रकट वाणी में पाँच चौपाइयों के साथ छठवीं चौपाई भी जुड़ गई।

इस प्रकार, तब से ये छः चौपाइयों का पूर्ण तारतम माना जाने लगा। किन्तु, यह वही अनूपशहर है, जहाँ सनद की वाणी अवतरित हुई। जब श्रीजी ने शेख बदल जी को दिल्ली की जामा मस्जिद में सनद सुनाने के लिए भेजा तो उसमें "निजनाम श्री कृष्ण जी" की जगह "निजनाम श्री जी साहिब" होना जरूरी था, क्योंकि

कट्टर शरातौरा की राह पर चलने वाला औरंगज़ेब बादशाह श्री कृष्ण जी के नाम से सहमत ही नहीं हो सकता था। सनद ऐसा ग्रन्थ है जो सारे विश्व को (वेद-कतेब की मान्यताओं को) एक सत्य के झण्डे के नीचे लाने का सामर्थ्य रखता है। यही कारण है कि कलश हिन्दुस्तानी के हिन्दू पक्ष से सम्बन्धित बारह प्रकरण भी सनद के अन्दर दिए गए हैं।

इस प्रकार सनद वाणी में हिन्दू-मुस्लिम (वेद-कतेब) दोनों ही पक्षों की दार्शनिक समीक्षा हो जाती है।

यदि सैद्धान्तिक रूप से देखा जाए तो विक्रम सम्वत् १७३५ के पश्चात् श्यामा जी के स्वामित्व (बादशाही) के ४० वर्ष प्रारम्भ होते हैं और इस प्रकार श्री महामति जी को पूर्ण ब्रह्म अक्षरातीत कहलाने की शोभा प्राप्त होती है।

पूर्ण ब्रह्म सारे विश्व का है, इसलिए वेद-कतेब की दोनों

धाराओं को मिलाकर तारतम में "श्रीजी साहिब" के नाम की जो शुरुआत हुई, वह अन्तिम ग्रन्थ मारिफत सागर तक चलती गई। हिन्दी व संस्कृत में "श्रीजी" का अर्थ जहाँ अनन्त शोभा से सम्पन्न परब्रह्म होता है, वहीं कतेब परम्परा में "साहेब या साहिब" होता है। अंग्रेजी में भी इसे साहब (Sahab) कहते हैं।

सनद वाणी के प्रकाश में श्री प्राणनाथ जी अक्षरातीत के रूप में मात्र हिन्दू समाज के ही आराध्य नहीं रहे, बल्कि सारे विश्व के पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द के रूप में पहचाने गए। यही कारण है कि हब्शे में अवतरित प्रकाश गुजराती में जहाँ "निजनाम श्री कृष्ण जी" की छाप रहेगी, वहीं अनूप शहर में अवतरित प्रकाश हिन्दुस्तानी में "निजनाम श्री जी साहिब जी" की छाप रहेगी, तथा सूरत में अवतरित कलश गुजराती में "निजनाम श्री कृष्ण जी" की छाप



रहेगी, व अनूप शहर में अवतरित कलश हिन्दुस्तानी में "निजनाम श्री जी साहिब जी" की छाप रहेगी।

इस सिद्धान्त के अनुसार रास, प्रकाश गुजराती, षटक्रतु, कलश गुजराती, और किरंतन, इन पाँच ग्रन्थों में सर्वत्र "निजनाम श्री कृष्ण जी" की ही छाप रहेगी, तथा शेष अन्य ग्रन्थों— प्रकाश हिन्दुस्तानी, कलश हिन्दुस्तानी, सनद, खुलासा, खिलवत, परिक्रमा, सागर, श्रृंगार, सिंधी, मारिफत सागर, तथा कियामतनामा में सर्वत्र "निजनाम श्री जी साहिब जी" की छाप रहेगी।

यदि, अब प्रश्न किया जाये कि किसी भी सम्प्रदाय में दो मन्त्र नहीं होते हैं, तो इसका उत्तर यह है कि तात्त्विक दृष्टि से तारतम धनी की पहचान है। यदि हम बीतक के कथन "मंत्र तारतम सोय" के कथन के आधार पर मन्त्र

भी मानें, तो एक ही रामानुज सम्प्रदाय में कई मन्त्र देखने में आते हैं, जैसे—

१. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

२. ॐ नमो नारायणाय।

३. श्री रामानुज शरणं प्रपद्ये।

रामानुज सम्प्रदाय की ही रामानन्द शाखा में मन्त्रों की भरमार है और निर्विवाद रूप से सभी वैष्णव उसे स्वीकार करते हैं, जैसे—

१. सीता रामाभ्यां नमः

२. ॐ रां रामाय नमः

३. श्री रामः शरणं मम्

४. ॐ हं हनुमते नमः

इसी प्रकार राम—लक्ष्मण, भरत, सीता, शत्रुघ्न,

हनुमान, आदि के नाम से अलग-अलग गायत्री मन्त्र भी बनाये गए।

मन्त्र का उद्देश्य यथार्थ सत्य को दर्शाना होता है, किन्तु जब कर्मकाण्ड की ओट में रूढ़िवादिता की चादर ओढ़ ली जाती है, तो विवादों की श्रृंखला शुरू हो जाती है, जो कभी थमने का नाम नहीं लेती। तारतम वाणी के प्रकाश में यदि हम विवेक दृष्टि से देखें तो हमें दोनों तारतमों (निजनाम श्री कृष्ण जी, निजनाम श्री जी साहिब जी) को मानना युक्तिसंगत है।

रास ग्रन्थ को छोड़कर प्रायः सभी ग्रन्थों में तारतम की केवल एक चौपाई मंगलाचरण के रूप में लिखी जाती है।

प्रायः इस चौपाई का यही अर्थ किया जाता है—

श्री राज जी श्री देवचन्द्र जी के सामने प्रकट होकर कहते हैं— "मेरा नाम श्री कृष्ण है, मैं अनादि हूँ, तथा

अक्षर से भी परे अक्षरातीत हूँ।" किन्तु इस प्रकार का कथन उचित नहीं है, क्योंकि दूसरी पंक्ति में कहा गया है कि "सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहीत।" यह कथन प्रथम पुरुष (3<sup>rd</sup> person small) में कहा गया है। जबकि प्रथम पंक्ति को उत्तम पुरुष (1<sup>st</sup> person small) में कहा हुआ माना जा रहा है।

यदि यह कहा जाये कि पहली पंक्ति श्री राज जी ने कही है, व दूसरी पंक्ति श्यामा जी ने कही है क्योंकि पहली पंक्ति में सोलह अक्षर पूरे हो जाते हैं, इसलिए दूसरी पंक्ति श्यामा जी की कही हुई मानी जायेगी।

इस प्रकार का कथन पद्म पुराण का है, जिसके चूड़ामणि मन्त्र में (१६) सोलह अक्षर कहे गए हैं। ऐसी मान्यता वेद-शास्त्रों के विपरीत पौराणिक है। क्या हमारे आराध्य गोलोकवासी हैं कि हमें तारतम के प्रमाण के

लिए पद्म पुराण का आधार लेना पड़े। गायत्री मन्त्र में "भूभुवः स्वः" का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ "सत-चिद्-आनन्द" होता है। जब गायत्री मन्त्र में चौबीस अक्षर (२४ अक्षर) हो सकते हैं, तो तारतम मन्त्र में सोलह अक्षरों की सीमा रेखा क्यों? वेद में जगती छन्द में लिखे गए मन्त्र ४८ अक्षरों के होते हैं। इस प्रकार यह कथन पूर्णतया निराधार है कि मन्त्र में सोलह अक्षर से ज्यादा नहीं हो सकते।

अथ तारतम की छह चौपाइयों का अर्थ इस प्रकार है—

**निजनाम श्रीकृष्ण जी, अनादि अछरातीत।**

**सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहीत॥१॥**

श्यामा जी कहती हैं— जो सच्चिदानन्द परब्रह्म अनादि है, अक्षर से भी परे अक्षरातीत है, ब्रज-रास में जिन्होंने

श्री कृष्ण नाम को धारण करके लीला की, वे ही अब मेरे धाम हृदय में परमधाम के सम्पूर्ण ज्ञान के साथ प्रकट (विराजमान) हुए हैं। इसी प्रकार जब इन्द्रावती जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान होते हैं, तो वे कहती हैं कि जो सच्चिदानन्द परब्रह्म अनादि है, तथा अक्षर से परे "अक्षरातीत" है, वे इस जागनी ब्रह्माण्ड में मेरे धाम हृदय में परमधाम की सम्पूर्ण निधियों के साथ विराजमान हुए हैं, तथा इस जागनी ब्रह्माण्ड में हिन्दुओं (हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिख, आदि) के लिए "श्रीजी" के रूप में तथा कतेब परम्परा के अनुयायियों (मुस्लिम, क्रिश्चियन, यहूदी, आदि) के लिए "साहिब जी" के रूप में प्रकट हुए हैं।

यदि यह संशय किया जाये कि पहले तारतम में श्यामा जी का कथन है, जबकि दूसरे तारतम में इन्द्रावती जी

का कथन है तो क्या इस प्रकार के विरोधाभास से श्यामा जी के तन से अवतरित तारतम की अवहेलना नहीं होती?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि इस प्रकार की बात तो तब हो, जब "श्री देवचन्द्र जी" या "श्री मिहिरराज" ने तारतम कहा हो।

जब तारतम वाणी में इन्द्रावती जी स्वयं कहती हैं—

"मेरी बुधें लुगा न निकसे मुख, धनी जाहेर करें अखंड घर सुख।"

प्र. हि. २९/७

"आ वचन मेहराजें प्रगट न थाय।" प्र. गु. ४/१४

"जिन कोई देओ महामती को दोष।" प्र. हि. ४/१३

"ए वचन महामती से प्रगट न होए।" प्र. हि. ४/१४

तो यह कैसे कहा जा सकता है कि श्री इन्द्रावती जी ने तारतम कहा है। वास्तविकता तो यह है कि श्री राज जी

ने ही दोनों तनों में विराजमान होकर तारतम कहवाया है। स्वरूप को छोड़कर रूप की भ्रान्ति में पड़ने से ही इस तरह की मान्यताएँ प्रचलित हो जाती हैं कि अमुक तारतम श्री देवचन्द्र जी ने कहा है तथा अमुक तारतम श्री महामति जी ने कहा है। जब बीतक मे स्पष्ट रूप से कह दिया गया है कि "ए रसना श्यामा जी की, पिलावत रस रब का", तो यह निश्चित है कि दोनों तनों में विराजमान होकर श्री राज जी ही सब कुछ कर रहे हैं। कहने की शोभा भले ही दोनों तनों को दे रहे हैं।

श्री स्यामा जी वर सत्य हैं, सदा सत सुख के दातार।

विनती एक जो वल्लभा, मो अंगना की अविधार॥२॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि श्री श्यामा जी के प्रीतम आप अक्षरातीत परम सत्य हैं और हमेशा अखण्ड सुख



को देने वाले हैं। मेरे प्रियतम! आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझ अंगना को स्वीकार कीजिए, अर्थात् प्रेम की छत्रछाया में रखिए। (यह कथन दीवबन्दर में जयराम कन्सारा को सम्बोधित करते हुए कहा गया है, जो "श्री देवचन्द्र जी सत्य छे" अर्थात् "श्री देवचन्द्र जी सत्य हैं" का रूपान्तरण है)

**वानी मेरे पिउ की, न्यारी जो संसार।**

**निराकार के पार थें, तिन पार के भी पार॥३॥**

मेरे धाम धनी! आपके द्वारा कहा हुआ परमधाम की वाणी रूपी यह तारतम ज्ञान संसार की अन्य ज्ञान धाराओं से अलग है, क्योंकि यह जाग्रत बुद्धि का ज्ञान है। इस तारतम ज्ञान में आपके उस स्वरूप की पहचान करायी गयी है, जो निराकार, बेहद, एवं अक्षर से भी परे

अक्षरातीत हैं।

**विशेष-** यद्यपि हब्शे में रास , प्रकाश, षट्क्रतु, एवं कलश गुजराती की दो चौपाइयों का वर्णन हो चुका था, किन्तु इस चौपाई में "वाणी मेरे पिऊ की" के कथन का तात्पर्य श्री राज जी के उन वचनों से है, जो दोनों तनों से कहे गए। चाहे "श्री देवचन्द्र जी" के द्वारा चर्चा के रूप में कहे गए हों, या श्री इन्द्रावती जी के द्वारा हब्शे में कहे गए हों।

**अंग उत्कण्ठा उपजी, मेरे करना एह विचार।**

**ए सत वानी मथ के, लेऊँ जो इनको सार॥४॥**

मेरे प्राणेश्वर! आपकी प्रेरणा से आपके कहे हुए वचनों का विचार करने से मेरे हृदय में यह इच्छा उत्पन्न हुई है कि आपकी कही हुई वाणी (तारतम ज्ञान) का मैं गम्भीर

चिन्तन करुं और उसके सार तत्त्व को ग्रहण करुं।

इन सार में कई सत सुख, सो मैं निरने करूँ निरधार।

ए सुख देउं ब्रह्मसृष्ट को, तो मैं अंगना नार॥५॥

उस सार तत्त्व में परमधाम के अनेकों प्रकार के अखण्ड सुखों का रस छिपा हुआ है। इसलिए अब मैं यह अटल प्रतिज्ञा करती हूँ कि उन सुखों को आत्माओं तक पहुँचाऊँ, तभी मैं धाम धनी की अर्धांगिनी कहलाने का अधिकार रख सकती हूँ।

**भावार्थ-** तारतम का सार है- आत्म-जाग्रति अर्थात् अपने आत्म-चक्षुओं से युगल स्वरूप एवं अपनी परात्म को देखना। "जब हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए।" (श्रृंगार ४/१)

किन्तु जागनी का सार है- आत्म-दृष्टि से अपने और

धनी के स्वरूप की यथार्थ पहचान। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के पश्चात् परमधाम के आठों सागरों का रस हृदय में प्रवाहित होने लगता है।

इसे ही तारतम की ५वीं चौपाई में परमधाम के अखण्ड सुख के नाम से वर्णित किया गया है और इसे ही अन्य ब्रह्मात्माओं तक पहुँचाने की प्रतिज्ञा की गयी है।

प्रतिज्ञा की इस कसौटी पर स्वयं को खरा सिद्ध न कर पाने वाला वस्तुतः सुन्दरसाथ कहलाने का अधिकारी नहीं है। हमें आत्म-मन्थन करना होगा कि हम इस प्रतिज्ञा को स्वयं कितने अंशों में पूरा कर पा रहे हैं।

जब ए सुख अंग में आवहीं, तब छूट जाए विकार।

आयो आनन्द अखण्ड घर को, श्री अछरातीत भरतार॥६॥

जब हृदय में परमधाम के अखण्ड सुखों का रस

प्रवाहित होने लगता है, तो मायावी विकारों का लेश मात्र भी अस्तित्व नहीं रह जाता है, क्योंकि उस समय हृदय में परमधाम के अखण्ड सुखों की वर्षा होने लगती है। अक्षरातीत श्री राज जी ही हमारी आत्मा के आधार हैं। इसलिए वे अपने हृदय का बहता हुआ रस हमारी आत्मा के धाम हृदय में उड़ेल देते हैं।

**भावार्थ-** अक्षरातीत का सुख सर्वप्रथम आत्मा के धाम हृदय में आता है, जिसका अंश मात्र ही जीव का हृदय ग्रहण कर पाता है, किन्तु वह ही उसके लिए अनन्त होता है। इस सम्बन्ध में किरंतन ७३ / ७ ग्रन्थ में कहा गया है- "जो सुख परआत्म को, सो आत्म न पोहोंचत।"

इस दृष्टि से आत्मा व जीव दोनों का ही हृदय ब्रह्मानन्द को अनन्त के रूप में ग्रहण करता है।

श्री श्री श्री ग्रंथ रास किताब अंजील वाणी पुरानी

प्रमोधपुरी हब्सा मध्य उतरी सो शुरू हुई॥ चाल॥

अक्षरातीत परब्रह्म ने अपने आनन्द अंग श्री श्यामा जी एवं आत्माओं के साथ केवल ब्रह्म के आनन्द योगमाया के ब्रह्माण्ड में प्रेम के विलास की लीला की थी, जिसका इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है। हिन्दू पक्ष में उस अद्वैत प्रेममयी लीला का वर्णन श्रीमद्भागवत् के "पंचाध्यायी रास" के अन्तर्गत है, किन्तु इसमें भी प्रतिबिम्ब की लीला का ही वर्णन है, वास्तविक महारास का नहीं। इसी आधार पर इस ग्रन्थ का नाम "रास" ग्रन्थ भी रखा गया है।

तब भागे जोस कही पंच अध्याई, रास बरनन ना हुआ तिन ताई॥

प्रकाश हिन्दुस्तानी ३३/२०

वस्तुतः रास ऋग्वेद के इस कथन का ही फलीभूत रूप

है- "यदग्रे स्याम अहम् त्वम् त्वम् वा धा स्यामहम्।"  
अर्थात् हे परब्रह्म जो तू है, वह मैं हो जाऊँ, और जो मैं  
हूँ, वह तू हो जा।

तैत्तरीय उपनिषद में कहा गया है - "रसो वै सः",  
अर्थात् वह परब्रह्म रस रूप है। प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य,  
एकत्व, आदि का वह घनीभूत रूप परब्रह्म अपनी  
अंगरूपा आत्माओं के साथ वैसी ही क्रीड़ा करने लगे,  
जैसे सागर अपनी लहरों के साथ करता है, तो उसे ही  
"रास" कहते हैं।

रास का तात्पर्य मात्र बाह्य अंगों से होने वाली नृत्य  
आदि की क्रीड़ा नहीं, बल्कि अक्षरातीत के हृदय से बहने  
वाली रसधारा का आत्माओं के हृदय में प्रवाहित होना  
ही रास है। कतेब पक्ष में बाइबिल में प्रेम तत्त्व को दर्शाया  
गया है। Old Testament में सुलेमान के सर्वश्रेष्ठ गीतों में

परब्रह्म को वर एवं आत्मा को वधु के रूप में चित्रित किया गया है। New Testament में भी इसी प्रकार का प्रसंग है। इस प्रकार बाइबल का सार है— Supreme Truth God is Love. इसी तथ्य के अनुसार इस ग्रन्थ को पुरानी इन्जील वाणी कहा गया है।

कुरआन के सिपारा १६ सूरा १९ में हब्से के प्रसंग का वर्णन है। इसमें यह बात दर्शायी गयी है कि अफ्रीका के हब्शे (इथोपियो) का बादशाह मुहम्मद साहिब के साथियों के मुख से कुरआन के सोलहवें पारे को सुनकर अल्लाह तआला के विरह में डूब गया था। यही स्थिति श्री मिहिरराज जी की भी हुई कि वे अपने धाम धनी के विरह में डूब गये।

श्री मिहिरराज जी जिस कारागार में नजरबन्द थे, उसे प्रबोधपुरी भी कहते हैं, क्योंकि उसमें ही श्री इन्द्रावती



जी कि आत्मा को धनी का एवं अपने निज स्वरूप का प्रबोध हुआ था, तथा सुन्दरसाथ को प्रबोधित करने वाली ब्रह्मवाणी का अवतरण हुआ।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक पाँच प्रकरण विक्रम सम्वत् १७२२ में दीवबन्दर में उतरे , जब अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी जयराम भाई कंसारा को जाग्रत करने हेतु वहाँ पधारे थे। शेष वाणी हब्शे के अन्दर वि.सं. १७१५ में उतरी है। इस ग्रन्थ में परब्रह्म की उस अद्वैत प्रेममयी लीला का वर्णन है, जिसे वेद-कतेब के माध्यम से संसार ने पाने का बहुत प्रयास तो किया, किन्तु एक बूँद भी न पा सका।

हवे पेहेलां मोहजलनी कहूँ वात, ते ता दुखरूपी दिन रात।

दावानल बले कई भांत, तेणी केटली कहूँ विख्यात॥१॥

अब मैं सर्वप्रथम मोहजल (मायावी भवसागर) की बात कहती हूँ। यह दिन-रात (निरन्तर) दुःखमयी ही दिखायी देता है। इस भवसागर रूपी वन में अनेक प्रकार की दावाग्नि जला करती है, जिसके बारे में मैं कितना वर्णन करूँ?

**भावार्थ-** यह प्रकरण उस समय उतरा है, जब श्रीजी जयराम भाई को जाग्रत करने के लिये दीवबन्दर गये हैं। उन्हें प्रबोधित करने के लिये श्रीजी जब कुछ बातें कह लेते हैं, तो माया की पहचान देने लगते हैं। इसी क्रम में इस चौपाई के प्रथम चरण में हवे (अब) शब्द का प्रयोग किया गया है।

प्रकृति का सूक्ष्मतम स्वरूप ही मोह तत्त्व (मोह सागर)

है। इसे ही महाभारत में कहा गया है- "जगत् मोहात्मकं प्राहुः अव्यक्तात् व्यक्त संज्ञकम्" अर्थात् अव्यक्त मोहजल से प्रकट होने वाला यह जगत मोहमयी (अज्ञानमयी) है।

मोह तत्त्व को ही बौद्ध दर्शन में शून्य , शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन में अज्ञान (अविद्या या भ्रम), तथा वैशेषिकों की दृष्टि में काल , तो जैन दर्शन में कर्म का मूल कहा गया है।

इस मोहसागर में फँसा हुआ चैतन्य जीव प्रेम, शान्ति, एवं आनन्द की खोज में प्रकृति के भोगों की ओर स्वाभाविक रूप से आकर्षित होता है। इसे ही भोग की इच्छा रूपी तृष्णा या वासना कहते हैं। इसके वशीभूत होकर जीव शुभ या अशुभ कर्म करता है, जिसके कारण उसे सुख-दुःख का भोग करने के लिये जन्म-मरण के चक्र में भटकना पड़ता है।

इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत निरन्तर दुःखमयी बना रहता है। जिस प्रकार किसी वन में आग लग जाने पर वह एक-एक वृक्ष पर फैलने लगती है तथा थोड़ी ही देर में सारा वन जलकर राख हो जाता है, उसी प्रकार तृष्णा रूपी अग्नि में जीव का वास्तविक आनन्द जलकर समाप्त हो जाता है। प्रकृति के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, और लोकेषणा (संसार में प्रतिष्ठा की इच्छा), वित्तेषणा (ऐश्वर्य की इच्छा), तथा दारेषणा (सांसारिक सम्बन्धों में आसक्ति) की अग्नि उस दावाग्नि की तरह है, जिसमें कभी भी शान्ति नहीं मिलती। चौपाई के तीसरे चरण में कथित अनेक प्रकार की दावाग्नि कहे जाने का यही आशय है।

इस जगत में जलाने वाली मुख्यतः तीन प्रकार की अग्नि होती हैं—

१. बड़वाग्नि— जो समुद्र के जल को जलाती है।

२. दावाग्नि- यह वन को जलाती है।

३. जठराग्नि- जो भोजन को पकाती है।

किन्तु उपरोक्त चौपाई में दावाग्नि के दृष्टान्त के माध्यम से तृष्णा की अग्नि के द्वारा लौकिक विषय-सुख रूपी वृक्षों का जलना बताया गया है। यह अग्नि कभी बुझती नहीं है और सदा ही दुःख का कारण बनी रहती है।

**विस्वने लागी जाणे ब्राध, मांहे अग्नि बले अगाध।**

**ते ता पीडे दुष्ट ने साध, नहीं अधखिणनी समाध॥२॥**

सम्पूर्ण विश्व में अमिट रोग की तरह मायावी तृष्णा की ऐसी आग लगी हुई है, जिसकी कोई थाह (माप) नहीं पा सकता। चाहे कोई साधु-सन्त हो या दुष्ट हो, सभी को इसने पीड़ित कर रखा है। इसका प्रभाव इतना अधिक है कि आधे क्षण के लिये भी किसी को मानसिक शान्ति

नहीं मिल पा रही है।

**भावार्थ-** "मायां तु प्रकृति विधि" श्वेता. उप. के इस कथन के अनुसार प्रकृति को ही माया कहा जाता है। प्रकृति के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध के रूप में उपलब्ध सुखों के भोग की इच्छा ही तृष्णा कहलाती है। यह प्रवृत्ति प्रत्येक प्राणी में होती है।

जीव जितना ही अधिक माया का सुख भोगता है, उतना ही उसके चित्त में भोग के संस्कार प्रबल होते जाते हैं। परिणाम यह होता है कि उसकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और वह संस्कार-तृष्णा-भोग-जन्म-मरण के चक्र में फँसा रहता है तथा इससे कभी मुक्त नहीं हो पाता।

इसे ही उपरोक्त चौपाई में अमिट रोग की संज्ञा दी गयी है। ऐसा माना जाता है कि कोढ़ रोग जन्म-जन्मान्तरों में

बना रहता है। इसी प्रकार मायावी सुखों के भोग की तृष्णा भी जन्म-जन्मान्तरों में बनी रहती है, जो जन्म-मरण रूपी दुःख का मूल कारण है। भोग की इस वासना से साधु-सन्त और दुष्ट सभी पीड़ित रहते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि साधु-सन्त जहाँ सतोगुणी स्वभाव के होने के कारण सात्विक सुखों की कामना में बँधे रहते हैं, वहीं दुष्ट लोग तमोगुणी होने के कारण तामसिक सुखों (माँस, शराब, दुराचार, आदि) के बन्धनों में बँधे रहते हैं।

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। परब्रह्म के ज्ञान एवं प्रेम-मार्ग के आलम्बन से ही इसके बन्धनों से मुक्त हुआ जा सकता है और शाश्वत शान्ति प्राप्त की जा सकती है। इसी सन्दर्भ में कठोपनिषद् का कथन है - "तम् आत्मस्थं ये अनुपश्यन्ति धीराः तेषां शान्तिः शाश्वती न

इतरेषाम्" कठो. अध्याय २, वल्ली. २, श्लोक २३, अर्थात् जिन्होंने आत्मस्थ होकर सच्चिदानन्द परब्रह्म का साक्षात्कार किया होता है, एकमात्र उन्हीं के पास शाश्वत शान्ति होती है, अन्यो के पास नहीं।

**कृपा करोछो अमज तणी, सिखामण देओ छो अतिघणी।**

**अहनिस लेओ छो अमारी सार, तो मोहजल उतरसूं पार॥३॥**

मेरे धाम धनी! हमारे ऊपर आप पल-पल कृपा कर रहे हैं तथा अपने तारतम ज्ञान के द्वारा आपने हमें अपार शिक्षा दी है। यदि आप इसी प्रकार दिन-रात हमारी सुधि लेते रहें, तो यह निश्चित है कि हम सभी आत्मायें अवश्य ही इस भवसागर से पार हो जायेंगी।

**भावार्थ-** श्री इन्द्रावती जी का यह कथन श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत के प्रति है ,



जो अपने तारतम ज्ञान से सब सुन्दरसाथ को तरह-  
 तरह की शिक्षा (सिखापन) देते रहे हैं। उपरोक्त चौपाई में  
 उन्होंने अपने प्राणेश्वर के प्रति यह कृतज्ञता प्रकट की है  
 कि यदि आप इसी प्रकार हमारे ऊपर अपनी कृपा की  
 वर्षा करते रहें, तो यह माया कभी भी हमें अपने बन्धन  
 में नहीं रख पायेगी। इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित  
 "सुधि लेने" का तात्पर्य है— कुशल क्षेम बनाये रखना,  
 अर्थात् मायावी जगत में ब्रह्मसृष्टियों की प्रत्येक स्थिति  
 (सुख-दुःख) में अपनी कृपा दृष्टि बनायें रखना।

ए माया छे अति बलवंती, उपनी छे मूल धणी थकी।

मुनिजन ने मनाव्या हार, सिव ब्रह्मादिक न लहे पार॥४॥

इस माया की शक्ति बहुत अधिक है। यह मूलतः धाम  
 धनी के आदेश से ही उत्पन्न हुई है। बड़े-बड़े मुनियों ने

भी इससे हार मान ली। शिव जी तथा ब्रह्मा आदि देवता भी इसकी शक्ति का पार नहीं पा सके हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण का अभिप्राय यह कदापि नहीं मान लेना चाहिए कि माया परमधाम में है और वहीं से प्रकट हुई है। परमधाम में कोई भी नयी वस्तु नहीं बन सकती।

वस्तुतः माया का मूल स्थान अव्याकृत का महाकारण (सुमंगला पुरुष) है, जो सबलिक का स्थूल कहलाता है। इस सम्बन्ध में किरंतन ६५/२० में कहा गया है-

प्रकृती पैदा करे, ऐसे कई इंड आलम।

ए ठौर माया ब्रह्म सबलिक, त्रिगुन की परआतम॥

"सुमंगला पुरुष" चिदानन्द लहरी का व्यक्त स्वरूप है। सबलिक का चित्त तथा केवल का आनन्द स्वरूप मिलकर चिदानन्द लहरी कहलाता है। सुमंगला पुरुष

(अव्याकृत का महाकारण) ही स्थूल में रोधिनी शक्ति एवं प्रणव (ॐ) है, जिससे मोहसागर की उत्पत्ति होती है।

अव्याकृत को सत् माया, सबलिक को चित् माया, तथा केवल ब्रह्म को आनन्द योगमाया कहा जाता है। इसी प्रकार सत्स्वरूप को अक्षर ब्रह्म की मूल माया या मूल प्रकृति भी कहा जाता है।

मोह सागर से कालमाया के जिस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है, उस का मूल योगमाया का ब्रह्माण्ड है। अक्षरातीत के सत अंग अक्षर ब्रह्म के मन में सृष्टि रचना का जो संकल्प होता है, वह सत्स्वरूप, केवल से होते हुए सबलिक एवं अव्याकृत में आता है, जिससे यह मोहसागर का ब्रह्माण्ड दृष्टिगोचर होने लगता है। इसे ही "अर्स से आवे हुकम, तिन हुकमें चले कई हुकम" (सनंध २१/१४) कहा गया है।

इत अछर को विलस्यो मन, पाँच तत्व चौदे भवन।

यामें महाविष्णु मन मन थें त्रैगुन, तार्थें थिर चर सब उत्पन्न॥

प्र. हि. ३७/२४

अक्षर ब्रह्म का आदेश श्री राज जी का ही आदेश माना जायेगा, क्योंकि वह उनका ही सत् अंग है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि ब्रह्मसृष्टियों को खेल दिखाने की इच्छा के कारण श्री राज जी ने अक्षर ब्रह्म को सृष्टि रचने का आदेश दिया, किन्तु यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि सृष्टि प्रलय का यह प्रवाह अनादि काल से चल रहा है और मात्र इसी ब्रह्माण्ड (व्रज, जागनी) में ब्रह्मसृष्टियाँ आयी हैं।

इस प्रकार त्रिगुणात्मिका माया (मोह सागर) श्री राज जी के आदेश से उत्पन्न हुई है। उपरोक्त चौपाई के दूसरे चरण का यही भाव है।

मायावी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के सुख का आकर्षण इतना प्रबल होता है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी इसके जाल में फँस जाते हैं और हार मान लेते हैं। यदि कोई इनके पार भी चला आये, तो मोह सागर को पार कर पाना सम्भव नहीं होता।

**सुक सनकादिक ने नव टली, लखमी नारायण ने फरीवली।**

**विष्णु वैकुण्ठ लीधां माहें, सागर सिखर न मूक्या क्याहें॥५॥**

शुकदेव तथा सनकादिक को भी इसने जीतने का अवसर नहीं दिया। अपनी शक्ति से इसने लक्ष्मी – नारायण को भी चारों ओर से घेर रखा है। वैकुण्ठ में स्थित विष्णु भगवान को भी इसने अपने अधीन कर रखा है। पाताल (सागर) से लेकर वैकुण्ठ (शिखर) तक इसने किसी भी प्राणी को स्वतन्त्र नहीं छोड़ा है।

**भावार्थ-** यद्यपि ध्यान-समाधि के द्वारा अक्षर ब्रह्म की पञ्च वासनाओं (शुकदेव, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कबीर, शिव, तथा विष्णु भगवान) ने अवश्य बेहद मण्डल का साक्षात्कार किया, किन्तु अपने लौकिक जीवन में वे भी मायावी प्रपञ्चों से कहीं न कहीं हारते रहे।

राजा जनक के दरबार में जब आग लग गयी, तो अपने कढ़ू के तूँबे को बचाने के लिये वैराग्यमूर्ति शुकदेव भागते नजर आये।

इसी प्रकार वैकुण्ठ में जय-विजय नामक द्वारपालों के द्वारा रोके जाने पर सनकादिक जैसे योगेश्वर को भी क्रोध आ गया और उन्होंने उन दोनों को तीन जन्मों तक राक्षस योनि में रहने का श्राप दे डाला। इस प्रकार वे दोनों हिरण्यकश्यप-हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण, तथा शिशुपाल-दन्तवक्र के रूप में जन्म लिये।

मोहसागर त्रिगुणात्मिका प्रकृति का सूक्ष्मतम स्वरूप है। सम्पूर्ण सृष्टि इसी से उत्पन्न होती है। सृष्टि को उत्पन्न करने वाले आदिनारायण का स्वरूप भी इसी मोहसागर में प्रकट होता है। यही कारण है कि लक्ष्मी-नारायण को मोहसागर के बन्धन में कहा गया है, क्योंकि नींद (अज्ञान) के वशीभूत होने के कारण वे निराकार (मोहसागर) से परे कुछ भी नहीं जानते। यदि मोहसागर से परे का उन्हें ज्ञान हो जाये, तो इस सृष्टि का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। एक आदिनारायण से मोहसागर में असंख्यों लोक एवं ब्रह्मा, विष्णु, शिव उत्पन्न होते हैं, जो माया के बन्धनों में बन्धे रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक चौदह लोकों का समूह (ब्रह्माण्ड) माया से हारा हुआ माना गया है।

इस सम्बन्ध में तारतम वाणी में कहा गया है—

मूल प्रकृती मोह अहं थे, उपजे तीनों गुन।

सो पाँचों में पसरे, हुई अंधेरी चौदे भुवन॥ कि. २१/२

ए ऊपर हवे सूं कहुँ, बीजा नाम ते केहेना लऊँ।

एणे वचने सरवालो थयो, ब्रह्मांडनो धन सर्वे आवयो॥६॥

इन पाँचों (सनकादिक, कबीर, शिव, शुकदेव, तथा विष्णु भगवान) से श्रेष्ठ भला इस ब्रह्माण्ड में और कौन है, जिनका मैं नाम बताऊँ? इन पाँचों का व्यक्तित्व इस ब्रह्माण्ड में सर्वोपरि है, अर्थात् सर्वोपरि आध्यात्मिक सम्पदा इन्हीं के पास है। इनका नाम लेने का आशय ही है, ब्रह्माण्ड के सर्वोपरि आध्यात्मिक व्यक्तित्व का नाम लेना।

**भावार्थ—** ज्ञान, भक्ति, विवेक, वैराग्य, शील, तथा आत्म-साक्षात्कार ही आध्यात्मिक धन है। अक्षर ब्रह्म



की पञ्चवासनाओं के पास यह धन सबसे अधिक है, इसलिये इनका वर्णन हो जाने पर अन्य किसी का नाम लेने की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

तत्त्व सहु एणीए जीती लीधां, चौद लोक पोतानां कीधां।  
वली लीधो तत्त्व मोह, जे थकी उपन्या सहु कोए॥७॥

इसने सभी पाँचों तत्त्वों को जीत रखा है तथा चौदह लोकों के सभी प्राणियों को भी वशीभूत कर लिया है। इसके अतिरिक्त उस मोहतत्त्व को भी इसने अपने अधिकार में कर लिया है, जिससे सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है।

**भावार्थ—** सांख्य दर्शन में कहा गया है कि "सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः" अर्थात् सत्त्व, रज, और तम की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है।

प्रकृति का ही दूसरा नाम माया है। उपरोक्त चौपाई में माया के द्वारा पाँच तत्वों, चौदह लोकों, तथा मोहतत्त्व को जीत लेने का भाव यह है कि ये सभी माया के ही व्यक्त स्वरूप हैं। यद्यपि मोहतत्त्व जड़ प्रकृति का ही सूक्ष्मतम् स्वरूप हैं, किन्तु इसकी उत्पत्ति भी सुमंगला शक्ति के व्यक्त स्वरूप रोधिनी के द्वारा होती है।

इसे ही अथर्ववेद ८/९/५ में "माया ह जज्ञे मायया" अर्थात् चैतन्य माया के संकल्प से मोह रूपी माया उत्पन्न होती है, ऐसा कहा गया है।

पौराणिक मान्यता के अनुसार चौदह लोक इस प्रकार है— १. अतल, २. वितल, ३. सुतल, ४. तलातल, ५. महातल, ६. रसातल, ७. पाताल, ८. भूलोक, ९. भुवर्लोक, १०. स्वर्गलोक, ११. महर्लोक, १२. जनलोक, १३. तपलोक, १४. सत्यलोक अर्थात्

वैकुण्ठ।

किन्तु वैदिक मान्यता के अनुसार नीचे के सात पाताल लोक पृथ्वी पर ही विद्यमान हैं। "पादस्य तले यो देशः सः पातालः"। हिमालय आदि ऊँचे पर्वतीय भूभाग के विपरीत सागर स्थित नीचे के भूभाग पाताल कहलाते हैं। इस प्रकार, सात सागरों के समीपस्थ भूभाग सात पाताल लोक कहे जाते हैं।

भुवर्लोक अन्तरिक्ष लोक को कहते हैं। इसी अन्तरिक्ष में वे पृथ्वी आदि स्थूल लोक विद्यमान हैं, जिनमें मानव आदि स्थूल शरीरधारी प्राणी निवास करते हैं। मनुष्य प्रायः रजोगुणी होता है। अपनी सतोगुणी अवस्था में वह देवता कहलाता है, तथा तमोगुणी अवस्था में असुर या राक्षस कहलाता है। पौराणिक मान्यता में पाताल में असुरों का, पृथ्वी पर मनुष्यों का, तथा स्वर्ग में देवताओं

का अस्तित्व माना जाता है।

किन्तु वैदिक विचारधारा के अनुसार स्वर्ग एक अवस्था विशेष है, स्थान विशेष नहीं। अपने शुभ कर्मों के अनुसार, जब जीव स्थूल शरीर से सुख भोगता है, तो एक प्रकार से उसे स्वर्ग का सुख भोगना कहते हैं। दूसरे रूप में इस प्रकार भी कहा जाता है कि सम्प्रज्ञात (सबीज) समाधि को प्राप्त होने वाले योगी, प्रकृति का सुख भोगते हुए महाप्रलय तक इच्छानुसार सृष्टि में विचरण किया करते हैं।

स्वर्ग, मह, जन, तप, तथा सत्यम् को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ अवस्था वाला कहा गया है, अर्थात् इनमें सातवें (सत्यम्) में प्रकृति का सर्वोपरि सुख प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे यह ब्रह्मानन्द ही हो। इस प्रकार, सम्पूर्ण सृष्टि को चौदह भागों में भी बाँट सकते हैं।

विस्तृत जानकारी के लिये कृपया "ब्रह्माण्ड रहस्य" ग्रन्थ का अवलोकन करें।

**साखी-** कहे इंद्रावती वल्लभा, ए माया छे अति छल।

हवे जुध मांड्यूं छे अमसूं, एहेनो कह्यो न जाय बल॥८॥

हे मेरे धाम धनी! आपकी अर्धांगिनी, मैं इन्द्रावती आपसे एक बात कह रही हूँ। यह माया बहुत ही छलमयी है। अब तो इसने मुझसे युद्ध ही ठान रखा है। इसका बल इतना अधिक है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता।

**भावार्थ-** माया कोई शरीर धारिणी शक्ति नहीं है, जो युद्ध करती है। इसके लुभावने बन्धनों में जीव फँस जाता है और सत्य की राह से भटक जाता है। इसे ही युद्ध में हारना कहते हैं। आगे की चौपाई में माया के आयुधों का वर्णन किया जा रहा है।

एहना आउध अमृत रूप रस, छल बल वल अकल।

अग्नि कुटिल ने कोमल, चंचल चतुर चपल॥९॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये माया के ऐसे आयुध (हथियार) हैं, जो जीव को अमृत के समान प्रिय लगते हैं। इनका छल रूपी बल इतना टेढ़ा होता है कि वह जीव की बुद्धि को भ्रमित कर देता है। यह माया कुटिल हृदय वाली उस गणिका (वेश्या) के समान है, जो अपने कोमल अंगों और चंचल नेत्रों के चतुराई भरे चपल हाव-भावों से पुरुष (जीव) को अपने मोह जाल में फँसा लेती है और जीव के अन्दर इन पाँचों विषयों के सुखों की तृष्णा रूपी अग्नि पैदा करके अपने बन्धन में बाँधे रखती है।

**भावार्थ—** संसार का प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक पाँच तत्वों से ही बना होता है। इसलिये संसार के सभी सुखों

को ५ भागों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) में बाँटा गया है। इनके उपभोग की इच्छा ही जीव के जन्म-मरण के चक्र में फँसे रहने का मूल कारण है।

उपरोक्त चौपाई में माया को उस गणिका के रूप में दर्शाया है, जिसके हृदय में पुरुष (जीव) के आनन्द रूपी धन को लूटने के लिये कुटिलता तो भरी होती है, किन्तु अपने अंगों के कोमल सौन्दर्य तथा नेत्रों के चपल कटाक्ष रूपी बाणों के चतुर प्रहारों से इतना मोहित कर देती है कि उसके सामने प्राणी असहाय हो जाता है और भव बन्धन से निकल नहीं पाता।

विषय सुख क्षणिक होता है, और अशान्ति को उत्पन्न करता है। यही कारण है कि उसकी उपमा चंचल नेत्रों से दी गयी है। सुखों के भोग के विवेकहीन आकर्षण को "चपल" शब्द से सम्बोधित किया गया है, जबकि ज्ञान

और वैराग्य के भावों में डूबी हुई तपस्विनी, योगिनी, या साध्वी नारी के नेत्रों को अति शान्त और स्थिर रूप में दर्शाया जाता है।

सुखों के भोग की यह अग्नि कभी शान्त नहीं होती है और अविद्या (माया) के कारण उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। परिणामस्वरूप जीव का भव बन्धन और दृढ़ होता जाता है।

**चाल—**

हवे एहनो केटलो कहूँ विस्तार, जोरावर अति अपार।

मोसूं जुध मांड्यूं आसाधार, जुध करे छे वारंवार॥१०॥

अब आप ही बताइये कि इस मोहिनी माया का कहाँ तक वर्णन करूँ? सबको भ्रमित करने वाली इस माया की शक्ति बहुत अधिक अनन्त है। इसने मुझसे भयंकर



युद्ध किया है और अब तक निरन्तर आक्रमण करती रही है।

एहेने लाग्यो कोई एवो खार, मारो केड न मूके नार।

में बांध्यां सामां हथियार, तो जाण्यो जोपे एहेनो मार॥११॥

इस माया को मुझसे ऐसी चिढ़ हो गयी है कि यह किसी भी प्रकार से मेरा पीछा नहीं छोड़ती है। इसलिये मैंने भी इससे लड़ने के लिये अपने आयुधों को सम्भाल (ग्रहण कर) लिया है। इस प्रकार, इसके प्रहारों को मैंने अच्छी तरह से जान लिया है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण में नार (नारी) का कथन "माया" के लिये प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि प्रकृति (माया) को स्त्रीलिंग में ही व्यक्त किया जाता है। माया से लड़ने के लिये प्रेम ही अमोघ हथियार है। अटूट

विश्वास, समर्पण, आदि भी आयुध हैं, किन्तु प्रेम सर्वोपरि है। वस्तुतः प्रेम की चरम अवस्था से पूर्व, विश्वास एवं समर्पण की सीढ़ियों से होकर ही जाना पड़ता है।

एणे समे जे अममां वीती, केटली कहूँ तेह फजीती।

में तो रूडी रीते ग्रहीती, पण मूने लीधी जीती॥१२॥

माया से युद्ध करते समय मेरी जो दुर्दशा हुई, उसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ? मैंने तो सुन्दरसाथ की सेवा का उत्कृष्ट मार्ग पकड़ा था, किन्तु इसने मुझे हरा दिया।

**भावार्थ**— माया से हारने का तात्पर्य है, सत्य की राह से विचलित हो जाना। इसी प्रकार माया पर विजय प्राप्त करने का भाव है, अपार कठिनाइयों के होते हुए सत्य (धर्म) मार्ग से जरा सा भी न हटना।

बाहें ग्रही लई निसरी, में त्रण जुध कीधां फरी फरी।

पछे गत मत मारी हरी, लई वस पोताने करी॥१३॥

अन्ततोगत्वा माया ने मेरी बाँह पकड़कर मुझे अपनी ओर खींच ही लिया। मैंने माया से लगातार तीन बार युद्ध किया और विजय प्राप्त की, किन्तु चौथे युद्ध में मेरी बुद्धि फिर गयी (उल्टी हो गयी) तथा माया ने मुझे हराकर अपने अधीन कर लिया।

**भावार्थ—** बाँह पकड़कर खींचना एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है, बलपूर्वक अपने अधीन कर लेना। माया से श्री इन्द्रावती जी के होने वाले तीन युद्ध इस प्रकार हैं—

१. अरब से लौटने पर सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के द्वारा प्रणाम स्वीकार न किये जाने पर भी श्रीजी का धैर्य धारण किये रहना।

२. बिहारी जी के द्वारा अत्याचार किये जाने पर भी उनकी खुशी के लिये निर्दोष फूलबाई का परित्याग करना।

३. सेवा करने के प्रयास में हब्शे में जाना।

चौथे युद्ध में कर न चुका पाने के कारण सुन्दरसाथ की सुरक्षा के लिये स्वयं को अमदाबाद के कारागार का कष्ट झेलना पड़ा, किन्तु जीतते-जीतते उन्होंने बाजी हार दी, क्योंकि वे कान्हजी भाई की बातों में आ गये और वेश बदलकर कारागार से निकलकर दीवबन्दर चले गये। उन्होंने इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया कि जिस तन में स्वयं अक्षरातीत विराजमान हों, उसे कोई फाँसी पर कैसे चढ़ा सकता है?

तमे अनेक सिखामण कही, पण भ्रम आडे में कांई नव ग्रही।  
 मोसूं एवी तोहज थई, जो वाणी तमारी में नव लही॥१४॥

मेरे धाम धनी! आपने श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में  
 विराजमान होकर मुझे अनेक प्रकार से सिखापन  
 (शिक्षा) दी, किन्तु मेरे सामने भ्रम का पर्दा था अर्थात्  
 मुझे आपके स्वरूप की यथार्थ पहचान नहीं थी, इसलिये  
 मैंने आपकी दी हुई सीख को कुछ भी ग्रहण नहीं किया।  
 मुझसे तो यह बहुत बड़ी भूल हुई, क्योंकि मैं आपके कहे  
 हुए अमृतमय वचनों को आत्मसात् नहीं कर सकी।

तमे पेरे पेरे समझावी, मूने तोहे बुध न आवी।  
 जुगते करीने जगावी, लई तारतमे लगावी॥१५॥

आपने मुझे बार-बार समझाया, फिर भी आपकी  
 सिखापन मेरी बुद्धि में नहीं आ सकी। अन्त में आपने

तारतम ज्ञान के प्रकाश में मुझे युक्तिपूर्वक जगाया।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह जिज्ञासा पैदा होती है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के द्वारा बार-बार समझाने तथा तारतम ज्ञान के प्रकाश में जगाने में क्या अन्तर है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी श्री मिहिरराज जी को भागवत, नरसैया, एवं कबीर आदि के वचनों से समझाया करते थे, किन्तु इसका विशेष लाभ नहीं हुआ। जब तारतम ज्ञान के प्रकाश में क्षर, अक्षर, तथा अक्षरातीत की पहचान करायी, तो उनकी जाग्रति हो गयी। इस सम्बन्ध में प्रकाश हिन्दुस्तानी ६/४७-४९ में कहा गया है-

नरसैयां कबीर जाटीय के, और कई साधो सास्त्र वचन रे।  
काढ़ दे सार इनका, करके एह मथन रे॥

महाप्रले लो जो कोई, सास्त्र पढ़ करे अभ्यास।  
 बहु विध लेवे विवेक सों, कर मन द्रढ़ विस्वास॥  
 तो भी न आवे ए विवेक, ना कछू ए मुख बान रे।  
 सो संग धनी के एक खिन में, कर देवें सब पेहेचान रे॥

तमे अंतरगते दीधां द्रष्टांत, त्यारे भागी मारा मननी भ्रांत।  
 हवे तमे आव्या एकांत, संसार दसा थई स्वांत॥१६॥

जब आपने कबीर, नरसैया, तथा भागवत के वचनों का दृष्टान्त देकर समझाया और तारतम ज्ञान का प्रकाश मेरे हृदय में भरा, तो मेरे मन के सभी संशय समाप्त हो गये। अब तो आप धाम हृदय में साक्षात् ही विराजमान हो गये हैं। ऐसी अवस्था में मैं लौकिक बन्धनों (झंझटों) से सर्वथा मुक्त हो गयी हूँ।

**भावार्थ—** उपरोक्त चौपाई में कथित "अंतरगत" शब्द

का प्रयोग तारतम वाणी में आन्तरिक या हृदय के भाव में होता है, जैसे—

अंतरगत आवी मारा वाला, बैठा छो आकार मांहे।

आकार देह धरयुं मायानूं, ते माटे कोणे न ओलखाए॥

षट्क्रतु ५/१२

ज्यारे धणी धणवट करे, त्यारे बल वेरी ना हरे।

वली गया काम सराडे चढ़े, मन चितव्या कारज सरे॥१७॥

जब प्रियतम अक्षरातीत हमारे प्रति अपना पतिपना निभाते हैं, अर्थात् हमारे ऊपर अपनी प्रेम भरी कृपा की वर्षा करते हैं, तो वे हमारी शत्रुस्वरूपा माया की सारी शक्तियों को नष्ट कर देते हैं। जिसके परिणामस्वरूप हमारे बिगड़े हुए काम ठीक हो जाते हैं, और जिस कार्य के पूर्ण होने की हमारे मन में धारणा होती है, वह अवश्य ही पूरी



हो जाती है।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई में लौकिक पति के दृष्टान्त से यह बात दर्शायी गयी है कि श्री राज जी की प्रेम भरी कृपा, आध्यात्मिक क्षेत्र की हमारी बाधाओं को पूर्णतया समाप्त कर देती है।

**साखी-** मायाना मुख माहें थी, जुगते काढ़ी जोर।

दई तदारूक अतिघणी, माया कीधी पाधरी दोर॥१८॥

धाम धनी ने मुझे माया के फन्दे से युक्तिपूर्वक सुरक्षित निकाला और माया को ऐसी फटकार लगायी कि वह बिना रुके सीधी भाग गयी।

**भावार्थ-** इस चौपाई में उपमा अलंकार के माध्यम से विशेष घटनाक्रम को सांकेतिक रूप में वर्णित किया गया है। जब राज्य का कर न चुका पाने के कारण श्री

मिहिरराज जी को अमदाबाद के कारागार में जाना पड़ा था, तो धाम धनी ने कान्हजी भाई के माध्यम से यूक्तिपूर्वक उन्हें वहाँ से सुरक्षित निकलवा लिया तथा दीवबन्दर आदि स्थानों में जागनी के लिये निर्देशित किया, क्योंकि वह स्थान पूर्णतया सुरक्षित था।

माया तो जड़ प्रकृति है। वह कोई स्त्री नहीं है, जो डाँट खाकर अपने पैरों से चलकर भाग जाये। बल्कि यह सम्पूर्ण कथन उपमा अलंकार की भाषा में व्यक्त किया गया है। इस नश्वर जगत की बाधायें ही गणिका (वेश्या) रूपी माया हैं, जो श्री राज जी की कृपा के समक्ष नहीं ठहर सकी और समाप्त हो गयी (भाग गयी)।

**धणीना जेम धणवट, लीधी भली पेरे सार।**

**आ दुख रूपणीना मुख मांहेथी, बीजो कोण काढ़े बिना आधार॥१९॥**

मेरे प्राणेश्वर अक्षरातीत! आप ही मेरे जीवन के आधार हैं। जिस प्रकार एक पति अपनी अर्धांगिनी के प्रति अपना पतिपना (प्रेम और कर्तव्य) निभाता है, उसी प्रकार आपने भी इस मायावी जगत में अच्छी तरह से हमारी सुधि ली है। आपके अतिरिक्त और कौन है, जो हमें इस दुःखमयी माया के जाल से बाहर निकाले?

**चाल—**

तमे कृपा कीधी अति घणी, जाणी मूल सगाई घरतणी।

माया पाड़ी पड़ताले हणी, बल दीधूं मूने मारे धणी॥२०॥

परमधाम का मूल सम्बन्ध होने के कारण ही आपने हमारे ऊपर इतनी अधिक कृपा की है। आपने तो मुझे इतनी शक्ति दी कि मैंने माया को पैरों से ठोकर मारकर भगा दिया।

**भावार्थ-** पैरों से ठोकर मारना एक मुहावरा है, जिसका आशय है, माया का इस प्रकार परित्याग करना कि हृदय में उसका लवलेश (नाममात्र) भी न रह जाये।

वली गत मत आवी सुधसार, छल छूटो ने थयो करार।

दयानो नव लाधे पार, त्यारे अलगो थयो संसार॥२१॥

अब मेरे धाम हृदय में प्रियतम अक्षरातीत विराजमान हो गये हैं, जिससे परमधाम की प्रेममयी जाग्रत अवस्था और जाग्रत बुद्धि का ज्ञान मुझे पुनः प्राप्त हो गया है। मुझे परमधाम तथा युगल स्वरूप की सारी सुध हो गयी है। मायावी प्रपञ्चों से अलग हो जाने के कारण मेरे मन में अपार शान्ति भी आ गयी है। हे धनी! आपकी दया का कोई भी पार नहीं पा सकता। आपकी प्रेम भरी दया ने ही मुझे इस मिथ्या (सारहीन) संसार से अलग कर दिया

है।

**भावार्थ-** "गत" का तात्पर्य अवस्था से है और "मत" का आशय ज्ञान से है। इसी प्रकार "सुध सार" (सुधिसार) का भाव है, सार रूप परमधाम तथा युगल स्वरूप की यथार्थ पहचान (सुधि) हो जाना।

जगत् को मिथ्या कहने का तात्पर्य यह है कि भले ही यह जगत् व्यवहारिक रूप से सत्य (अस्तित्व वाला) प्रतीत हो रहा है, किन्तु पल-पल में परिवर्तित होते रहने एवं आध्यात्मिक रूप से मोह बन्धन का कारण होने से मिथ्या है।

**हवे आव्यूं धन अविनासी, दुख दावानल गयूं नासी।**

**रूदे ग्रहूं लीला विलासी, हवे ते हूं करूं प्रकासी॥२२॥**

अब मेरे अन्दर परमधाम का अखण्ड (ज्ञान एवं प्रेम

रूपी) धन आ गया है (प्राप्त हो गया है)। फलतः वनों में लगने वाली दावाग्नि रूपी लौकिक दुःख नष्ट हो गया है। अब मेरी एकमात्र यही इच्छा है कि प्रेममयी लीला करने वाले प्राणेश्वर अक्षरातीत को अपने धाम हृदय में धारण कर, उसे इस संसार में उजागर कर दूँ।

**भावार्थ—** जिस प्रकार वन में लगी हुई अग्नि (दावाग्नि) एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर फैल जाती है और सम्पूर्ण वन को जला देती है, उसी प्रकार प्रकृति के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध रूपी विषयों में फँसा हुआ जीव अपने शरीर रूपी वन को जला डालता है। उपरोक्त चौपाई के दूसरे चरण का आशय यह है कि धाम धनी की लीला में मन को लगा देने पर वह लौकिक विषयों में नहीं फँसता।

हवे ए धन में जोपे जाण्यूं, जिभ्याए न जाय वखाण्यूं।

मारा हैडामां आण्यूं, अम विना कोणे न माण्यूं॥२३॥

मेरे धाम हृदय में धाम धनी का दिया हुआ परमधाम का जो अखण्ड धन है, उसे मेरे अतिरिक्त अन्य किसी ने भी प्राप्त नहीं किया है। उसकी गरिमा का वर्णन इस नश्वर जिह्वा (वाणी) से हो पाना सम्भव नहीं है।

साखी- बल नथी आंहीं अमतणूं, नहीं अमारे वस।

ए निध आवी तम थकी, ते में चित कीधूं चोकस॥२४॥

माया से पार होने के लिये मेरे पास कोई भी बल नहीं था। अपने व्यक्तिगत बल से पार हो जाना तो मेरे लिये सम्भव ही नहीं था। मेरे धाम हृदय में इस समय परमधाम की जो अखण्ड सम्पदा (जोश, जाग्रत बुद्धि, धनी की आवेश शक्ति, इत्यादि) विद्यमान है, वह आपने ही दी है।

इसने मुझे माया के प्रति सावधान कर दिया है।

में चित मांहें चितव्यूं, जाण्यूं करसूं सेवा सार।

मल्यो धणी मूने धामनो, सुफल करूँ अवतार॥२५॥

हृष्ये में जाने से पहले मेरे चित्त में ऐसा विचार था कि इस नश्वर जगत में मुझे धाम के धनी मिले हैं। इसलिये मुझे सुन्दरसाथ की सेवा को ही सर्वोपरि मान कर सेवा करनी चाहिए। इसी से जागनी ब्रह्माण्ड में मेरा आना सार्थक हो सकेगा।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण में धाम धनी के मिलने का तात्पर्य अव्यक्त रूप से है। धनी का प्रत्यक्ष अनुभव तो उन्हें हृष्ये (वि.सं. १७१५) में ही हुआ, यद्यपि उनके धाम हृदय में युगल स्वरूप वि.सं. १७१२ में ही विराजमान हो चुके थे।



जे मनोरथ मनमां रह्यो, मारा धणी श्रीराज।

खरुं करतां खोटा मांहेँथी, पण नव सिध्युं एके काज॥२६॥

मेरे प्राण प्रियतम श्री राज! मेरे मन में पहले यह प्रबल भावना थी कि मैं इस झूठे जगत से धन कमाकर सुन्दरसाथ की सेवा किया करूँ, किन्तु आपको यह स्वीकार नहीं था, इसलिये मेरी कोई भी (एक भी, जरा सी भी) इच्छा पूरी नहीं हो सकी।

**भावार्थ-** श्री मिहिरराज जी के मन में हब्शा जाने से पूर्व निम्नलिखित इच्छायें (सेवा भावनायें) थीं-

१. सुन्दरसाथ घर-परिवार की झंझटों से मुक्त होकर यहीं रहें तथा दिन-रात चर्चा-सत्संग का लाभ लें।
२. सद्गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान को सुन्दरसाथ तक पहुँचाकर मैं कृत्कृत्य (धन्य-धन्य) हो जाऊँगा।
३. गादी पर विराजमान बिहारी जी महाराज भी मेरी

सेवा से प्रसन्न रहेंगे।

में मारुं बल जाण्युं, हूं तो छूँ अति मूढ़।

ए थाय सर्वे धणी थकी, ते में कीधूं दृढ़॥२७॥

मेरे प्राणेश्वर! मैं अपनी शक्ति की वास्तविकता (अल्प सामर्थ्यता) को जानती थी। मुझे यह भी पता था कि मैं अति मूढ़ बुद्धि वाली हूँ। आपने मुझे इस बात में दृढ़ कर दिया कि इस संसार में जो कुछ भी होता है, आपकी कृपा की छत्रछाया में ही होता है।

चाल—

मूने दुख साले ए मन मांहें, नव जाय कह्यो ते क्यांहें।

गमे तमने तेहज थाय, बीजे सामूं कोणे न जोवाय॥२८॥

मेरे मन में सुन्दरसाथ की सेवा न कर पाने का जो दुःख है, वह मुझे अभी तक इस प्रकार पीड़ित कर रहा है कि उसका किसी प्रकार से कुछ भी वर्णन नहीं हो सकता। यह तो निश्चित ही है कि आपकी इच्छा से ही सब कुछ होता है। आपके समान अन्य कोई भी सर्वसामर्थ्यवान नहीं है।

**भावार्थ—** उपरोक्त चौपाई में दो संशय उत्पन्न होते हैं—

१. धाम धनी के हृदय में विराजमान हो जाने पर (ब्राह्मी अवस्था में) भी श्री इन्द्रावती जी को दुःख की अनुभूति क्यों हुई?

२. जब सब कुछ श्री राज जी की इच्छा से ही होता है, तो आत्माओं पर खेल में गुनाह (दोष) क्यों लग जाता है? ऐसी अवस्था में तो बिहारी जी एवं औरंगजेब को पूर्णतया निर्दोष ही कहा जायेगा, क्योंकि उन्होंने जो कुछ

भी किया, श्री राज जी की इच्छा से ही किया।

इन दोनों शंकाओं का समाधान इस प्रकार है—

१. यह पूर्णतया सत्य है कि ब्रह्मज्ञानी को माया का दुःख विचलित नहीं कर सकता, किन्तु पर दुःख कातरता (दूसरों को दुःखी देखकर द्रवित होना) तो धर्म या उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग होती है। यह कभी भी सम्भव नहीं है कि जिसके धाम हृदय में दया का सागर परब्रह्म ही विराजमान हो, वह दूसरों के दुःखों के प्रति निष्ठुर बना रहे।

मात्र अपने ही सुख के बारे में सोचना तो निकृष्ट मानसिकता है। जैसे-जैसे मनुष्य का आध्यात्मिक स्तर ऊँचा होता जाता है, वैसे-वैसे वह अपना नहीं बल्कि दूसरों का हित चिन्तन करता है। अध्यात्म के शिखर पर पहुँचने वाला व्यक्ति तो सारी सृष्टि के प्राणियों को

आत्मवत् समझता है और उनका हित चिन्तन करता है।

परमधाम की आत्मायें तो श्री राज जी की अंगरूपा ही हैं। उनकी सेवा से निश्चित ही श्री मिहिरराज जी स्वयं को आनन्दित अनुभव करते। किन्तु सेवा न कर पाने की व्यथा उनके शब्दों से प्रकट हो ही गयी। वस्तुतः धाम धनी तारतम वाणी का अवतरण कराकर श्री मिहिरराज जी से बड़ी सेवा करवाना चाहते थे, इसलिये लीला रूप में श्री मिहिरराज जी सब सुन्दरसाथ को एकत्रित करके भी उनकी सेवा नहीं कर सके।

२. परमधाम के एकत्व (वहदत) में होने के कारण प्रत्येक ब्रह्मात्मा का आचरण वहाँ एक जैसा ही होता है, किन्तु इस नश्वर जगत में सुरता रूप से जीव पर विराजमान होने से उनके आचरण में भिन्नता दिखायी पड़ती है। इसका मूल कारण जीव का त्रिगुणात्मक

बन्धनों में बँधकर कर्म-फल से जुड़े रहना और आत्मा का द्रष्टा होना है।

अक्षरातीत का प्रेम, आनन्द, एवं कृपा सभी आत्माओं के लिये समान है, किन्तु जो जीव जितना ही अधिक प्रेम, श्रद्धा, समर्पण, आदि के मार्ग पर अपने कदम बढ़ाता है, उसको उतनी ही (आत्मा के नाम से) शोभा मिलती है। किन्तु इसके विपरीत (श्रद्धा, विश्वास, एवं प्रेम से रहित) मार्ग में चलने पर दोष (गुनाह) लग जाता है। अक्षरातीत की दृष्टि में किसी के लिये कोई भी भेद नहीं है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि "करनी माफक कृपा और कृपा माफक करनी।"

ए दुख लाग्युं मूने सही, ए उत्कंठा मारा मनमां रही।

एणी दाझे ते मूने दही, निध हाथथी निसरी गई॥२९॥

मेरे मन में उस समय सुन्दरसाथ की सेवा करने की प्रबल चाहना थी। किन्तु यह तो निश्चित है कि उसकी पूर्ति न हो पाने का मुझे आज भी कष्ट है। सेवा का स्वर्णिम अवसर खो देने की पीड़ा की अग्नि आज भी मेरे हृदय को जला रही है (दुःखी कर रही है)।

**जाण्यूं लाभ मायानो लेसूं, निद्राने वांसो देसूं।**

**धणीने चरणे रेहेसूं, माया केहेसे ते सर्वे सेहेसूं॥३०॥**

पहले तो मैंने यही सोचा था कि मैं लौकिक सुखों का मोह छोड़कर इस नश्वर जगत में सुन्दरसाथ की सेवा का अलौकिक लाभ लूँगी। ऐसा करके मैं धाम धनी के चरणों की सान्निध्यता (निकटता) का पल-पल अनुभव करूँगी। इस कार्य में माया की ओर से जितनी भी कठिनाई क्यों न आये, उसे मैं सहर्ष सहन करूँगी।

**भावार्थ-** यह प्रसंग उस समय का है, जब श्री मिहिरराज जी बालबाई के आग्रह पर सद्गुरु महाराज के चरणों में आते हैं। उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण में "माया" का कथन बिहारी जी के लिये किया गया है, क्योंकि जड़ माया बोल नहीं सकती। यह तो सर्वविदित है कि बिहारी जी गादी के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में श्री देवचन्द्र जी से बहस कर चुके थे।

**एणे समे वली फेरवी लीधी, मायाए सिखामण दीधी।**

**धणी थकी विमुख कीधी, पाणीना जेम पीधी॥३१॥**

इस समय माया ने मुझे पुनः अपने बन्धन में डाल लिया और मुझे पानी की तरह पी गयी अर्थात् पूरी तरह से वश में कर लिया। इस प्रकार इसने मुझे धाम धनी से विमुख तो कर दिया, किन्तु इस घटना ने मुझे यह शिक्षा



(सीख) भी दी कि किसी भी स्थिति में धनी से अपने मूल सम्बन्ध को नहीं भुलाना चाहिए।

**भावार्थ**— सदगुरु महाराज के चरणों में २२ दिन तक रहने के पश्चात् श्री मिहिरराज जी के जीवन में वह क्षण भी आया, जब प्रियतम ओझल हो गये अर्थात् सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का धाम गमन हो गया, इसे ही उपरोक्त चौपाई में धनी से विमुख होना कहा गया है। इस घटना ने उन्हें झकझोर दिया तथा सिखापन के रूप में विरह की राह पर चला दिया। इस सम्बन्ध में प्र. हि. ५/१५-१७ का कथन है—

चतुरदसी बुधवारी भई, सनंध सर्वे श्री बिहारी जी सों कही।  
मध्यरात पीछे कियो परियान, बिहारी जी को सुध भई कछू जान॥  
इन अवसर मैं भई अजान, मोहे फजीत करी गिनान।  
नातो मोहे बुलाए के दर्ई निध, पर या समें ना गई मोहजल बुध॥

इन समें हुती माया की लेहेर, तो न आया आत्म को बेहेर।  
 तब मेरी निध गई मेरे हाथ, श्री धाम तरफ मुख किया प्राणनाथ॥

उपरोक्त चौपाई के प्रथम चरण में वली (फिर) का आशय यह है कि पहले उन्हें माया ने परेशान किया था, अर्थात् सदगुरु महाराज के द्वारा प्रणाम स्वीकार न किये जाने पर उन्होंने भी यह मानसिकता बना ली कि जब तक सदगुरु महाराज स्वयं नहीं बुलायेंगे तब तक मैं भी नहीं आऊंगा। प्रेम और समर्पण की राह में इस प्रकार की भावना को कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि उपरोक्त चौपाई में अपनी दोनों भूलों का वर्णन करने के सन्दर्भ में श्री मिहिरराज जी ने पुनः "वली" शब्द का प्रयोग किया है।

उपरोक्त दोनों चौपाइयों का विनियोग यदि अमदाबाद के कारागार से जोड़ा जाये, तो इनका अर्थ इस प्रकार

होगा—

मैंने पहले ही यह निर्णय ले लिया था कि मैं माया को पीठ देकर सुन्दरसाथ की सुरक्षा रूपी सेवा (अमदाबाद के बादशाह के आक्रमण से रक्षा) करूँगी। इस प्रकार अव्यक्त रूप से धनी के सम्मुख रहने का सुख भी मुझे प्राप्त होगा। इस कार्य में बादशाह के अधिकारियों (हाकिमों) द्वारा कहे हुए सभी वचनों को भी मैं सह लूँगी।

इस समय माया ने मुझे अपने बन्धन में फँसा लिया और कान्हजी भाई की बातों में आ जाने से मैं माया के अधीन हो गयी। यद्यपि धाम धनी मेरे धाम हृदय में अव्यक्त रूप से विराजमान थे, फिर भी मैंने धनी से विमुख होने जैसा कार्य किया। मुझे यह तो विश्वास करना चाहिए था कि जब श्री राज जी मेरे अन्दर विराजमान हैं, तो कोई मुझे फाँसी पर कैसे चढ़ा सकता था?

इस प्रकार माया ने मुझे छलपूर्वक जीता और यह सिखापन भी दी कि प्रत्येक स्थिति में हमारे अन्दर यह अटूट विश्वास होना चाहिए कि अक्षरातीत एक पल के लिये भी किसी ब्रह्मात्मा से दूर नहीं होते हैं।

**एहेवो छल करी छेतरी, मन मूल माहेंथी फेरी।**

**एणे तो आप सरीखी करी, चित्त चितवणी बहुविध धरी॥३२॥**

इस ठगिनी माया ने मेरे साथ छल किया और मेरे मन में प्रविष्ट होकर मूल रूप से धनी से विमुख कर दिया। इसने तो वशीभूत करके मुझे भी अपने ही समान (अज्ञानमयी) बना लिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि मेरे चित्त में धाम धनी और सुन्दरसाथ को प्रेम-सेवा द्वारा रिझाने की अनेक प्रकार की जो इच्छायें थीं, वे निष्फल ही रह गयीं।

**भावार्थ-** तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तथा तम) के बन्धन में होने के कारण चैतन्य अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाता। ऐसी अवस्था में वह ऐसे कार्य भी कर देता है, जो धर्मानुकूल नहीं होता। इसे ही माया के द्वारा ठगा जाना या अज्ञानी होना कहा जाता है। कलश हिन्दुस्तानी में अज्ञान को माया का ही स्वरूप कहा गया है-

मोह अज्ञान भरमना, करम काल और सुन्न।

ए नाम सारे नींद के, निराकार निरगुन॥

क. हि. २४/१९

मन मांहें सवलुं देखे, जाणे माया सुख अलेखे।

धणीना सुख न पेखे, विख अमृत लागे विसेखे॥३३॥

मायावी बन्धनों में फँसे हुए व्यक्ति के मन में ऐसा प्रतीत

होता है, जैसे माया का ही सुख एकमात्र सुख है और अपार है। उसे प्रियतम अक्षरातीत के अखण्ड सुखों की थोड़ी भी पहचान नहीं होती। उसे तो विष भरा विषय सुख ही अमृत के समान प्रिय लगता है।

**जुओ भूलवी छेतरे केम, आगे छेतरी मूने जेम।**

**सुकजी तो पुकारे एम, जे छल पुरी ए भरम॥३४॥**

हे साथ जी! आप इस बात का विचार कीजिए कि किस प्रकार यह माया मुझे पहले से ठगती आ रही है तथा वर्तमान में भी हमें अपने बन्धनों (नाम-रूप) में भुलाकर किस प्रकार ठग रही है। महामुनि शुकदेव जी तो पुकार-पुकार कर यह बात कह रहे हैं कि यह सम्पूर्ण मायावी जगत छल-प्रपञ्च से भरा है अर्थात् स्वप्नवत् मिथ्या है।

**भावार्थ-** संसार में जितने भी ज्ञात एवं दृश्यमान

(नाम-रूप वाले) पदार्थ दिखायी पड़ रहे हैं, वे पहले नहीं थे और बाद में भी नहीं रहेंगे। इनके मोहजाल में फँसने के कारण ही हमें अपने वास्तविक स्वरूप का बोध नहीं हो पाता। अपने पञ्चभूतात्मक नश्वर शरीर को ही अपना स्वरूप मानना अज्ञानता है। सारा संसार इसी जाल में फँसा हुआ है। यही कारण है कि उपरोक्त चौपाई में माया के द्वारा सभी प्राणियों को ठगा हुआ वर्णित किया गया है।

**आंही सोहेली थई तम थकी, एहेने ओलखतूं कोय नथी।**

**सुकदेवें तो कांईक कथी, बीजा रह्या मथी मथी॥३५॥**

हे धाम धनी! आज तक जिस माया को कोई भी स्पष्ट रूप से पहचान नहीं सका, आपकी कृपा से उससे पार हो जाना अब सरल हो गया है। इस माया के विषय में

शुकदेव जी ने तो कुछ कह भी दिया, किन्तु अन्य लोग तो खोजते ही रह गये, किन्तु माया का भेद नहीं जान पाये।

एहेने निरमूल करी नाखी तमे, हजी जोपे जाणी नथी अमे।

एहेना रमाड्यां सहु रमे, मांहे बंधाणां सहु को भमे॥३६॥

यद्यपि आपने इस माया को जड़-मूल से नष्ट कर देने के लिये हमें तारतम ज्ञान का प्रकाश दे दिया, किन्तु अभी भी हम इसे यथार्थ रूप से नहीं जान पाये हैं। संसार के सभी प्राणी इसके बनाये हुए खेल में भटक रहे हैं तथा इसके बन्धनों में बन्धे हुए हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के प्रथम चरण का अर्थ ऐसा नहीं किया जा सकता कि धाम धनी ने माया को जड़-मूल से नष्ट कर दिया है। यदि वर्तमान में माया है ही नहीं, तो



यह संसार का खेल कैसे चल रहा है?

वस्तुतः तारतम ज्ञान के प्रकाश में जो भी सुन्दरसाथ अपने हृदय में धनी के प्रति अटूट विश्वास एवं प्रेम (ईमान तथा इश्क) लेगा, वह अपने अन्दर की (मानसिक) माया को जड़-मूल से नष्ट कर देगा। यद्यपि अन्तःकरण (मन+चित्त+बुद्धि+अहंकार) की रचना भी माया से ही हुई होती है, किन्तु उसमें माया (प्रकृति) के सुखों के भोग की जो प्रवृत्ति होती है, उसे ही इस चौपाई में माया से जुड़ना कहा गया है।

ए वचन तो आंहीं केहेवाय, जे अमे न बंधाऊँ मायाय।

एहना बंध पड्या सहु कायाय, अमे छूट्या धणीनी दयाय॥३७॥

इस तरह की बातें तो इसलिये कही जा रही हैं, क्योंकि इस समय मैं माया के बन्धनों से मुक्त हूँ। सभी शरीरधारी

प्राणी इसके घोर बन्धनों में जकड़े हुए हैं। मैं तो धाम धनी की कृपा से इसके बन्धनों से छूट गयी हूँ।

**भावार्थ-** सृष्टि के प्रारम्भ में जीव को तीन प्रकार के शरीर प्राप्त होते हैं-

१. कारण शरीर (अन्तःकरण)

२. सूक्ष्म शरीर (१० इन्द्रिय + ५ सूक्ष्मभूत + ४ अन्तःकरण)

३. स्थूल शरीर (पञ्चभूतात्मक + सूक्ष्म + कारण)

स्थूल शरीर तो मृत्यु के पश्चात् नष्ट हो जाता है तथा जन्म के द्वारा पुनः नये रूप में प्राप्त होता है। सूक्ष्म और कारण शरीर मोक्ष से पूर्व तक जीव के साथ जुड़े रहते हैं। ब्राह्मी अवस्था में तीनों शरीरों के विद्यमान रहने पर भी मायावी विकारों का प्रभाव नहीं पड़ता , किन्तु ब्रह्म-साक्षात्कार से पूर्व तीनों शरीरों में किसी न किसी रूप में

माया का प्रवेश अवश्य रहता है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि ये तीनों शरीर भी माया से ही बने होते हैं।

**एम चौद लोकमां कोई नव कहे, जे पार मायानों आ लहे।**

**मोटी मत धणीमां रहे, बीजा भार पुस्तक केरा वहे॥३८॥**

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में किसी को भी ऐसा दावा नहीं करना चाहिए कि मैंने माया को पार कर लिया है (जीत लिया है)। माया से परे का ज्ञान देने वाली जाग्रत बुद्धि तो एकमात्र धनी के ही पास है। संसार तो स्वप्न की बुद्धि के बने हुए ग्रन्थों का बोझ ढो रहा है।

**भावार्थ—** एकमात्र जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान में ही सामर्थ्य है कि वह परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला के ऊपर प्रकाश डालकर माया-ब्रह्म का अलग-अलग निरूपण कर सकता है। शेष अन्य ग्रन्थ न तो माया और

ब्रह्म के स्वरूप की अलग-अलग विवेचना कर सकते हैं और न माया से परे होने की स्पष्ट राह बता सकते हैं। इस सम्बन्ध में परिक्रमा ग्रन्थ २/११ का यह कथन ध्यान देने योग्य है—

एते दिन त्रैलोक में, हुती बुध सुपन।

सो बुध जी बुध जाग्रत ले, प्रगटे पुरी नौतन॥

**साखी— सास्त्र पुराण वेदांत जो, भागवत पूरे साख।**

**नहीं कथा ए दंतनी, सत वाणी ए वाक॥३९॥**

वेदान्त आदि छः शास्त्र (दर्शन) तथा भागवत आदि पुराण सत्य की साक्षी देने वाले ग्रन्थ हैं। तारतम्य वाणी अक्षरातीत की पहचान कराने वाली पूर्णतया सत्य वाणी है। यह पौराणिक ग्रन्थों की तरह दन्तकथाओं का संकलन नहीं है, अपितु इससे परब्रह्म की यथार्थ पहचान

होती है।

**विशेष-** उपरोक्त दोनों चौपाइयों (३८, ३९) को देखकर उन सुन्दरसाथ को आत्म-मन्थन करना चाहिए, जो भागवत आदि ग्रन्थों को ब्रह्मवाणी (तारतम वाणी) के समकक्ष मानते हैं।

आ वेराट माहें दीसे नहीं, पार वचन सुध जेह।

लवो मुख बोलाय नहीं, तो केम पार पामे तेह॥४०॥

इस ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई भी दिखायी नहीं देता, जिसे निराकार से परे बेहद मण्डल एवं परमधाम की सुधि हो। जब कोई बेहद मण्डल के बारे में एक अक्षर भी नहीं बोल पाता, तो उसके भी परे स्थित अनादि परमधाम के बारे में वह कैसे बता सकता है?

चाल-

हवे मायानों जे पामसे पार, तारतम करसे तेह विचार।

ब्रह्मांड मांहे तारतम सार, एणे टाल्यो सहुनो अंधकार॥४१॥

अब तो यह बात पूर्ण रूप से निश्चित है कि जो तारतम ज्ञान का विचार करके उसको आचरण में उतारेगा, वह निश्चित रूप से इस भवसागर से पार हो जायेगा। इस ब्रह्माण्ड में धाम धनी का लाया हुआ तारतम ज्ञान ही सर्वोपरि सार तत्त्व है, जिसने सभी अज्ञानमयी भ्रान्तियों का निराकरण (समाधान) किया है।

**द्रष्टव्य-** तारतम ज्ञान (वाणी) को आचरण में लाने का अभिप्राय है- एक सच्चिदानन्द परब्रह्म के प्रति अटूट विश्वास (ईमान) लेकर अनन्य प्रेम के द्वारा रिझाना।

लोक चौद मायानों फंद, सहु छलतणा ए बंध।

समझया विना सहुए अंध, तारतम केहेसे सहु सनंध॥४२॥

चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड माया का जाल ही है, जिसमें से किसी का भी निकल पाना बहुत कठिन होता है। इस ब्रह्माण्ड (स्वर्ग, वैकुण्ठ, आदि) का सुख एक प्रकार से छलमयी ही है, जो सबके लिये बन्धन का कारण होता है। इसकी वास्तविकता को न समझ सकने के कारण, संसार के सभी प्राणी अन्धों के समान इसके मोह जाल में इस प्रकार फँसे रहते हैं कि वे किसी भी प्रकार से निकल नहीं पाते। एकमात्र तारतम ज्ञान से ही इस प्रपञ्चमयी जगत की सारी वास्तविकता जानी जाती है।

नहीं राखूं संदेह एक, पैया काढूं सहुना छेक।

आ वाणी थासे अति विसेक, कहूं पारना पार विवेक॥४३॥

मैं किसी भी सुन्दरसाथ के मन में नाम मात्र (एक) भी संशय नहीं रहने देना चाहती। इसलिये इस तारतम वाणी के द्वारा मैं सभी ब्रह्माण्डों (हृद-बेहृद) की सीमा निर्धारित करते हुए परमधाम की राह दर्शाती हूँ। इस प्रकार इस ब्रह्मवाणी की गरिमा बहुत ही विशेष सिद्ध होती है, क्योंकि इसके द्वारा मैं निराकार-बेहृद से परे परमधाम की प्रेममयी लीला, जो रास के रूप में केवल ब्रह्म में खेली गयी थी, का वर्णन करने जा रही हूँ।

न केहेवाय माया मांहे आ वाणी, पण साथ माटे कहेवाणी।

साथ आवसे रूदे आंणी, ते में नेहेचे कह्यू जाणी॥४४॥

यद्यपि यह अलौकिक ब्रह्मवाणी इस मायावी जगत में



कहने योग्य नहीं है, किन्तु सुन्दरसाथ की आत्म-जाग्रति के लिये मुझे कहनी पड़ रही है। यह बात मैं निश्चित रूप से जानती हूँ कि धनी के द्वारा मुझसे कहलायी गयी यह तारतम वाणी जब सुन्दरसाथ के हृदय में बस जायेगी, तो वे निश्चित ही प्रियतम अक्षरातीत के चरणों में आ जायेंगे।

**भारे वचन छे निरधार, साथ करसे एह विचार।**

**जो न कहूं सतनो सार, तो केम साथ पोहोंचसे पार॥४५॥**

यह बात पूर्ण रूप से सत्य है कि तारतम वाणी के वचन बहुत ही गरिमामयी (महत्वपूर्ण) हैं। इसलिये यह तो निश्चित है कि सुन्दरसाथ इन वचनों का गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे। यदि मैं परमधाम (सत्य) के सार तत्त्व रूपी प्रेममयी लीला का वर्णन न करूँ, तो सुन्दरसाथ इस

भवसागर से परे कैसे होंगे?

**भावार्थ-** अक्षरातीत की प्रेममयी लीला को देखने की इच्छा अक्षर ब्रह्म ने की थी, जो महारास के रूप में केवल ब्रह्म में दर्शायी गयी। इस प्रकार परमधाम का सार रूप वहाँ की शोभा और लीला है, जिसको आत्मसात् करने पर अखण्ड धाम का द्वार प्राप्त होता है।

**साखी-** साथ मलीने सांभलो, जागी करो विचार।

जेणे अजवालूं आ करयूं, परखो पुरूख ए पार॥४६॥

हे साथ जी! आप सभी मिलकर मेरी इस बात को सुनिए और जाग्रत होकर (सावधानी से) इस बात का विचार कीजिए। बेहद से भी परे परमधाम के जिस परम पुरुष अक्षरातीत ने तारतम ज्ञान का यह प्रकाश फैलाया है, उसकी पहचान कीजिए।

**विशेष-** "साखी" का शुद्ध शब्द "साक्षी" होता है। यह हिन्दी के साहित्य की काव्य रचना का एक भाग है। कबीर जी की रचनायें साखी, शब्द, और रमैनी के रूप में मिलती हैं। यहाँ भी साखी शब्द से ऐसा ही आशय लेना चाहिए।

**आपण हजी नथी ओलख्या, जुओ विचारी मन।**

**विविध पेरे समझावियां, अने कही निध तारतम॥४७॥**

यदि आप अपने मन में विचार करके देखें तो यही बात प्रमाणित होती है कि हमने अभी तक अपने प्रियतम अक्षरातीत को नहीं पहचाना है। श्री राज जी ने श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान होकर हमें जाग्रत करने के लिये अनेक प्रकार से समझाया और तारतम ज्ञान के रूप में हमें परमधाम की अखण्ड निधि प्रदान

की।

**द्रष्टव्य-** उपरोक्त चौपाई का कथन उस समय का है, जब श्रीजी दीवबन्दर में जयराम जी को प्रबोधित कर रहे हैं।

नित प्रते सहु साथने, वालो जी दिए छे ए सार।

दया करीने वरणवे, आपण आगल आधार॥४८॥

पहले श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान होकर हमारे जीवन के आधार श्री राज जी सब सुन्दरसाथ को प्रतिदिन ही अति कृपापूर्वक सबके सार रूप अखण्ड का ज्ञान देते रहे हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में "आगल" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अभिप्राय पहले अर्थात् श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला है। इसमें इस

बात का संकेत किया गया है कि इस लीला के ओझल होने के पश्चात् श्री मिहिरराज जी के तन से लीला हो रही है, जिसका सांकेतिक वर्णन ५०वीं चौपाई में तथा स्पष्ट वर्णन ७६वीं चौपाई में किया गया है।

**वृजतणी लीला कही, वली विसेखे रास।**

**श्रीधाम तणा सुख वरणवे, दिए निध प्राणनाथ॥४९॥**

हमारे प्राणाधार प्रियतम ने श्री देवचन्द्र जी के तन से ब्रज की मधुर लीलाओं का वर्णन किया। किन्तु उससे भी अधिक विशेषतः रास की लीला सुनायी। इसके अतिरिक्त उन्होंने परमधाम की लीलाओं का वर्णन करके वहाँ का भी सुख दिया।

**भावार्थ—** इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "प्राणनाथ" शब्द का प्रयोग श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय

में विराजमान होकर लीला करने वाले श्री राज जी के लिये हुआ है। श्री मिहिरराज जी के तन को "प्राणनाथ" मानना सत्य को ढकने का एक असफल प्रयास ही कहा जा सकता है।

**हवे एह धणी केम मूकिए, वली वली करो विचार।**

**मूल बुध चेतन करी, धणी ओलखो आ वार॥५०॥**

हे साथ जी! आप इस बात का बारम्बार विचार कीजिए कि पल-पल हमारी सुधि लेने वाले ऐसे प्रियतम अक्षरातीत को कैसे भूला जा सकता है? जिस अक्षरातीत ने अपनी जाग्रत बुद्धि के ज्ञान से हमें माया में सावचेत (जाग्रत) किया है, उन्हें इस जागनी लीला में पहचान लीजिए।

**भावार्थ-** श्री देवचन्द्र जी का तन छोड़ने के पश्चात्

युगल स्वरूप श्री मिहिरराज जी के धाम हृदय में विराजमान हो जाते हैं, तथा जागनी लीला प्रारम्भ हो जाती है। जब श्रीजी दीवबन्दर पधारते हैं, उस समय वि.सं. १७२२ का समय होता है। इसलिये उस समय का कथन "धणी ओलखो आ वार", निःसन्देह श्री मिहिरराज जी के धाम हृदय में लीला करने वाले अक्षरातीत के लिये ही है।

आ जोगवाई छे जाग्या तणी, अने विचार माहें समझण।

जे समझो ते जागजो, पण आ अवसर अरधो खिण॥५१॥

जागनी के विचारों में ओत-प्रोत होकर स्वयं को, धनी को, तथा परमधाम को समझने, एवं आत्म-जाग्रति के लिये यह सुनहरा अवसर है। इस तथ्य को जो सुन्दरसाथ समझ गये हैं, वे जाग्रत हो जायें। ऐसा मेरा

आह्वान है, किन्तु यह ध्यान रखना होगा कि यह अवसर मात्र आधे क्षण अर्थात् अति अल्प समय के लिये ही हमें प्राप्त हुआ है।

**भावार्थ-** मानव जीवन क्षणभँगुर है। किसी भी क्षण किसी का शरीर छूट सकता है, इसलिये आत्म-जाग्रति हेतु तारतम वाणी के चिन्तन तथा परमधाम की चितवनि में समय न होने का बहाना बनाते हुए आलस्य करना घातक होता है। इसी कारण मनुष्य की वर्षों वाली उम्र को यहाँ आधे क्षण के दृष्टान्त से दर्शाया गया है।

आगे धणी पधारया अममां, अमे करी न सक्या ओलखांण।

ए निखरपणे निध निगमी, थई ते अति घणी हांण॥५२॥

पूर्व काल में श्री राज जी ने हमारे मध्य श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान होकर लीला की, किन्तु



हमने उनके स्वरूप की पहचान नहीं की। अपनी लापरवाही से हमने अपनी अनमोल सम्पदा को खो दिया, जिसके परिणामस्वरूप हमारे आध्यात्मिक धन की बहुत अधिक हानि हुई।

**भावार्थ-** श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में अक्षरातीत के विराजमान होने से परमधाम की सभी निधियाँ (ज्ञान, प्रेम, आनन्द, एकत्व, आदि) उनमें निहित थीं। उनके चरणों की सान्निध्यता से ये निधियाँ अनायास ही प्राप्त हो जातीं, किन्तु सुन्दरसाथ आड़िका लीला के सम्मोहन में इस प्रकार फँस गया कि सद्गुरु के चरणों से परमधाम की विशेष सम्पदा प्राप्त न कर सका। इसे ही अपनी आत्मिक क्षेत्र की हानि होना कहा गया है। अगली चौपाई के चौथे चरण में भी यही भाव विद्यमान है।

आव्या धणी न ओलख्या, अमे भूल्या एणी भांत।

विना विचारे न समझ्या, निगमी निध साख्यात॥५३॥

अपने मध्य (श्री देवचन्द्र जी के तन में) आये हुए धाम धनी को हमने नहीं पहचाना। इस प्रकार, माया की नींद में होने के कारण हम उन्हें भूले ही रहे। उनके द्वारा कहे गये तारतम ज्ञान के वचनों का विचार न करने के कारण ही हम उन्हें यथार्थ रूप में समझ नहीं पाये। कुछ समय तक लीला करने के पश्चात् साक्षात् आये हुए धाम धनी ओझल हो गये (श्री देवचन्द्र जी ने तन का परित्याग कर दिया)।

चाल-

जो ए विचारिए एक वचन, तो अलगां थैए पासेथी केम।

दीजे प्रदखिणा रात ने दिन, कीजे फेरो सुफल धन धन॥५४॥

यदि हम सद्गुरु महाराज द्वारा कहे हुए तारतम ज्ञान के एक वचन का भी विचार करते, तो वे हमसे अलग ही क्यों होते? हमें तो उनके स्वरूप (अक्षरातीत) की पहचान करके दिन-रात उनकी परिक्रमा करनी चाहिए थी। ऐसा करने पर इस जागनी ब्रह्माण्ड में हमारा आना धन्य-धन्य हो जाता।

**भावार्थ-** यहाँ यह संशय होता है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने ३१३ आत्माओं को तारतम ज्ञान दिया। क्या किसी भी सुन्दरसाथ में सद्गुरु के उपदेशों का विचार करने की प्रवृत्ति नहीं थी?

वस्तुतः यहाँ परोक्ष रूप में जयराम भाई को ही कहा गया है कि यदि वे सद्गुरु महाराज के वचनों का विचार करते तो उम्र के इस पड़ाव में माया में नहीं फँसे रहते। जागनी कार्य हेतु धाम धनी को तो श्री देवचन्द्र जी का

तन छोड़कर श्री मिहिरराज जी के अन्दर विराजमान होना ही था, किन्तु यहाँ जयराम भाई को मीठी झिड़की (मधुर डाँट) दी गयी है कि आप जैसे सुन्दरसाथ माया में निरन्तर फँसे ही रहे, इसलिये राज जी ने सबसे ओझल हो जाना उचित समझा।

प्रदक्षिणा देने का कथन यहाँ बाह्य अर्थों में नहीं लेना चाहिए, बल्कि इसका अभिप्राय यह है कि हमें अपने हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा को सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के प्रति इस प्रकार केन्द्रित कर देना चाहिए था कि हमें ऐसा प्रतीत होता, जैसे उनसे एक पल के लिये भी हम भावात्मक रूप से अलग नहीं हैं। यह स्थिति वैसी ही है, जैसे किसी वृत्त की परिधि पर घूमता हुआ व्यक्ति केन्द्र से हमेशा बराबर की दूरी बनाये रखता है।

दीवे टाल्यो ज्यारे सुंन सोहाग, त्यारे पतंग पाम्यो वेराग।

कां झंपावी ओलवे आग, कां कायानो करे त्याग॥५५॥

जब दीपक जलाया जाता है तो अन्धेरा नष्ट हो जाता है। अन्धकार ही पतंगे का सुहाग (प्रियतम) होता है। पतंगा अपने प्रियतम से बिछुड़ जाने के कारण संसार से विरक्त हो जाता है, और विरह में या तो झांप मारकर दीपक की लौ को मिटा देता है, या स्वयं ही उसमें जलकर अपना प्राणान्त कर लेता है।

जुओ जीवतणी ए रीत, नव मूके अंधेरनी प्रीत।

धणी अमारो अछरातीत, अमे तोहे न समझया पतीत॥५६॥

हे साथ जी! इस बात को विचार करके देखिए कि जीवसृष्टि का एक तुच्छ प्राणी कहा जाने वाला पतंगा भी प्रेम की राह पर कितनी तन्मयता से चलता है। वह अपने

सुहाग (अन्धेरे) से प्रेम नहीं छोड़ता और उसके वियोग में अपने प्राण तक छोड़ देता है। हम सुन्दरसाथ तो ब्रह्मसृष्टि कहलाते हैं और हमारे प्रियतम सच्चिदानन्द अक्षरातीत हैं। किन्तु माया की नींद में हम इतने पतित हो चुके हैं कि पतंगे की प्रेममयी राह को जानकर भी आचरण में उतार नहीं पाते और धनी से विमुख होकर संसार में प्रसन्नतापूर्वक रहने का प्रयास करते हैं।

**हवे घर मांहेँ ऊँचू केम जोसूं, हंसी कही वात न करी वरसूं।**

**ए धणी विना केने अनुसरसूं, हवे अमे रोई रोईने मरसूं॥५७॥**

इस नश्वर जगत में अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के साथ हमने प्रेमभरी हँसी की मधुर बातें नहीं की हैं। ऐसी स्थिति में जब परमधाम में हम अपने मूल तनों में जाग्रत होंगे, तो अपने प्रियतम के सामने मुख ऊँचा करके कैसे

देखेंगे? हमारा इस संसार में श्री राज जी के अतिरिक्त और कौन है, जिसका हम अनुसरण करें? अब तो हमें अपने धनी के वियोग में रो-रोकर ही मरना होगा।

**भावार्थ-** हास्य भाव के साथ मधुर प्रेम की वार्ता करने का आशय है, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के यथार्थ स्वरूप को पहचान कर अपने हृदय का सर्वस्व प्रेम समर्पित करना।

अपराध बोध से ग्रसित व्यक्ति की आँखें नीची रहती हैं। वह किसी से दृष्टि नहीं मिला पाता।

रो-रोकर मरने का तात्पर्य है, आजीवन विरह में तड़पते रहना।

ए अमारी वीतकनी विध, मूने मरडी कीधी बेसुध।

अमने छेतरया एणी बुध, तो गई अखंड अमारी निध॥५८॥

धाम धनी के साथ हमारा इस प्रकार का घटनाक्रम घटित हुआ। माया ने मुझे मरोड़कर बेसुध कर दिया। इसने हमारी बुद्धि को भी पूरी तरह से ठग लिया, अर्थात् अपने अधीन करके धनी से विमुख कर दिया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि परमधाम की हमारी अखण्ड निधि हमसे ओझल हो गयी।

**भावार्थ-** माया के द्वारा मरोड़े जाने का अर्थ है, माया के द्वारा हारकर शक्तिहीन सा हो जाना। प्रियतम अक्षरातीत ही आत्माओं के सर्वस्व हैं, जीवन के आधार हैं। इसलिये उपरोक्त चौपाई में उन्हें अखण्ड निधि (धन) के रूप में वर्णित किया गया है।

जो पाणीवल अलगां जाय, तो खिनमात्र वरसां सो थाय।  
धणी विना केम रहेवाय, जो कांईक निध ओलखाय॥५९॥



यदि श्री देवचन्द्र जी के तन में विराजमान प्राणेश्वर अक्षरातीत की हमें पहचान हो गयी होती, तो उनके बिना हम एक पल के लिये भी इस नश्वर संसार में कैसे रह पाते? उनके वियोग में एक-एक क्षण भी बरसों के समान लम्बा प्रतीत होता।

**मीन जल विना जेणी अदाय, अंतर ब्रह न खमाय।**

**तो ब्रह आपण केम सेहेवाय, जो एक लवो समझाय॥६०॥**

जिस प्रकार जल ही मछली का जीवन होता है और वह अपने जीवन के आधार जल का जरा भी विरह सहन नहीं कर पाती, उसी प्रकार यदि हमने भी तारतम ज्ञान के एक वचन को आत्मसात् करके अपने प्राण जीवन अक्षरातीत की पहचान कर ली होती, तो किसी भी स्थिति में उनका विरह सहन नहीं कर पाते।

**विशेष-** "एक वचन" का तात्पर्य है, तारतम ज्ञान की थोड़ी सी भी चर्चा को आत्मसात् करना। उपरोक्त सभी चौपाइयों के कथन जयराम भाई को जाग्रत करने के लिये ही कहे गये हैं, किन्तु सम्बोधन सामूहिक रूप से किया गया है, व्यक्तिगत नहीं।

**अमे ब्रह धणीनो खम्या, जे दिन वृथा निगम्या।**

**अमे भरम मांहे भम्या, जो अगनी ब्रह न दम्या॥६१॥**

धनी का विरह सहन कर, हम व्यर्थ में ही इतने दिनों तक समय नष्ट करते रहे हैं। हम तो अब तक माया के भ्रम में ही भटकते रहे और अपने प्राणेश्वर के विरह की अग्नि में नहीं जल सके।

**द्रष्टव्य-** प्रकाश वाणी के विरह के प्रकरणों से यह स्पष्ट है कि श्री मिहिरराज जी ने स्वयं को धनी के विरह की

अग्नि में झोंक दिया था, किन्तु जयराम भाई सहित अन्य सुन्दरसाथ को शिक्षा (सिखापन) देने के लिये यहाँ सामूहिक रूप से दोष मानकर कथन किया गया है।

**साखी-** एणे मोहे माहूं करया, करी न सकया विचार।

**सुनाई आवी सहुने, तो आडो आव्यो संसार॥६२॥**

इस माया ने मुझे अपने अन्दर कर (निगल) लिया, अर्थात् मुझे अपने अधीन कर लिया, जिसके परिणाम स्वरूप संसार छोड़ने के सम्बन्ध में मैं कुछ भी विचार नहीं कर सकी। सब कुछ देखते-सुनते रहने पर भी माया के प्रभाव से मेरे और धनी के बीच में यह संसार का पर्दा आ गया।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण का आशय यह है कि श्री मिहिरराज जी को ज्ञान दृष्टि से मायावी संसार

की नश्वरता तथा आत्मा-परब्रह्म की अखण्डता का बोध तो था, किन्तु माया के प्रभाव से आत्मिक दृष्टि के न खुलने से प्रियतम पर पूर्ण रूप से न्योछावर नहीं हो सके थे।

वस्तुतः यह कथन परोक्ष रूप से जयराम भाई सहित अन्य सुन्दरसाथ के लिये है। श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप तो श्री मिहिरराज जी के अन्दर शोभायमान हो ही चुके थे। ऐसी अवस्था में उन्हें माया की नींद में सोया हुआ नहीं कहा जा सकता। हृदय की घटना के बाद दीवबन्दर जाने के समय में लगभग ७ वर्ष का अन्तर होता है।

जो विध लहुं वचननी, तो संसार अमने सूं।

एनुं काई चाले नहीं, जो ओलखूं आपोपूं॥६३॥

यदि मैं तारतम ज्ञान के वचनों को यथार्थ रूप से अपने आचरण में उतार लेती, तो मेरे लिये भला इस संसार का महत्व ही क्या रहता? कुछ भी नहीं। जो भी अपने निज स्वरूप की तथा अपने प्राणेश्वर की वास्तविक पहचान कर लेगा, वह इस प्रकार की भूल कभी नहीं करेगा।

**भावार्थ—** धनी के द्वारा कहे गये तारतम ज्ञान के वचनों की वास्तविकता को ग्रहण करने का आशय केवल ज्ञान दृष्टि से नहीं है, बल्कि अध्यात्म के उस स्तर पर पहुँचने से है, जिसमें प्रियतम के बिना संसार में रहने की इच्छा समाप्त हो जाये।

इस छठें दिन की लीला में अपने धाम हृदय में श्री राज जी को बसाये रखना ही संसार का त्याग है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान हो जाने के बाद भी जयराम भाई माया के कार्यों में इतने लिप्त थे कि उन्हें अपनी

आत्म-जाग्रति की जरा भी चिन्ता नहीं थी। वस्तुतः यह कथन उसी सन्दर्भ में है।

आगल एम कह्युं छे, जे आंधलो चाले सही।

ज्यारे भटके भीत निलाटमां, तिहां लगे देखे नहीं॥६४॥

पूर्वकाल से यह कहावत (तथ्य, बात) कही जाती रही है कि जब कोई अन्धा व्यक्ति मार्ग में जा रहा होता है, तो जब तक उसे सामने स्थित दीवार से शिर में चोट नहीं लगती, तब तक वह न तो दीवार का अनुभव कर पाता है और न उससे सावधान रहने का प्रयास ही करता है।

ते तां अमने अनभव्युं, अमे तोहे न जाणी सनंध।

घन लाग्यो कपालमां, अमे तोहे अंधना अंध॥६५॥

इस बात का हमने अनुभव तो किया, किन्तु

वास्तविकता को नहीं जान सके। हमारे शिर में लोहे के घन से भयंकर चोट लगी, फिर भी हम अन्धों में अन्धे ही बने रहे।

**भावार्थ-** सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का अन्तर्धान हो जाना लोहे के घन (बड़ा हथौड़ा) से शिर में चोट लगने की तरह है। तारतम वाणी का अवतरण न होने तथा आड़िका लीला के सम्मोहन में फँस जाने से, सुन्दरसाथ श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में शोभायमान श्री राज जी के स्वरूप की वास्तविक पहचान नहीं कर सका था। श्री मिहिरराज जी के साथ भी यही स्थिति थी। इसे ही इस चौपाई में "अन्धों में अन्धे" के कथन से सम्बोधित किया गया है।

आंखां तोहे न उघडी, वाले कही अनेक विध।

अंध अमे एवां थयां, निगमी बेठा निध॥६६॥

यद्यपि धाम धनी तारतम ज्ञान द्वारा हमें अनेक प्रकार से समझाते रहे, फिर भी हमारी अन्तर्दृष्टि नहीं खुल पायी, जिससे कि हम अपने आराध्य की पहचान कर सकें। माया की नींद में हम इस प्रकार सोते रहे कि हमने अपने प्राणेश्वर को ही खो दिया।

**भावार्थ-** श्री देवचन्द्र जी का अन्तर्धान तो अपने निश्चित समय पर होना ही था, किन्तु श्री मिहिरराज जी को प्रायश्चित् इस बात का है कि यदि उन्होंने उचित समय पर अपने धाम धनी की पहचान कर ली होती तो जी भर कर उन्हें रीझा लिया होता। अपनी इसी भूल को भावुकता भरे भावों में उन्होंने कहा है कि मेरे द्वारा पहचान न होने के कारण धनी मुझसे ओझल हो गये।



इसी प्रकार का संकेत सब सुन्दरसाथ सहित जयराम भाई के लिये है।

**अंधने आंख रूदे तणी, पण अमने मांहे न बाहेर।**

**तो निध खोई हाथ थी, जो कीधो नहीं विचार॥६७॥**

बाह्य आँखों से अन्धे होने वाले व्यक्ति की अन्तर्दृष्टि (हृदय की आँखें) खुली होती है, किन्तु न तो हमारी बाहर की खुली थी और न अन्दर (हृदय) की। यही कारण है कि प्रियतम के कथनों का विचार करके हमने उनकी पहचान नहीं की, जिसका परिणाम यह हुआ कि हमने अपने आत्मिक धन (प्रियतम) को खो दिया।

चाल-

अंधने आंख रूदे तणी होय, पण अमने नव दीसे कोय।

अमे तो रह्या निध खोय, टांणे भूल्या सूं थाय रोय॥६८॥

अन्धे व्यक्ति की तो हृदय की आँखें खुली होती हैं जिससे वह सावधान रहता है, किन्तु हमारी तो न बाहर की आँखें थीं और न अन्दर की। इसका परिणाम यह हुआ कि हमने अपनी अखण्ड निधि (धाम धनी) को खो दिया। प्रियतम को रिझाने का शुभ अवसर गँवा देने के पश्चात्, अब रोने से क्या लाभ है?

गए अवसर सूं थाय पछे, धन गए हाथ सहु घसे।

मांहे हांण बाहेर सहु हसे, ते तो मांहेनी मांहे रडसे॥६९॥

जिस प्रकार धन की चोरी हो जाने पर सभी लोग पश्चाताप में हाथ मलते रह जाते हैं, उसी प्रकार प्रियतम

को रिझाने का स्वर्णिम अवसर चूक जाने पर अब क्या हो सकता है? अपने घर के धन की हानि होने पर तो संसार के लोग हँसा ही करते हैं। इस प्रकार की भूल करने वाला अन्दर ही अन्दर रोया करता है। वह अपनी व्यथा किसी से भी कह नहीं पाता।

**साथ ए पेर अमसूं थई, निध हाथ आवी करी गई।**

**दिन घणां अम माहें रही, पण अमे दुष्टें जाणी नहीं॥७०॥**

हे साथ जी! हमसे इसी प्रकार की भयंकर भूल हुई है। हमारे हाथ में आयी हुई अखण्ड निधि (प्रियतम रूपी सम्पदा) हमसे अदृश्य हो गयी। बहुत दिनों तक हम उनकी सामीप्यता में रहे, किन्तु हम इतने दुष्ट थे कि हम उनके स्वरूप की यथार्थ पहचान नहीं कर सके।

दुरमती करे तेम कीधूं, अमृत ढोलीने विख पीधूं।

धणी सेहेजे आव्या सुख न लीधूं, कारज कोई नव सिध्यूं॥७१॥

एक दुष्ट बुद्धि वाला व्यक्ति जो अपराध करता है, हमने भी वही किया। अमृत से भी मधुर अपने प्रियतम का प्रेम छोड़कर माया के विष में लिप्त रहे। साक्षात् अक्षरातीत ही हमें सरलता से प्राप्त हो गये थे, किन्तु हम कितने मन्दभाग्य हैं जो उनसे प्रेम करके अपनी आत्मा का सुख न ले सके। इस प्रकार, हमारा कोई भी कार्य (आध्यात्मिक या भौतिक) सिद्ध नहीं हो सका।

**भावार्थ-** श्री मिहिरराज जी की पीड़ा यही है कि सद्गुरु महाराज को न रिझा पाने के कारण वे आध्यात्मिक लाभ नहीं ले सके और राज कार्य से प्राप्त होने वाले वेतन से सुन्दरसाथ की सेवा भी नहीं कर सके। यही स्थिति अन्य सुन्दरसाथ की भी रही है।

हवे ए दुख केणे कहिए, अंग मांहें आतम सहिए।

कीधूं पोतानुं लहिए, हवे दोष कोणे दैए॥७२॥

अब अपना दुःख मैं किसके आगे रोऊँ? इसे तो अपने अन्तर्मन (हृदय) में ही सहन करना होगा। मैंने जो कुछ भी अपराध किया है, उसका फल तो मुझे स्वयं ही भोगना होगा। भला अब मैं अपनी इस स्थिति के लिये किसको दोष दूँ?

**भावार्थ—** आत्मा इस खेल में मात्र दृष्टा है। वह जीव के ऊपर विराजमान होकर उसके हृदय रूपी पर्दे पर मायावी सुख-दुःख के खेल को देख रही है। जीव अपने अन्तःकरण (हृदय) के द्वारा सुख-दुःख का भोक्ता है। आत्मा इसी मायावी खेल में इतनी लीन हो गयी है कि वह अपने परात्म भाव को छोड़कर जीव भाव में तन्मय हो गयी है। आत्मा का हृदय तो परात्म के हृदय का ही

प्रतिबिम्ब है—

अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछु नांहे।

श्रृं. ११/७९

दिल मोमिन अर्स तन बीच में, उन दिल बीच ए दिल।

केहेने को ए दिल है, है अर्से दिल असल॥

श्रृं. २६/१४

यहाँ जीव भाव में तन्मय हो जाने के कारण ही जीव के हृदय से अनुभव होने वाले दुःख को आत्मा के हृदय (अंग) से अनुभव करने की बात कही गयी है।

तोहे धणिए हाथथी मूकी नहीं, तो वली आपणमां आव्या सही।

ए निध मुखथी न जाय कही, जे आंहीं अम ऊपर दया थई॥७३॥

इतना कुछ होने पर भी धाम धनी ने मेरा हाथ नहीं

छोड़ा और पुनः (श्री देवचन्द्र जी के हृदय में शोभायमान होने की तरह) मेरे धाम हृदय में आकर विराजमान हो गये। हमारे ऊपर प्राणेश्वर अक्षरातीत ने जो असीम दया रूपी निधि की वर्षा की है, मेरे मुख से उसका वर्णन हो पाना कदापि सम्भव नहीं है।

**विशेष-** यद्यपि गुजराती भाषा में "आपणमां" का अर्थ हमारे अन्दर होने से है, किन्तु यहाँ पर श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान हो कर लीला करने का प्रसंग है। उपरोक्त चौपाइयों में अमे, अमने, आदि सभी शब्द बहुवचन के लिये प्रयुक्त किये गये हैं। एकवचन में अम, मने, म्हारा, अदि शब्दों का प्रयोग होगा।

धन गयूं ते आव्यूं वली, गयो अंधकार सहु टली।

सुखना सागर मांहे गली, एने बीजो न सके कोए कली॥७४॥

मेरा जीवनधन (प्रियतम) जो अदृश्य हो गया था, अब पुनः मुझे प्राप्त हो गया है। इसके परिणामस्वरूप मेरे अन्दर से माया का सारा अन्धकार भी समाप्त हो गया है। अब मैं प्रियतम के सुख रूपी सागर में डूबकर एकरूप हो गयी हूँ। अन्य कोई भी (बिहारी जी आदि) इस सुख को अब मुझसे छीन नहीं सकता है।

**हवे में सुख अखंड लीधां, मनना मनोरथ सीधां।**

**वाले आप सरीखडा कीधां, फल वांछाथी अधिक दीधां॥७५॥**

मेरे मन में अपने प्राणेश्वर के अखण्ड सुख को पाने का जो मनोरथ था, वह मुझे अब प्राप्त हो गया है। श्री राज जी ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर मुझे अपने समान बना लिया है। उन्होंने तो मेरी इच्छा से भी अधिक (आत्मिक सम्पदा) दिया है।



**भावार्थ-** हृद्देशे में जाने पर श्री इन्द्रावती जी की इच्छा अपने प्रियतम के दर्शन तक सीमित थी, किन्तु धाम धनी ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपना स्वरूप ही बना लिया, अर्थात् अक्षरातीत की शोभा देकर जागनी लीला का सारा उत्तरदायित्व उन्हें सौंप दिया। इस सम्बन्ध में क. हि. ९/४, ३० में कहा गया है-

कर पकर बैठाए के, आवेस दियो मोहे अंग।  
ता दिन थे पसरी दया, पल-पल चढ़ते रंग॥  
अंग बुध आवेस देय के, कहे तूं प्यारी मुझ।  
देने सुख सबन को, हुकम करत हों तुझ॥

**साखी-** कृपा कीधी अति घणी, वली आव्या तत्काल।  
तेहज वाणी ने तेहज चरचा, प्रेम तणी रसाल॥७६॥  
मेरे प्रियतम अक्षरातीत ने मेरे ऊपर अपार कृपा की है।

श्री देवचन्द्र का तन छोड़ने के बाद, वे उसी क्षण मेरे धाम हृदय में आकर पुनः पहले तन की तरह विराजमान हो गये हैं। अब वे मेरे तन से, पहले की तरह ही, प्रेम से भरी हुई वाणी में अखण्ड लीला की आनन्दमयी चर्चा कर रहे हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाइयों से उन सिद्धान्तों का खण्डन होता है, जिसमें यह कहा जाता है कि जोश ही श्री राज जी का स्वरूप (आवेश) है। वह थोड़े समय (वाणी अवतरण या चर्चा) के लिये ही तन में आता है तथा पुनः परमधाम चला जाता है।

वली वचन सोहामणां, वली वरणवनी विध विध।

आव्या ते आनंद अति घणे, ल्याव्या ते नेहेचल निध॥७७॥

अब मेरे तन से अक्षरातीत के द्वारा कहे हुए वही मनोहर

वचन सुनने को मिल रहे हैं। अनेक प्रकार के रसों से परिपूर्ण वर्णन करने की शैली भी वैसी (श्री देवचन्द्र जी जैसी) ही है। अब इस जागनी लीला में अत्यधिक आनन्द आ रहा है। धाम धनी हमारे लिये परमधाम की ज्ञान रूपी अखण्ड निधि लेकर आये हैं।

**ए निध निरमल अति घणी, दिए साथने सार।**

**कोमल चित करी लीजिए, जेम रुदे रहे निरधार॥७८॥**

तारतम ज्ञान रूपी यह निधि सम्पूर्ण ज्ञान का सार रूप है और अत्यन्त निर्मल है। सुन्दरसाथ की आत्म-जाग्रति के लिये ही धाम धनी ने यह सम्पदा प्रदान की है। हे साथ जी! आप अपने चित्त (हृदय) को कोमल बनाकर इसे ग्रहण कीजिए, जिससे आपके हृदय में यह अखण्ड रूप से विद्यमान रहे।

**भावार्थ-** तारतम वाणी अक्षरातीत के हृदय से प्रवाहित होने वाली माधुर्यता का रस है। इसको आत्मसात् करने के लिये पवित्र एवं कोमल हृदय चाहिए। निष्ठुर, क्रूर, एवं कठोर हृदय तारतम वाणी के गुह्य रहस्यों से अनभिज्ञ ही रह जाता है।

**पचवीस पख छे आपणा, तेमा कीजे रंग विलास।**

**प्रगट कह्या छे पाधरा, तमे ग्रहजो सहु साथ॥७९॥**

हे साथ जी! अपने परमधाम में पच्चीस पक्ष हैं। इनकी शोभा में चितवनि द्वारा आप अलौकिक आनन्द का रसपान करें। धाम धनी ने आत्म-जाग्रति के लिये चितवनि का यही मार्ग स्पष्ट रूप से बताया है। आप इसका अनुसरण अवश्य करें।

आपणू धन तां एह छे, जे दिए छे आधार।

रखे अधखिण तमें मूकतां, वालो कहे छे वारंवार॥८०॥

हमारे जीवन के आधार अक्षरातीत ने २५ पक्षों की चितवनि का जो ज्ञान दिया है, वह हमारी सर्वोपरि सम्पदा है। प्रियतम बारम्बार यह बात कह रहे हैं कि हे साथ जी! आधे पल के लिये भी चितवनि के सुख को न छोड़िए।

**द्रष्टव्य—** उपरोक्त दोनों चौपाइयाँ चितवनि की सर्वोपरि महत्ता को ही दर्शा रही हैं। यद्यपि ज्ञान तथा सेवा का भी महत्व है, किन्तु प्रेममयी चितवनि को छोड़कर आत्म-जाग्रति की कल्पना करना एक दिवा स्वप्न ही है।

पख पचवीस छे अति भला, पण ए छे आपणो धरम।

साख्यात तणी सेवा कीजिए, ए रूदे राखजो मरम॥८१॥

यद्यपि पच्चीस पक्षों का ज्ञान एवं उनकी शोभा की चितवनि बहुत ही उत्तम मार्ग है , किन्तु इस जागनी ब्रह्माण्ड में हमारा यह भी कर्तव्य है कि श्री मिहिरराज जी के धाम हृदय में विराजमान साक्षात् अक्षरातीत श्री राज जी की प्रेम के साथ सेवा करें। हे साथ जी! इस गहन रहस्य को आप अपने हृदय में बसा लीजिए।

**भावार्थ-** यह चौपाई श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की स्पष्ट पहचान कराती है। इसमें सुन्दरसाथ के लिये मूल स्वरूप श्री राज जी का ही निर्देश है कि श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में जो स्वरूप (श्री प्राणनाथ जी) विराजमान है, उसे साक्षात् मेरा ही स्वरूप मानकर परमधाम के भाव से सेवा करनी चाहिए।

श्री प्राणनाथ जी की तुलना कबीर, नानक, शुकदेव, और शिव आदि से करने वाले, तथा उन्हें सन्त, कवि,

एवं महापुरुष कहने वाले सुन्दरसाथ को यह बात चिन्तन में लानी चाहिए कि श्री प्राणनाथ जी की महिमा को छोटा कहने से उन्हें कोई लाभ होने वाला नहीं है।

दोनों स्वरूपों (मूल स्वरूप एवं श्री प्राणनाथ जी) में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि परमधाम में नूरमयी स्वरूप है, जबकि इस जागनी लीला में आवेश स्वरूप।

तुम ही उतर आए अर्स से, इत तुम ही कियो मिलाप।

तुम ही दई सुध अर्स की, जो अर्स में हो आप॥

श्रृं. २३/३१

चित ऊपर वली चालिए, धणी तणे वचन।

ए वाणी तमे चित धरो, हूं कहूं छूं द्रढ़ करी मन॥८२॥

हे साथ जी! मैं अपने मन में पूर्ण दृढ़ता लेकर यह बात

कह रही हूँ कि मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर अक्षरातीत श्री राज जी तारतम वाणी रूपी जो अलौकिक वचन कह रहे हैं, उसे अपने हृदय में धारण कीजिए तथा उसके अनुसार ही अपना आचरण (रहनी) भी बनाइए।

**दई प्रदखिणा अति घणी, करुं दंडवत परणाम।**

**सहु साथना मनोरथ पूरजो, मारा धणी श्री धाम॥८३॥**

मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत! अपनी आत्मिक दृष्टि से परमधाम के पच्चीस पक्षों की परिक्रमा करके, आपके चरणों में सर्वस्व समर्पण एवं अत्यधिक निष्ठा के साथ मैं प्रणाम करती हूँ, और आपसे यह प्रार्थना करती हूँ कि सब सुन्दरसाथ की इच्छाओं को पूर्ण कीजिए।

**भावार्थ—** "दण्डवत् प्रणाम" करने का आशय किसी के चरणों में लेट कर प्रणाम करने से है, जो यह बात दर्शाता



है कि मैंने आपके चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है। परमधाम में प्रेम की लीला है, अतः वहाँ दण्डवत् प्रणाम करने की रीति ही नहीं है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत दण्डवत् प्रणाम करने की परम्परा है, जिसको आधार मानकर इस चौपाई के दूसरे चरण में दण्डवत् प्रणाम करने की बात कही गयी है।

**मनना मनोरथ पूरण कीधां, मारा अनेक वार।**

**वारणे जाय इंद्रावती, मारा आत्मना आधार॥८४॥**

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राणेश्वर! आप मेरी आत्मा के आधार हैं। आपने पूर्व काल (परमधाम, ब्रज, एवं रास) में अनेकों बार मेरी इच्छाओं को पूर्ण किया है, इसलिये मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि आप मेरी इस प्रार्थना को अवश्य सुनेंगे और सुन्दरसाथ की आत्मिक

इच्छाओं को पूर्ण करेंगे। मैं आपके ऊपर बार –बार  
न्योछावर होती हूँ।

प्रकरण ॥१॥ चौपाई ॥८४॥

इस प्रकरण में भी माया के ऊपर प्रकाश डाला गया है।  
पूर्व प्रकरण में जहाँ माया के अधीन होने का प्रसंग था,  
वहीं इस प्रकरण में माया से परे हो जाने की अवस्था  
दर्शायी गयी है।

माया गई पोताने घर, हवे आतम तूं जाग्यानी केर।

तो मायानो थयो नास, जो धणिए कीधो प्रकास॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे मेरी आत्मा! अब तू  
अपनी आत्म-जाग्रति के लिये प्रयास कर, क्योंकि माया  
अपने घर चली गयी है। धाम धनी ने मेरे अन्दर  
विराजमान होकर तारतम वाणी का प्रकाश किया है,  
जिससे माया का नाश हो गया है।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई के प्रथम चरण में "माया का  
अपने घर चले जाना" तथा तीसरे चरण में "नाश होना"

कहा गया है। दोनों कथनों का मूल अभिप्राय एक होते हुए भी थोड़ा सा अन्तर है।

मोह अग्यान भरमना, करम काल और सुन्य।

ए नाम सारे नींद के, निराकार निरगुन॥

क. हि. २४/१९

प्रकृति का सूक्ष्मतम (महाकारण) रूप ही मोहसागर है, जिसे गुणात्मक रूप में अज्ञान (अविद्या) या भ्रम (संशय) कहते हैं। इसका व्यष्टि (व्यक्तिगत या अंश) रूप प्रत्येक प्राणी के अन्तःकरण में रहता है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, तथा अहंकार) की उत्पत्ति उस महत्तत्त्व से होती है, जो कारण प्रकृति से उत्पन्न होता है। इसी प्रकार मोहतत्त्व (महाकारण) को ही विवेचनात्मक स्तर पर प्रयुक्त करने से कारण प्रकृति के रूप में जाना जाता है। हमारी

इन्द्रियाँ उस अहंकार से उत्पन्न होती हैं, जो महत्तत्त्व से प्रगट होता है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि हमारी सभी इन्द्रियाँ व अन्तःकरण मायावी हैं, तथा इनमें विद्यमान "अज्ञान" या "भ्रम" मोहतत्त्व का ही व्यष्टि स्वरूप है।

तारतम ज्ञान के प्रकाश में सम्पूर्ण संशयों का निराकरण हो जाना ही माया का नाश हो जाना है। इसे ही दूसरे शब्दों में माया का अपने घर (समष्टि मोहतत्त्व) में विलीन हो जाना कहा गया है।

किन्तु यह अवस्था मात्र अध्ययन, श्रवन, या चिन्तन के द्वारा ही प्राप्त नहीं होती, बल्कि ज्ञान दृष्टि से स्वयं की, अक्षरातीत की, निज घर की, तथा प्रियतम के लीला रूपी तन (महामति) की पहचान करके मन, वाणी, और कर्म से प्रेम में डूबने पर ही प्राप्त होती है।

केम जाणिए माया गई, अंतर जोत ते प्रगट थी।

हवे आतम करे कांई बल, तो वाणी गाऊं नेहेचल॥२॥

यह कैसे जाना जाये कि हमारे हृदय में अब माया का अस्तित्व नहीं है? जब आत्मा के धाम हृदय में प्रियतम की शोभा का प्रकाश विराजमान हो जाता है, तो यही साक्षी मिलती है कि अब माया समाप्त हो गयी है। अब मेरी आत्मा यदि कुछ आत्मिक बल का प्रयोग करे, तो मैं अखण्ड धाम की वाणी का गायन (कथन) करूँ।

लघु दीर्घ पिंगल चतुराई, एह तो किवने छे बड़ाई।

एनो अर्थ हूं जाणू सही, पण आ निधमां ते सोभे नहीं॥३॥

पिंगलाचार्य द्वारा वर्णित छन्दशास्त्र के अनुसार, लघु और दीर्घ वर्णों (स्वर तथा व्यञ्जन) के मेल से, अपने बौद्धिक चातुर्य के द्वारा कविता करने पर श्रेष्ठ कवि की

शोभा प्राप्त होती है। इस तथ्य को मैं अच्छी तरह समझती भी हूँ कि छन्दबद्ध प्रक्रिया से श्रेष्ठ काव्य की रचना होती है, किन्तु इस ब्रह्मवाणी में लौकिक चातुर्य से उस तरह की रचना शोभा नहीं देती।

**भावार्थ-** आचार्य पिंगल द्वारा रचित छन्दशास्त्र "पैंगल शास्त्र" भी कहा जाता है। इसमें यह बात दर्शायी गयी है कि वर्णों के मेल से किस प्रकार सुन्दर रचना करनी है। परब्रह्म के आवेश से अवतरित ब्रह्मवाणी छन्दशास्त्र तथा काव्य अलंकार के बन्धनों से बँधी नहीं है, फिर भी उसमें अलौकिक काव्य सौन्दर्य है। उपरोक्त चौपाई यही बात प्रकट करना चाहती है।

मारे तो नथी कांई किवनुं काम, वचन कहेवा मारे धणी श्री धाम।  
जे आंहीं आवीने कह्या, गजा सारुं मारे चितमां रह्यां॥४॥

तारतम वाणी के रूप में कवितायें बनाना मेरा प्रयोजन नहीं है। मैं तो अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के वचनों को इस संसार में प्रकट करना चाहती हूँ। श्री राज जी ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर (यहाँ आकर) जिस अखण्ड लीला (महारास) का वर्णन किया है, उसे मेरी बुद्धि ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही ग्रहण किया है और वह अब मेरे चित्त में विद्यमान है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "यहाँ आकर कहा" का तात्पर्य श्री देवचन्द्र जी से नहीं लेना चाहिये। यदि श्री देवचन्द्र जी से सुनकर श्री मिहिरराज जी ने रास ग्रन्थ या शेष तारतम वाणी को कहा है, तो यह उनकी बुद्धि के द्वारा कही हुई रचना मानी जायेगी और इसे ब्रह्मवाणी की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

यदि यह कहा जाये कि इस चौपाई के चौथे चरण में भी



तो बुद्धि के द्वारा ग्रहण करने एवं चित्त के द्वारा उसे संरक्षित करने का वर्णन है, तो उसका आशय यह है कि जो अक्षरातीत पहले श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में लीला कर रहे थे, वही अब श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय से वाणी का अवतरण कर रहे हैं। किन्तु श्री इन्द्रावती जी के जीव की बुद्धि एवं चित्त में उसे ग्रहण करने का जितना सामर्थ्य है, उतनी ही वाणी उनके मुख से प्रकट हो पा रही है। इसके पूर्व जब श्री राज जी का आवेश श्री देवचन्द्र जी के मुख से चर्चा करता था, तो आड़िका (चमत्कारिक) लीला प्रकट हो जाती थी, किन्तु तारतम वाणी का अवतरण नहीं हो पाता था।

साथ आगल कहीस हूं तेह, पहेलां फेराना सनेह।

धणिए जे कह्यां अमने, सांभलो साथ कहूं तमने॥५॥

पहले फेरे ब्रज में जो सुन्दरसाथ आये थे, उनसे मैं ब्रज लीला के प्रेम का वर्णन करती हूँ। धाम धनी ने मेरे धाम हृदय में शोभायमान होकर जो कुछ कहा है, वही मैं आपसे कहती हूँ। हे साथ जी! आप उसे सुनिये।

तमे जोपे ग्रहजो द्रढ़ मन करी, हूं तमने कहूं फरी फरी।  
साथ सकल लेजो चित धरी, हूं वालोजी देखाडूं प्रगट करी॥६॥  
हे साथ जी! अपने मन को दृढ़ करके बहुत अच्छी तरह से इस बात को ग्रहण (हृदयंगम) कर लीजिए, जिसे मैं बार-बार आपसे कह रही हूँ। मैं ज्ञान द्वारा प्रियतम को प्रत्यक्ष रूप से दिखाती हूँ। उस दिव्य शोभा को आप सभी अपने हृदय मन्दिर (चित्त) में बसा लीजिए।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में श्री राज जी का प्रत्यक्ष दर्शन कराने का तात्पर्य ज्ञान दृष्टि से है, आत्मिक

दृष्टि से नहीं। आत्मिक दृष्टि से देखने के लिये चितवनि ही एकमात्र विकल्प (मार्ग) है। यह अवश्य है कि जब दोनों स्वरूप (श्री देवचन्द्र जी एवं श्री प्राणनाथ जी) चर्चा करते थे तो श्री राज जी आवेश स्वरूप से प्रकट होकर दर्शन देते थे। मारिफत (परम सत्य, विज्ञान) की अवस्था में पहुँची हुई ब्रह्मात्मा भी धनी की कृपा से कुछ पलों के लिये दर्शन करा सकती है।

उपरोक्त चौपाई में श्री इन्द्रावती जी का आशय यही है कि मैं धाम धनी के द्वारा खेली गयी महारास की लीला में उनके श्रृंगार का प्रत्यक्ष वर्णन कर रही हूँ। यदि आप सभी सुन्दरसाथ अपने हृदय में उस शोभा को बसायेंगे, तो आपको उसका प्रत्यक्ष दर्शन अवश्य होगा।

उपरोक्त कथन में एक गहन रहस्य यह भी है कि श्रृंगार का वर्णन वर्तमान अवस्था में ही किया जाता है। यही

कारण है कि रास बिहारी को श्री राज जी कह कर वर्णित किया गया है, जबकि यह बात सर्वविदित है कि वर्तमान समय में रास बिहारी श्री कृष्ण जी में श्री राज जी का आवेश नहीं है। वह मात्र नूरी तन है। उसके दर्शन को अक्षरातीत पूर्णब्रह्म का दर्शन नहीं माना जा सकता। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अतीत काल (रास) में श्री राज जी के द्वारा धारण किये गये तन का दर्शन है। यह बात प्र. हि. के पहले प्रकरण में ही कह दी गयी है— "रास खेल के आए घर, उमेदा न हुइयां पूरन।" श्रृंगार ग्रन्थ में इस प्रकार का कथन प्रेममयी भावुकता के कारण होता है। वस्तुतः शब्दों के संक्षिप्तीकरण में भी ऐसा कह दिया जाता है।

श्री देवचंदजी ने लागूं पाय, जेम आ दुस्तर जोपे ओलखाय।

दई प्रदखिणा करूं परणाम, जेम पोहोंचे मारा मननी हाम॥७॥

मैं श्री देवचन्द्र जी की परिक्रमा करके उनके चरणों में प्रणाम करती हूँ, जिनकी कृपा से मैंने इस कठिन माया की सरलता से पहचान कर ली और अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं को भी पूर्ण कर लिया।

**भावार्थ—** इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि "श्री देवचन्द्र जी" का सम्बोधन किसके लिये किया गया है— मूल स्वरूप अक्षरातीत के लिये या सद्गुरु स्वरूप श्री देवचन्द्र जी के लिये?

वि.सं. १७१२ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का धाम गमन हो गया था। ऐसी अवस्था में श्री इन्द्रावती जी के द्वारा दस वर्ष बाद भी श्री देवचन्द्र जी का नाम सम्बोधित करके बोलना आश्चर्य में डालने वाला है।

प्रकाश गुजराती का अवतरण हब्बे में वि.सं. १७१५ में हुआ था। उसमें अनेक स्थलों पर श्री देवचन्द्र जी को अक्षरातीत के रूप में ही सम्बोधित किया गया है, जैसे—  
श्री धणी जी सिधावतां, केम रही वाचा अंग।

प्र. गु. ५/४

वालो जी रे विछडतां, तमे लोही नव रोयूं। प्र.गु. ५/७  
मूंजी सैयल रे, सजण हुअडा मूं गरे। प्र. गु. ६/१  
प्रेम भरे सम्बोधन में उन्होंने कहीं—कहीं नाम (श्री देवचन्द्र जी) का भी उल्लेख किया है, किन्तु भाव वही रहा है।

श्री देवचन्द्र जी अम कारणे, रूदें तमारे आव्या।

प्र. गु. १०/२

यही कथन दीवबन्दर में तारतम की चार चौपाइयों के अवतरण में भी किया गया। वहाँ पर "श्री देवचन्द्र जी

सत्य छे" उतरा, जो प्र. हि. की प्रकटवाणी में "श्री श्यामा जी वर सत्य है" के रूप में परिवर्तित हो गया। उपरोक्त विवेचना से यही स्पष्ट है कि श्री मिहिरराज (श्री इन्द्रावती, महामति) की दृष्टि में मूल स्वरूप अक्षरातीत ही श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में शोभायमान थे, इसलिये उन्होंने नूरी स्वरूप तथा आवेश स्वरूप में कोई भी भेद नहीं माना, भले ही इसके लिये किसी भी शब्द (श्री देवचन्द्र जी) का प्रयोग क्यों न किया हो।

जेटली सनंध कही छे तमे, ते द्रढ़ करी सर्वे जोड़ए अमे।

लीला तमे कही अपार, तेह तणो नव लाधे पार॥८॥

मेरे धाम धनी! आपने गुह्य ज्ञान की जो भी बातें कही हैं, उन सबके विषय में मैंने सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया है। आपने ब्रज, रास, तथा परमधाम की जिस

आनन्दमयी लीला का वर्णन किया है, उसका तो कोई पार ही नहीं पा सकता।

चौद भवन माया अंधार, पार नहीं मोटो विस्तार।

तमने पूछूं समरथ सार, हूं केणी पेरे करूं विचार॥९॥

इसी प्रकार चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में माया का इतना गहन विस्तार है कि उसका भी पार पाना सम्भव नहीं है। आप तो सर्व सामर्थ्यवान हैं, इसलिये मैं आप से यह बात पूछना चाहती हूँ कि इस मायावी जगत से परे जो लीला रूपी सार तत्त्व है, उसके विषय में मैं किस प्रकार चिन्तन करूँ?

तमे तारतमना दातार, अजवालूं कीधूं अपार।

साथ तणां मनोरथ जेह, सर्वे पूरण कीधां तेह॥१०॥



आप उस तारतम ज्ञान को देने वाले हैं, जिसने इस संसार में अनन्त ज्ञान का उजाला कर दिया है। सुन्दरसाथ के मन में जो भी इच्छायें थीं, आपने उन सबको पूर्ण किया है।

**तारतम तणे अजवास, पूरण मनोरथ कीधां साथ।**

**तम तणे चरण पसाय, जे उत्कंठा मनमां थाय॥११॥**

तारतम ज्ञान के उजाले में सुन्दरसाथ ने आपके स्वरूप की पहचान की और अपनी इच्छाओं को पूर्ण किया। आपके चरणों की छत्रछाया में किसी के भी मन में जो भी इच्छा होती है, वह अवश्य पूर्ण होती है।

**भावार्थ—** इच्छा का तात्पर्य आत्म-जाग्रति या धनी के प्रेम, ज्ञान, तथा एकत्व, आदि की अनुभूति से है। लौकिक कष्टों से मुक्ति तथा दूसरों की भलाई की इच्छा

भी पूर्ण हो जायेगी, किन्तु यदि हम धनी से प्रार्थना करके द्वेषवश किसी निर्दोष का अनिष्ट (हानि) करना चाहें, तो वह कदापि पूर्ण नहीं होगी।

जेटली मनमां उपजे वात, ते सहु आत्म पूरे साख।

मन जीवने पूछे जेह, त्यारे जीव सहु भाजे संदेह॥१२॥

मेरे मन में जो भी बात उत्पन्न होती है, मेरी आत्मा उसकी साक्षी देती है। इसी प्रकार, मेरा मन अपने जीव से जो भी प्रश्न पूछता है, उसका समाधान सहित उत्तर जीव दे देता है।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई में यह गहन जिज्ञासा होती है कि एक ही मन को आत्मा मात्र साक्षी देती है, जबकि जीव सभी शंकाओं का समाधान करता है, ऐसा क्यों? क्या मन सीधे आत्मा से प्रश्न का उत्तर प्राप्त नहीं कर

सकता?

यह सर्वमान्य तथ्य है कि आत्मा सुख-दुःख की मात्र द्रष्टा है। परमधाम में उसकी प्रेममयी लीला है, जबकि इस संसार में वह केवल द्रष्टा है। जीव के द्वारा चर्चा-श्रवण, सत्संग, तथा अध्ययन से प्राप्त होने वाले ज्ञान से वह परमधाम की प्रेम लीला में डूब (क्रियाशील हो) तो सकती है, किन्तु संसार-लीला में द्रष्टा रहने के अतिरिक्त वह अन्य कुछ भी नहीं कर सकती।

इसके विपरीत जीव अपने अन्तःकरण एवं इन्द्रियों के माध्यम से सुख-दुःख का भोक्ता है। वह श्रवण, मनन, अध्ययन, ध्यान, विरह, आदि की क्रियाओं द्वारा ज्ञानार्जन करता है, तथा परमधाम की लीला में डूबने का प्रयास करता है। इस मार्ग में वह विरह तक जाकर रुक जाता है और प्रेम में डूब नहीं पाता। जो सुख परात्म को

होता है, वह यथार्थ रूप में आत्मा तक नहीं पहुँच पाता। इसी प्रकार, आत्मा के सुख को भी जीव अंश मात्र ही ग्रहण कर पाता है। जीव के सुख का अति अल्प अंश अन्तःकरण एवं इन्द्रियों द्वारा अनुभव में आता है। इस सम्बन्ध में तारतम वाणी का कथन है—

जो सुख परआत्म को, सो आत्म ना पोहोंचत।

जो अनुभव होत है आत्मा, सो नहीं जीव को इत॥

जो कछू सुख जीव को, सो बुध ना अन्तस्करन।

सुख अंतस्करन इन्द्रियन को, उतर पोहोंचावें मन॥

किरंतन ७३/७,८

उपरोक्त विवेचना से यही निष्कर्ष निकलता है कि जीव समाधि अवस्था में अन्तःकरण और इन्द्रियों से परे होकर ज्ञान तथा आनन्द प्राप्त करता है, जबकि शेष अवस्थाओं (श्रवण, मनन, अध्ययन, आदि) में

अन्तःकरण तथा इन्द्रियों से ज्ञान और आनन्द को ग्रहण करता है।

इस प्रकार, संसार के प्रति सर्वदा कूटस्थ एवं साक्षी भाव से रहने वाली आत्मा, मन के प्रश्नों की साक्षी ही दे सकती है, उत्तर नहीं। क्योंकि मन का सीधा सम्बन्ध जीव से ही होता है, इसलिये उसके सभी प्रश्नों का यथावत् समाधान जीव ही करता है। आत्मा का अन्तःकरण परात्म के अन्तःकरण का प्रतिबिम्ब है, इसलिये वह लौकिक प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता।

धाम धनी की कृपा से जिस आत्मा के धाम हृदय में उनकी छवि बस जाती है, उसमें परमधाम की सम्पदा (ज्ञान, एकत्व, शोभा, प्रेम, आदि) भी विद्यमान हो जाती है। उसका रहन-सहन अन्य लोगों से अलग होता है। मन में जो भी द्वन्द्व उठते हैं, उसका समाधान जाग्रत

आत्मा का जीव सरलता से कर देता है और आत्मा उसकी साक्षी देती है, क्योंकि उसमें धाम धनी के ज्ञान का प्रकाश एवं प्रेम विद्यमान होता है, जिसे लेकर जीव और मन भी गौरवान्वित होते हैं।

जिस प्रकार, किसी कीचड़ से लिपटे हुए लोहे को चुम्बक आकर्षित नहीं कर पाता, उसी प्रकार विकारों से भरे जीव के मन को भी आत्मा की साक्षी नहीं मिल पाती। उपरोक्त चौपाई का कथन इन्द्रावती जी की जाग्रत आत्मा के सन्दर्भ में है, बिहारी जी या अन्यो की नींद में डूबी आत्मा के लिये नहीं।

ए निध बीजे कोणे न अपाय, धणी विना केहेने सामूं न जोवाय।  
 एणें अजवाले थए सूं थाय, आ पोहोरा मां धणी ओलखाय॥१३॥  
 ब्रह्मवाणी की यह निधि ब्रह्मसृष्टि एवं ईश्वरीय सृष्टि को

छोड़कर विकारग्रस्त जीवसृष्टियों से सहन नहीं होती , अर्थात् वे इसे यथार्थ रूप से ग्रहण नहीं कर पातीं। इसे आत्मसात् कर लेने वाला श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं देखता, अर्थात् उसके हृदय में धाम धनी के अतिरिक्त अन्य कोई भी बस नहीं पाता। यदि यह कहा जाये कि हृदय में तारतम वाणी के ज्ञान का उजाला होने पर क्या लाभ होता है, तो इसका उत्तर यह है कि इस मायावी जगत में भी प्रियतम अक्षरातीत की पहचान हो जाती है।

आप तणी पण खबर पडे, घर पर आतम रूदे चढ़े।

ए अजवालूं ज्यारे थयूं, त्यारे वली पाछूं सूं रह्यूं॥१४॥

जब हृदय में तारतम वाणी का प्रकाश विद्यमान हो जाता है, तो बाकी रहता ही क्या है? उसे तो सब कुछ

(आध्यात्मिक धन) प्राप्त हो जाता है। उसे अपने आत्मिक स्वरूप की पहचान तो हो ही जाती है, परमधाम के पच्चीस पक्षों सहित युगल स्वरूप एवं उसकी परात्म की शोभा भी उसके धाम हृदय में अंकित हो जाती है।

**ए सूं माया करे बल, फेरवे कल करे विकल।**

**अजवालामां ना रहे चोर, जागतां नव चाले जोर॥१५॥**

यह माया किस प्रकार से अपना बल दिखाती है? वस्तुतः वह जीव की बुद्धि को उल्टी दिशा में मोड़ कर बेसुध कर देती है। जिस प्रकार उजाले में तथा घर के स्वामी के जागते रहने पर चोर का कोई वश नहीं चलता, उसी प्रकार तारतम ज्ञान के उजाले में जब जीव जाग्रत हो जाता है तो माया का उस पर कुछ भी अधिकार नहीं



रहता।

**भावार्थ-** रजोगुण तथा तमोगुण के प्रबल होने पर जीव का हृदय माया के अन्धकार से भर जाता है। उसका विवेक कुण्ठित हो जाता है। परिणाम स्वरूप वह आध्यात्मिकता के सच्चे आनन्द से दूर होकर विषय सुख के दलदल में धँसता जाता है। इससे बचने के लिये तारतम ज्ञान के प्रकाश में धनी का प्रेम अनिवार्य है, तभी माया रूपी चोर से हमारे आत्मिक धन की रक्षा हो सकेगी।

जदिप ते जीते विद्याए, पण एने अजाण्यूं नव जाय।

ज्यारे वालोजी सहाय थाय, झख मारे त्यारे मायाय॥१६॥

यद्यपि इस संसार में बड़े-बड़े ज्ञानीजनों ने शास्त्रों की अनेक विद्याओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया और वे

महान विद्वान कहलाये, किन्तु उनमें से किसी ने भी इस अज्ञेय (अनजाना) कहे जाने वाले परब्रह्म को नहीं जाना। जब वही परब्रह्म अक्षरातीत साक्षात् हमारी सहायता कर रहे हैं, तो यह बेचारी माया हमारा क्या बिगाड़ सकती है? यह विवश होकर शान्त हो जाती है।

**भावार्थ—** "झख मारना" एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ होता है, शक्तिहीन होने से असहाय अवस्था में चुपचाप बैठ जाना।

ते माटे तमे सुणजो साथ, एक कहूं अनुपम वात।

चरचा सुणजो दिन ने रात, आपणने त्रूठा प्राणनाथ॥१७॥

इसलिये हे साथ जी! मैं आपसे एक बहुत ही अनमोल बात कह रही हूँ। उसे आप ध्यानपूर्वक सुनिये। आप दिन-रात परमधाम के आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा

सुनिये, जिससे आप अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के प्रेम में पूर्णतया न्योछावर हो सकें।

**भावार्थ-** अक्षरातीत प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण हैं। हमारे प्रति उनके प्रेम में कभी भी न्यूनता नहीं आ सकती। कमी हमारे प्रेम में ही होती है। ब्रज, रास, एवं श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला में हम पूर्ण रूप से प्रेम में समर्पित (फिदा) नहीं हो सके थे, इसलिये तारतम वाणी के प्रकाश में प्रियतम के ऊपर पूर्ण रूप से न्योछावर होने का यही स्वर्णिम समय है। इसके लिये तारतम वाणी की चर्चा हमारी अनिवार्य आवश्यकता है।

वचन कहा ते मनमां धरो, रखे अधखिण पाछा ओसरो।  
आ पोहोरो छे कठण अपार, रखे विलंब करो आ वार॥१८॥  
हे साथ जी! धाम धनी ने तारतम वाणी में जो भी वचन

कहे हैं, उन्हें अपने हृदय (मन) में धारण कीजिए तथा आधे पल के लिये भी धनी से या उनके वचनों से विमुख न होइए। यद्यपि माया की प्रबलता के कारण आत्मिक उन्नति के लिये यह बहुत ही कठिन समय है, फिर भी पहले (श्री देवचन्द्र जी के) तन को छोड़कर दूसरे तन (श्री मिहिरराज जी) को धारण किये हुये अपने प्राणवल्लभ को रिझाने में जरा भी देर न करें।

**आ जोगवाई छे जो घणी, सहाय आपणने थया धणी।**

**बेठ्या आपण मांहे कहे, पण साथ मांहे कोई विरलो लहे॥१९॥**

अपने प्रियतम अक्षरातीत को रिझाने का यह बहुत ही सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ है। माया से लड़ने में धाम धनी हर प्रकार से हमारी सहायता भी कर रहे हैं। वे हमारे धाम हृदय में विराजमान होकर तारतम वाणी का

प्रकाश कर रहे हैं, किन्तु कोई विरला सुन्दरसाथ ही इस रहस्य को समझ पा रहा है।

**भावार्थ-** सामान्य रूप से देखने पर उपरोक्त दोनों चौपाइयों (१९, २०) के कथनों में भेद प्रतीत होता है। १९वीं चौपाई में कहा गया है कि यह समय बहुत ही कठिन है, जबकि २०वीं चौपाई में कहा गया है कि धनी को पाने का यह सुनहरा अवसर है।

किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दोनों कथनों में कोई भी भेद नहीं है। यदि १९वीं चौपाई में कहा गया है कि माया की प्रबलता के कारण आत्मिक उन्नति में बाधा हो रही है, तो अगली चौपाई में यह भी तो कहा गया है कि धाम धनी हमारे साथ हैं, और श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में साक्षात् विराजमान हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें रिझाने का सुनहरा अवसर नहीं गँवाना चाहिए।

साथ मांहें अजवालूं थयूं, पण भरम तणूं अंधारूं रह्यूं।

ते टाल्यानो करूं उपाय, तो मनोरथ पूरण थाय॥२०॥

यद्यपि सुन्दरसाथ में तारतम ज्ञान का प्रकाश फैल गया है, फिर भी भ्रम के कारण कुछ सुन्दरसाथ के मन में माया का अन्धकार बना हुआ है। उसे हटाने के लिये मैं पूर्ण रूप से प्रयास करूँगी, जिससे वे भी धाम धनी की पहचान करके अपनी आत्म-जाग्रति का मनोरथ पूर्ण कर सकें।

**भावार्थ-** वि.सं. १७१२ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान होने के पश्चात् युगल स्वरूप श्री मिहिरराज जी के धाम हृदय में विराजमान हो गये थे। इसके पश्चात् तारतम वाणी का अवतरण प्रारम्भ हो गया था, किन्तु श्री देवचन्द्र जी से तारतम ग्रहण किये कई सुन्दरसाथ इस रहस्य को नहीं जान पाये थे। वे श्री मिहिरराज जी को

अपने समकक्ष ही समझते रहे, परिणाम स्वरूप तारतम्य ज्ञान का उजाला होने पर वे उसे ग्रहण नहीं कर सके। जयराम भाई भी उन्हीं में से एक थे। उपरोक्त चौपाई का कथन ऐसे ही सुन्दरसाथ के सम्बन्ध में किया गया है।

**जे मनोरथ मनमां थाय, ततखिण कीजे तेणें ताय।**

**आ जोगवाई छे पाणीवल, आपण करी बेठा नेहेचल॥२१॥**

यह मानव तन या धनी को रिझाने का यह अवसर अति अल्प समय (पल भर) के लिये ही है, जबकि हम इसे अखण्ड (शाश्वत) समझ बैठे हैं। इसलिये अपने धाम धनी को प्रेम-सेवा के द्वारा रिझाने की हमारी जो भी इच्छा है, उसे इसी क्षण पूर्ण करने का प्रयास करना चाहिए।

**भावार्थ—** नश्वर वस्तुओं की उम्र पल भर बताने का

आशय यह होता है कि वे कभी भी नष्ट हो सकती हैं।

नेहेचल जोगवाई नहीं एणे ठाम, अधखिणमां थाय कई काम।

इंद्रावती कहे आ वार, निद्रा नव कीजे निरधार॥२२॥

इस जगत में शरीर आदि वस्तुएँ अखण्ड नहीं हैं। आधे क्षण में इनमें अनेक (रोग ग्रस्तता, मृत्यु, आदि) परिवर्तन हो सकते हैं। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! इस अनमोल समय में आप जरा भी माया की नींद में न रहिए और तारतम वाणी का प्रकाश लेकर (मेरे धाम हृदय में) आये हुए अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत को रिझाने में भूल न कीजिए।

प्रकरण ॥२॥ चौपाई ॥११२॥



## राग मारु

इस प्रकरण में श्री इन्द्रावती जी ने प्रत्यक्ष रूप से स्वयं के जीव को जाग्रत होने के लिये फटकार सहित प्रबोधित किया है, किन्तु परोक्ष रूप में यह सारा कथन जयराम भाई सहित उन सभी सुन्दरसाथ के लिये भी है, जिन्हें माया ही अपने धाम धनी से अधिक प्रिय लगती है।

**भूँडा जीव जागजे रे।**

**कांई धणी तणें चरण पसाय, तू भरम उडाडजे रे।।टेक।।१।।**

हे मूर्ख जीव! अब तो तू जाग जा। तू अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के चरणों से लिपट जा और उनके चरणों की कृपा प्राप्त कर अपने मन के सभी संशयों को दूर कर ले।

आपण निद्रा केम करूं, निद्रानो नथी लाग।

भरमनी निद्रा जे करे, कांई तेहेनो ते मोटो अभाग॥२॥

भला अब मैं माया की नींद में क्यों फँसू ? मुझे किसी भी प्रकार से इस मायावी नींद से अपना सम्बन्ध नहीं रखना है। तारतम वाणी के अवतरण के पश्चात् भी जो सुन्दरसाथ इस माया की नींद में उलझे हुए हैं, निश्चित रूप से वे बहुत अधिक भाग्यहीन (बदनसीब) हैं।

**भावार्थ-** जिस प्रकार रात्रि के समय गहरी नींद में सो जाने वाला व्यक्ति स्वयं को तथा संसार को पूरी तरह से भूला रहता है, उसी प्रकार जो लौकिक कार्यों (अर्थोपार्जन, पारिवारिक कर्तव्यों के पालन, तथा विषय भोग) को ही सब कुछ मानकर प्रियतम अक्षरातीत तथा निज स्वरूप को भूला रहता है, उसे माया की नींद में सोया हुआ कहते हैं। अक्षरातीत के प्रेम को प्राथमिकता

देकर लौकिक कार्यों को करना नींद में फँसना नहीं है , बल्कि राजा जनक एवं महाराजा छत्रसाल (जो संसार में रहते हुए भी संसार से परे रहे) का निष्काम कर्मयोग मार्ग है।

उपरोक्त चौपाई में जयराम भाई को सांकेतिक रूप में मायावी नींद में फँसा हुआ भाग्यहीन व्यक्ति कहा गया है।

**आ जोगवाई छे जो आपणी, नहीं आवे बीजी वार।**

**हाथ ताली दीधे जाय छे, भूँडा कां न करे हजी सार॥३॥**

प्रियतम अक्षरातीत को प्राप्त करने का जो स्वर्णिम अवसर हमें प्राप्त हुआ है , वह पुनः दूसरी बार मिलने वाला नहीं है। हाथ से ताली बजाने में पल भर का जो समय लगता है, उतने ही अल्प समय में यह शरीर नष्ट हो सकता है। इतना होने पर भी हे मूर्ख जीव! तू अभी

भी सँभलता क्यों नहीं है?

**भावार्थ-** विक्रम सम्वत् १६३८ में श्यामा जी के साथ परमधाम की आत्मायें इस नश्वर जगत में आयीं। वि.सं. २०७० तक उन्हें यहाँ आये हुए लगभग ४३२ वर्ष हो चुके हैं। इस वर्तमान समय में स्थूल शरीर में विद्यमान आत्माओं ने अब तक न जाने कितने जीवों पर विराजमान होकर इस खेल को देखा होगा। तारतम वाणी तथा सुन्दरसाथ से मिलन तो अनेक तनों में विद्यमान होकर आत्मा कर सकती है, किन्तु श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत के द्वारा की जाने वाली ब्रह्मलीला का सुख बारम्बार नहीं मिलना है। इसलिये उपरोक्त चौपाई के दूसरे चरण में कहा गया है कि यह अवसर पुनः किसी को दूसरी बार नहीं मिलने वाला है।

धणी रे आपणमां आवियां, भूंडा कां नव जागे जीव।

पेरे पेरे तूने प्रीछव्यो, तू हजी करे कां ढील॥४॥

धाम धनी हमारे मध्य (श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में) साक्षात् आये हुए हैं। फिर भी हे मूर्ख जीव! तू जाग्रत क्यों नहीं हो रहा है? तुझे बार-बार तारतम ज्ञान के प्रकाश में समझाया जा रहा है, किन्तु अभी भी तू जाग्रत होने में आलस्य क्यों कर रहा है?

**भावार्थ-** यह कदापि सम्भव नहीं है कि जिस आत्मा के धाम हृदय में स्वयं अक्षरातीत विराजमान होकर लीला करें, उसका ही जीव माया की नींद में इस प्रकार सोया हो कि उसके लिये मूर्ख या पापी (भूंडा) जैसे विशेषण प्रयुक्त किये जायें। वस्तुतः यह संकेत सुन्दरसाथ के जीवों के लिये है, इन्द्रावती जी के जीव के लिये नहीं।

धणिए धणवट जे करी, तू तां जोने विचारी तेह।

आ पापनी ने परहरी, तू कां न करे सनेह॥५॥

प्रियतम अक्षरातीत ने तुम्हारे प्रति अपना जो प्रेम दर्शाया, उसके विषय में तू गहन विचार करके तो देख। तू इस पापिनी माया को छोड़कर उनसे एकनिष्ठ प्रेम क्यों नहीं करता है?

**भावार्थ—** अक्षरातीत प्रेम के सागर हैं। उनका प्रेम करना ही आत्माओं के प्रति अपना पत्नीव्रत धर्म (पतिपना) निभाना है। तारतम वाणी के प्रकाश में जीव भी आत्मिक भावों में डूब जाता है और स्वयं को आत्मा मानने लगता है। यही कारण है कि उपरोक्त चौपाई के प्रथम चरण में जीव को भी धनी की अर्धांगिनी के रूप में दर्शाया गया है।

आपण ने तेडवा आविया, आ दुस्तर माया मांहे।

ओलखी ने कां ओसरे, भूंडा एम थयो तू कांए॥६॥

हमें परमधाम ले चलने के लिये ही धाम धनी इस दुःख भरे संसार में आये हैं। उनकी पहचान करके भी तू उनसे विमुख क्यों हो गया है? हे पापी जीव! तू ऐसा कृतघ्न क्यों हो गया?

**भावार्थ-** सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के पश्चात् जयराम भाई सहित बहुत से सुन्दरसाथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में श्री राज जी से विमुख होने की राह पर चल पड़े थे। यहाँ सांकेतिक रूप में वही बात दर्शायी गयी है। श्री इन्द्रावती जी के जीव के विमुख होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

धणिए आपणसूं जे करी रे, तू तां जोने विचारी मन।

कोडी ते हाथथी परी करी, तूने दीधूं छे हाथ रतन॥७॥

हे जीव! प्राणेश्वर अक्षरातीत ने हमारे ऊपर किस प्रकार प्रेम भरी कृपा की है, इसके विषय में जरा तू अपने मन में विचार करके तो देख। उन्होंने माया के बन्धनों में जकड़े हुए तुम्हारे हाथों को बन्धन-मुक्त कर दिया और तुम्हारे हाथों में परमधाम का अनमोल तारतम ज्ञान रख दिया।

जीवडा तू घारण केही करे, भूंडा घूटयो दिन अनेक।

जोवंतां जोगवाई गई, भूंडा हजिए तू कांय नव चेत॥८॥

हे पापी जीव! तू अब तक माया की नींद में क्यों सोता रहा है। इस प्रकार तूने तो प्रमादवश बहुत सा समय व्यर्थ में ही खो दिया है। देखते-देखते तुम्हारे शरीर की आयु भी क्षीण होने लगी है, किन्तु तू अभी भी सावचेत क्यों



नहीं हो रहा है?

आपण ऊपर अति घणी रे, दया करे छे आधार।

आपणे काजे देह धरया, भूंडा हजीए तूं कां न विचार॥९॥

हमारे प्राणाधार अक्षरातीत ने अपार दया करके माया का यह पञ्चभौतिक तन (श्री मिहिरराज जी) धारण किया है। फिर भी रे मूर्ख! आश्चर्य है कि तू अभी भी उनकी दया के सम्बन्ध में कुछ भी विचार नहीं कर रहा है।

भरम भूंडो तमे परहरो, जेम थाय अजवालुं अपार।

वचन वालाजी तणे, तू मूलगां सुख संभार॥१०॥

हे मूर्ख जीव! तू धनी के सम्बन्ध में अपने संशयों को दूर कर ले, जिससे तुम्हारे अन्दर तारतम ज्ञान का

अपार प्रकाश हो जाये। तारतम वाणी में कहे हुए प्रियतम अक्षरातीत के वचनों को तू आत्मसात् कर, जिससे तुझे परमधाम के अखण्ड सुखों की स्मृति बनी रहे।

**भावार्थ-** सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के पश्चात् सुन्दरसाथ में यह संशय था कि हमारे धनी कहाँ हैं? कुछ सुन्दरसाथ को श्री मिहिरराज जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप के विराजमान होने पर विश्वास तो था, क्योंकि उन्हें श्री देवचन्द्र जी की कही हुई बातें याद थीं तथा चर्चा सुनकर भी उन्होंने साक्षी पा ली थी, किन्तु कुछ सुन्दरसाथ में संशय के बादल अभी भी छाये हुए थे। उसी सन्दर्भ में इस चौपाई का कथन है।

आ वालो ते आविया, ए सुखतणा दातार।

आपण मांहे तेहज बेठा, जोई अजवालु संभार॥११॥

मेरे प्राणेश्वर अक्षरातीत अखण्ड सुख के देने वाले हैं। वे हमारे मध्य (मेरे धाम हृदय) में साक्षात् विराजमान होकर बैठे हैं। उनके ज्ञान के उजाले में तू उनकी पहचान कर।

**द्रष्टव्य-** जिस तन में अक्षरातीत लीला करते हैं, उस तन के जीव को तो अनिवार्य रूप से यह पता ही होता है कि मेरे अन्दर कौन है। निःसन्देह यह कथन जयराम भाई तथा माया में भटके हुए अन्य सुन्दरसाथ के लिये है।

यदि यह संशय किया जाये कि क्या वि.सं. १७१५ से पहले श्री मिहिरराज जी को यह मालूम था? यदि मालूम था, तो उन्हें हृद्देश में विरह की अग्नि में क्यों जलना पड़ा?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि यह प्रसंग वि.सं. १७२२ का है। इसके पहले हृद्देश में उन्हें युगल

स्वरूप का साक्षात्कार भी हो चुका था, तथा रास, प्रकाश, और षट्क्रतु की वाणी का अवतरण भी हो गया था।

दुर्मती तू कां थयो, हूं तो पाडूं ते बुंभ अपार।

आंहीं आव्या न ओलख्या, पछे केही पेरे मोंहों उपाड॥१२॥

हे जीव! तू इतनी दुष्ट बुद्धि वाला कैसे हो गया? मैं उच्च स्वर से पुकार-पुकार कर यह बात कह रही हूँ कि यदि तुमने इस नश्वर जगत् में आये हुए अक्षरातीत को नहीं पहचाना, तो उनके चले जाने के पश्चात् अपना मुख ऊँचा करके कैसे देख सकोगे?

आंख उघाडी जो जुए, जीव लीजे ते लाभ अनेक।

आंही पण सुख घणां माणिए, अने आगल थाय वसेक॥१३॥

यदि तू अपनी अन्तर्दृष्टि को खोलकर मेरे धाम हृदय में विराजमान प्रियतम अक्षरातीत की पहचान कर ले, तो तुझे बहुत से लाभ होंगे। इसी नश्वर जगत में तुझे धाम धनी का अपार सुख प्राप्त होगा। बाद में तो सत्स्वरूप में विशेष आनन्द मिलेगा ही।

**भावार्थ-** जो जीव प्रेम में डूबकर युगल स्वरूप की पहचान कर लेगा, वह सत्स्वरूप की प्रथम बहिस्त का अधिकारी होगा। उसे वहाँ ब्रह्मात्माओं की परात्म की नकल का रूप मिलेगा, जिससे वह अनन्त काल तक ब्रह्मानन्द का रसपान करता रहेगा।

आ अजवालूं जो जोड़िए, जीव तारतम मोटो सार।

वालाजीने ओलखे, तो तू नव मूके निरधार॥१४॥

इस तारतम ज्ञान के उजाले में यदि तू विचार करे तो

तुझे यह विदित हो जायेगा कि परमधाम की सभी सम्पदाओं में तारतम ज्ञान की सम्पदा सर्वोपरि है। तू इस तारतम ज्ञान से अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत की पहचान कर ले और किसी भी स्थिति में उनके चरणों को न छोड़ना।

**भावार्थ-** यह सत्य है कि बिना प्रेम के न तो प्रियतम का साक्षात्कार हो सकता है और न आत्म-जाग्रति ही हो सकती है, किन्तु बिना तारतम के प्रियतम अक्षरातीत की जब पहचान ही नहीं होगी तो प्रेम किससे करेंगे? यही कारण है कि उपरोक्त चौपाई में इस मायावी जगत में तारतम ज्ञान को परमधाम की सार वस्तु कहा है। वस्तुतः प्रेम और ज्ञान (इश्क तथा इल्म) दोनों ही एक दूसरे में ओत-प्रोत हैं।

वालो वदेसी आवी मल्या, कांई आपणने आ वार।

दुख मांहेँ सुख माणिए, जो तू भरमनी निद्रा निवार॥१५॥

इस जागनी लीला में श्री राज जी हमें परमधाम से भिन्न इस नश्वर संसार में आकर मिले हैं। यदि तू अपनी संशय भरी नींद को छोड़कर जाग्रत हो जाये, तो तुझे इस दुःखमय संसार में ही अक्षरातीत का अलौकिक सुख प्राप्त हो जायेगा।

आ जोगवाई छे खिण पाणीवल, केटलूं तूने केहेवाय।

पण अचरज मूने एह थाय छे, जे जाण्युं धन केम जाय॥१६॥

रे जीव! मैं तुझे कितना समझाऊँ? यह शरीर पानी के बुलबुले के समान पल भर का है, अर्थात् यह किसी भी क्षण मृत्यु को प्राप्त हो सकता है। किन्तु मुझे तो आश्चर्य इस बात का हो रहा है कि सब कुछ जानते हुए भी तू

अपने अलौकिक (आत्मिक) धन को क्यों खोता जा रहा है?

**द्रष्टव्य**— यह चौपाई स्पष्ट रूप से यही बात दर्शा रही है कि जो श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की पहचान नहीं करेगा, उसका मानव जीवन व्यर्थ ही चला जायेगा।

**आगल आपणे सूं करयूं, ज्यारे अजवाले थई रात।**

**आ तां वालेजीए वली कृपा करी, त्यारे तरत थयो प्रभात॥१७॥**

पहले भी हमने क्या कर लिया, जब तारतम ज्ञान का उजाला रहने पर भी रात हो गयी थी। उस समय भी दया के सागर धाम धनी ने कृपा की और तुरन्त ही अज्ञानमयी रात्रि को समाप्त कर ज्ञान का सवेरा कर दिया।



**भावार्थ-** यद्यपि श्री देवचन्द्र जी ने तारतम ज्ञान का उजाला तो कर दिया था, किन्तु वाणी के अवतरित न होने तथा आड़िका लीला के सम्मोहन में फँस जाने से सुन्दरसाथ की आत्मा जाग्रत न हो सकी।

उनके अन्तर्धान होने के पश्चात् सुन्दरसाथ अज्ञानमयी रात्रि के अन्धकार में इतना फँस गया कि वह यह मान बैठा कि या तो श्री राज जी परमधाम चले गये हैं, या बिहारी जी की गादी में बैठे हैं।

जब धाम धनी पुनः श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान हुए और तारतम वाणी का अवतरण शुरू हुआ, तब से ज्ञान का उजाला फैलना प्रारम्भ हुआ। इसे ही प्रातःकाल होना कहा गया है।

एवडी वात देखी करी, ते तां जोयूं तारी द्रष्ट।

हजी तू भरममां भूलियो, तूने केटलूं कहूं पापिष्ट॥१८॥

हे पापी जीव! मैं तुझे कितना कहूँ? ये सारी बातें तूने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष घटित होती हुई देखी हैं। फिर भी न जाने क्यों, तू अभी भी भ्रम के सागर में भटक रहा है, अर्थात् श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में शोभायमान प्रियतम अक्षरातीत की पहचान नहीं कर पा रहा है।

अजवाले वालो ओलख्या, त्यारे पाछल रह्यूं सूं।

जाणी बूझीने मूढ थयो, भूंडा एम थयो कां तूं॥१९॥

हे मूर्ख जीव! जब तूने तारतम ज्ञान के उजाले में प्रियतम की पहचान कर ली, तो अब उन्हें रिझाने से पीछे क्यों हट रहा है? ऐसा लगता है कि तू जानबूझ कर ही महामूर्ख बना हुआ है। तुझे धिक्कार है! तू ऐसा क्यों हो

गया?

**भावार्थ-** मूढ़ का अर्थ होता है- अतिमूर्ख। अनजाने में मूर्ख बनना तो क्षम्य है, किन्तु जानबूझकर मूर्ख बनना महापाप है।

पेरे पेरे में तूने कह्यूं रे, सुण रे धणीना वचन।

अधखिण वालो न वीसरे, जो तू जुए विचारी मन॥२०॥

मैं तुझसे बार-बार यह बात कहती रही हूँ कि धनी के वचनों को ध्यानपूर्वक सुनकर यदि तू सच्चे मन से विचार करके देख, तो तुझे यह अनुभव होगा कि प्रियतम को आधे क्षण के लिये भी नहीं भूलना चाहिए।

अनेक वचन तूने कह्या, मान एकनो करे विचार।

अर्ध लवे तारो अर्थ सरे, भुंडा एवडो तू कां केहेवराव॥२१॥

मैंने प्रियतम के सम्बन्ध में बहुत सी बात कही हैं। किन्तु यदि तू उनमें से एक वचन का भी सम्मान करते हुए उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे, तो उसके आधे शब्द को भी आत्मसात् करने (आचरण में लाने) से तेरे जीवन का लक्ष्य पूरा हो जायेगा, अर्थात् तू मायावी प्रपञ्चों से परे हो जाएगा। हे पापी जीव! पता नहीं, तू मुझसे इतना क्यों कहलवाता है?

हवे रे तूने हूं जे कहूँ, ते तू सांभल द्रढ करी मन।  
 पचवीस पख छे आपणा, तेमां झीलजे रात ने दिन॥२२॥  
 रे जीव! अब मैं तुमसे जो बात कह रही हूँ, उसे तू दृढ़ मन से सुन। अपने परमधाम में पच्चीस पक्ष हैं। तू दिन-रात उनकी शोभा के ध्यान (चितवनि) में डूबा रह।

ए मांहेथी रखे नीसरे, पल मात्र अलगो एक।

मनना मनोरथ पूरण थासे, उपजसे सुख अनेक॥२३॥

इन पच्चीस पक्षों की शोभा से एक पल के लिये भी अपने चित्त को न हटाओ। यदि तू ऐसा कर लेगा तो तेरे मन की सारी इच्छायें पूर्ण हो जायेगी, जिससे तुझे अनेक प्रकार के आनन्द का अनुभव होगा।

**भावार्थ-** परमधाम की चितवनि से सारी इच्छाओं के पूर्ण होने का अभिप्राय है, आध्यात्मिक इच्छाओं का पूर्ण होना। इसी प्रकार अनेक तरह के आनन्द से आशय है, प्रकृति के बन्धन से छूटकर प्रियतम की सान्निध्यता में दिव्य प्रेम, दिव्य ज्ञान, और निर्विकारिता का आनन्द।

साख्यात तणी सेवा कर रे, ओलखीने अंग।

श्री धाम तणा धणी जाणजे, तू तां रखे करे तेमां भंग॥२४॥

हे जीव! श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान स्वरूप को तू साक्षात् धाम का धनी अक्षरातीत ही मानकर सेवा कर और इस प्रेममयी सेवा से अपने चित्त को जरा भी न हटा।

**भावार्थ-** इस चौपाई को पढ़कर उन सुन्दरसाथ को आत्म-मन्थन करना चाहिए, जो श्री प्राणनाथ जी को शुकदेव जी, कबीर जी, नानक जी, एवं योगेश्वर श्रीकृष्ण जी, तथा भगवान शिव के समकक्ष ठहराते हैं। क्या गुरु ग्रन्थ साहिब, भागवत, एवं बीजक में नानक जी, शुकदेव जी, और कबीर जी को कहीं भी पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द कहा गया है?

मुखथी सेवा तूने सी कहुं, जो तूं अंतर आडो टाल।

अनेक विध सेवा तणी, तूने उपजसे तत्काल॥२५॥

मैं तुझे अपने मुख से प्रियतम अक्षरातीत (श्री प्राणनाथ) की सेवा करने के लिये बार-बार कैसे कहूँ? जिस समय तू अपने मन में विद्यमान संशय रूपी पर्दे को हटा देगा, उसी क्षण तुम्हारे हृदय में अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत को रिझाने के लिये सेवा के अनेक मार्ग सूझ जायेंगे।

पहेले फेरे आपण आवियां, ते तो वाले कह्युं छे विवेक।  
 ते तां लाभ लईने जागियां, हवे आपण करुं रे वैसेक॥२६॥  
 सबसे पहले हम ब्रज में आए थे। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने उस ब्रज लीला का यथार्थ रूप से वर्णन किया है, जिसे सुनकर सुन्दरसाथ माया से सावचेत हो गये। अब मैं रास का विशेष रूप से वर्णन करती हूँ।

पेहेले फेरे थयूं आपणने, गोपद वछ संसार।

एणे पगले चालिए, जो तूं पहेलो फेरो संभार॥२७॥

ब्रज से रास में जाते समय हम सभी ब्रह्मात्माओं ने "गोपद बच्छ" की भांति इस संसार का परित्याग कर दिया और योगमाया के ब्रह्माण्ड में पहुँची। हे जीव! यदि तुझे सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के द्वारा कही गयी ब्रज लीला याद है, तो तुम्हें भी गोपद बच्छ की तरह संसार छोड़ने की ब्रज वाली राह अपनानी चाहिए।

**भावार्थ-** गाय के बछड़े का खुर स्वाभाविक रूप से छोटा होता है। उससे बने हुए गड्ढे में यदि पानी भर जाये, तो उसे भवसागर की संज्ञा दी जाती है। जितनी सरलता से उस गड्ढे को पार कर लिया जाता है, उतनी ही सरलता से गोपियों ने इस भवसागर (चौदह लोक, निराकार) को पार कर लिया। इसलिये इस प्रक्रिया को



"गोपद बच्छ" संसार को छोड़ना कहते हैं।

एटला माटे आ अजवालूं, वालेजीए कीधूं आ वार।

नरसैयां वचन प्रगट कीधां, कांई वृज तणा विचार॥२८॥

इसलिये अपने द्वारा की गयी उस ब्रज लीला की याद दिलाने के लिये, धाम धनी ने श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में शोभायमान होकर उसका वर्णन किया है। इसी प्रकार नरसैया ने भी अपने वचनों में ब्रज लीला के अनुभव सम्बन्धी अपने विचारों को प्रकट किया है।

**भावार्थ-** नरसैया का पूरा नाम नरसी मेहता है। ऐसा माना जाता है कि प्रारम्भ में ये शिव भक्त थे। इन्होंने अपनी कठोर तपस्या से शिवजी को प्रसन्न किया। शिवजी के द्वारा वर माँगने के लिये कहने पर नरसैया ने कहा कि आप मुझे अपनी सबसे प्रिय वस्तु दिखाइये।

अपने भक्त की इच्छा को पूर्ण करने के लिये शिवजी ने अपने आत्मिक बल से नरसैंया को ब्रज लीला का दर्शन कराया। उस लीला को देखने के पश्चात् नरसैंया हमेशा श्री कृष्ण प्रेम में डूबे रहने लगे। ऐसा कहा जाता है कि एक बार वे रास के ध्यान में इतना डूब गये थे कि उन्हें अपने शरीर की जरा भी सुधि नहीं रही। इस अवस्था में उनके हाथ में एक मशाल थी। उस मशाल से उनका हाथ भी जल गया, किन्तु उनका ध्यान नहीं टूटा।

रास लीला के माधुर्य भाव में डूबे रहने के कारण ही नरसी मेहता का नाम नरसैंया पड़ा। उनकी सभी रचनायें इसी नाम से हैं। नरसी मेहता का जन्म जूनागढ़ के पास तलाजा ग्राम में वि.सं. १५१२ में हुआ था। उन्हें आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रतिबिम्ब की रास के समय में वर्णित करना उचित नहीं है। वस्तुतः उन्होंने ध्यान द्वारा

रास लीला को देखने का प्रयास किया था, जिसमें वे पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाये थे। इस सम्बन्ध में बेहद वाणी का कथन है—

नरसैयां इन पैँडे खड़ा, लीला बेहद गाए।  
 बल करे अति निसंक, मिने पैँठ्यो न जाए॥  
 जो बल किया नरसैएँ, कोई करे ना और।  
 हद के जीव बेहद की, लीला देखी या ठौर॥  
 नरसैयां दौड़या रस को, वानी करे रे पुकार।  
 रस जाए हुआ अंदर, आड़े दरवाजे चार॥  
 द्वारने इन बेहद के, लेहेरें आवे सीतल।  
 सो इत खड़ा लेवहीं, रस की प्रेमल॥

बेहद वाणी ३१/५५-५८

कहे इंद्रावती नरसैयां वचन, जो जोड़ए करीने चित।

धणिए जे धन आपियूं, कांई करी आपणने हित॥२९॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी ! यदि हम नरसैया के कथनों पर ध्यानपूर्वक विचार करें तो हमें ब्रज लीला की महत्ता विदित होती है। इसके बाद हमें यह पता चलता है कि हमारे हित को ध्यान में रखकर , अर्थात् हमें आत्म-जाग्रति के मार्ग पर चलाने के लिये , ही धाम धनी ने तारतम ज्ञान के द्वारा ब्रज लीला की वास्तविक पहचान दी है।

**भावार्थ-** यह सर्वविदित है कि सबलिक के स्थूल या अव्याकृत के महाकारण में स्थित ब्रज लीला को देखने के लिये बड़े-बड़े महापुरुष भी तरसते रहे हैं। इस सम्बन्ध में तारतम वाणी का कथन है-

स्यामा बल्लभियों करी बड़ी दौर, ए भी आए रहे इन ठौर।

प्र. हि. ३४/६

छेद इंड में कियो सही, पर अखण्ड द्रष्टे आया नहीं।

प्र. हि. ३४/७

किन्तु नरसैया ने अपनी कठोर साधना से, भगवान शिव की कृपा प्राप्त कर, ब्रज लीला का साक्षात् दृश्य देखने में सफलता प्राप्त की। परमधाम के मूल सम्बन्ध से धाम धनी ने हमें अनायास ही ब्रज लीला का ज्ञान दिया। जब सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी अखण्ड ब्रज एवं रास की चर्चा करते थे, तो वहाँ पर ये दोनों ही लीलायें साक्षात् प्रकट हो जाती थीं तथा सुन्दरसाथ अपने बाह्य नेत्रों से उसका आनन्द लेते थे।

इस प्रकार की आड़िका लीला से सुन्दरसाथ को यह विश्वास हो गया कि ब्रज और रास में गोपियों के रूप में हम ही थे। धाम धनी के द्वारा ब्रज लीला की अनुभूति

(ज्ञान से तथा अनुभव से) कराने का यही आशय था।  
उपरोक्त २९वीं चौपाई की दूसरी पंक्ति में यही बात  
दर्शायी गयी है।

**प्रकरण ॥३॥ चौपाई ॥१४१॥**

## राग धना श्री

इस प्रकरण में ब्रज लीला के दृष्टान्त से माया को छोड़कर अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत से प्रेम करने की सीख दी गई है।

**प्रेम सेवा वाले प्रगट कीधी, वृज तणी आ वार।**

**वचन विचारीने जोइए, कांई नरसैयां तणा निरधार॥१॥**

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी ! यदि हम नरसैया के कहे हुए वचनों का विचार करते हैं, तो यह बात निश्चित (स्पष्ट) होती है कि ब्रज में प्रेम और सेवा की महत्ता सर्वोपरि थी। धाम धनी ने इस जागनी लीला में ब्रज की उसी अलौकिक प्रेम एवं सेवा भावना को हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

श्री धामतणां साथ सांभलो, हूं तो कहूं छूं लागीने पाय।  
 जे रे मनोरथ कीधां आपणे, ते पूरण एणी पेरे थाय॥२॥

परमधाम के प्रिय सुन्दरसाथ जी! मैं आपके चरणों में  
 प्रणाम करते हुए यह बात कह रही हूँ। उसे आप  
 ध्यानपूर्वक सुनिये। इस जागनी ब्रह्माण्ड में हमारी जो भी  
 इच्छा है, वह प्रेम एवं सेवा के मार्ग पर चलने से ही पूर्ण  
 होगी।

वृजमां कीधी आपण वातडी, ते तां सघली मांहें सनेह।  
 काम करतां अति घणों, पण खिण नव छोड़यो नेह॥३॥

व्रज मण्डल में हमने जो लीला की, उसमें हमारी आत्मा  
 गोपियों के तन में थी। हम सबमें आपस में बहुत ही गहरा  
 स्नेह था। यद्यपि हमें बहुत अधिक लौकिक काम करना  
 पड़ता था, किन्तु एक क्षण के लिये भी धाम धनी से



हमारा प्रेम कभी कम नहीं होता था।

विविध पेरे सिणगार जो करतां, मन उलासज थाय।

मनना मनोरथ पूरण करतां, रंगभर रैणी विहाय॥४॥

अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत को रिझाने के लिये, हम आत्मायें अपने मन में उमंग भरकर तरह-तरह से अपना श्रृंगार किया करती थीं। धाम धनी अपनी प्रेममयी लीलाओं से हमारी इच्छा पूर्ण किया करते थे तथा हम भी उन्हीं के भावों में डूबकर पूरी रात आनन्दपूर्वक बिताया करती थीं।

उठतां बेसतां रमतां, वालो चितथी ते अलगो न थाय।

ज्यारे वन पधारतां, त्यारे खिण वरसां सो थाय॥५॥

ब्रज में उठते, बैठते, तथा खेलते समय, प्रियतम की

छवि पल भर के लिये भी हमारे हृदय से अलग नहीं हो पाती थी। जब धाम धनी वन चले जाते थे, तो एक-एक पल हमारे लिये वर्षों के समान प्रतीत होता था।

मांहों मांहें विचारज करतां, वातज करतां एह।

आतम सहुनी एकज दीसे, जुजवी ते दीसे देह॥६॥

वियोग के क्षणों में हम सभी सुन्दरसाथ एकमात्र अपने प्रियतम अक्षरातीत की ही बातें किया करते थे। भले ही हम सबके शरीर अलग-अलग थे, किन्तु सबके अन्दर परमधाम की ही आत्मा थी, जो एकत्व (वहदत) से जुड़ी हुई थी।

निस दिवस वालाजीसों वातो, रामत करतां जाय।

खिणमात्र जो अलगा थैए, तो विछोडो खिण न खमाय॥७॥

हमारा प्रत्येक दिन प्रियतम के साथ बातें करते हुए तथा खेलते हुए बीत जाया करता था। यदि किसी कारणवश, हमें उनसे पल भर के लिये भी अलग होना पड़ता था, तो उसे सहन कर पाना हमारे लिये बहुत ही कठिन था।

विविध विलास वालाजीसों करतां, पूरण मनोरथ थाय।

ज्यारे वाछरडा लई वन पधारे, त्यारे रोवंतां दिन जाय॥८॥

अपने धाम धनी के साथ अनेक प्रकार की आनन्दमयी क्रीड़ाएँ करते हुए, हम सुन्दरसाथ अपनी प्रेममयी इच्छाओं को पूर्ण किया करते थे। जब वे बछड़ों के साथ वन में चले जाते थे, तो सायंकाल उनके आने तक हमारा सारा समय रोते-रोते ही बीतता था।

दाणलीला नी रामत करतां, माथे मही माखणनो भार।

वचन रंगनां उथला वालतां, रमतां वन मंझार।।९।।

हम अपने शिर पर दही तथा मक्खन से भरी हुई मटकियाँ लेकर दान लीला का खेल किया करते थे। इसी प्रकार वन में आनन्द से भरे हुए अटपटे वचन बोलकर तरह-तरह से खेला करते थे।

**भावार्थ-** दान लीला को दूसरे रूप में एक प्रकार की प्रेममयी कर लीला भी कह सकते हैं। इस लीला में श्री कृष्ण जी ने कर के रूप में प्रत्येक गोपी के लिये दहि-मक्खन देना अनिवार्य कर दिया था।

वृज नरसैए प्रगट कीधूं, अति घणे वचन विवेक।

ए वचन जोईने चालिए, तो आपण थैए विसेक।।१०।।

नरसैया ने बहुत ही सुन्दर वचनों से व्रज लीला का

विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यदि हम उन वचनों का गम्भीरतापूर्वक विचार करके अपने आचरण में उतारें, तो हम धनी के विशेष प्रेमी बन सकते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई का अभिप्राय यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि वर्तमान ब्रज लीला के श्री कृष्ण हमारे आराध्य हैं। वर्तमान समय में सबलिक के कारण तथा महाकारण एवं अव्याकृत के महाकारण में ब्रज-रास की जो लीलायें अखण्ड रूप से हो रही हैं, उसमें विद्यमान श्री कृष्ण जी के तन में अक्षरातीत का आवेश न होने से वे हमारे आराध्य नहीं हो सकते।

वस्तुतः ब्रज लीला में श्री कृष्ण के तन में आवेश स्वरूप से जो विराजमान था, वही मूल मिलावे में श्री राज जी के स्वरूप में सिंहासन पर शोभायमान है तथा इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में

श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में लीला कर रहा है।

हमें तो ब्रज लीला से केवल प्रेम की शिक्षा लेनी है और प्रेम एकमात्र युगल स्वरूप श्री राज श्यामा जी से करना है।

वृजलीला अति मोटी छे, जो जो नरसैयां वचन प्रमाण।

ए पगलां सर्वे आपणां, तमे जाणी सको ते जाण॥११॥

नरसैया के द्वारा कहे गये वचनों में ब्रज लीला की बहुत अधिक महिमा गायी गयी है। हे साथ जी! यदि आप समझ सकते हैं तो यह बात समझ लीजिए कि परमधाम के मूल सम्बन्ध से हमारा मार्ग केवल प्रेम का ही है।

**द्रष्टव्य-** उपरोक्त चौपाई का चौथा चरण अनिवार्य रूप से हमें (ब्रह्मसृष्टियों को) यह निर्देशित कर रहा है कि आत्म-जाग्रति के लिये अक्षरातीत से प्रेम करना

अनिवार्य है।

यह प्रश्न हमें आत्म-मन्थन करने के लिये भी विवश कर रहा है कि यदि इस मायावी संसार का एक जीव (नरसैंया), अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रेम में इतना डूब सकता है कि अपना हाथ जल जाने पर उसे इसका आभास नहीं होता, तो वर्तमान समय में सम्पूर्ण वाणी के अवतरित हो जाने के पश्चात् हमें क्या करना चाहिए?

कहे इंद्रावती सुणो रे साथजी, इहां विलंब कीधांनी नहीं वार।

ए अजवालूं सर्वे कीधूं मारे वाले, आपणने आ वार॥१२॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! मेरी यह विशेष बात सुनिए। प्रियतम के प्रेम मार्ग में चलने के लिए देर करने का अब समय नहीं रह गया है। इस जागनी लीला में प्रियतम अक्षरातीत ने तारतम ज्ञान के उजाले

में सब कुछ स्पष्ट कर दिया है कि हमें ब्रज लीला से प्रेम की सीख लेकर स्वयं को अक्षरातीत श्री राज जी के अखण्ड प्रेम में न्योछावर कर देना चाहिए।

**प्रकरण ॥४॥ चौपाई ॥१५३॥**



## राग धना श्री

इस प्रकरण में ब्रज से रास मण्डल में जाते समय गोपियों की विरहावस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

एणे पगले आपण चालिए, कांई पगलां ए रे प्रमाण, सुंदरसाथजी।  
पेहेले फेरे आपण जेम निसरियां, तमे जाण थाओ ते चित आण॥  
चित आणीने रंग माणो, सुंदरसाथजी॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! ब्रज लीला में हमने जिस प्रेम मार्ग का अवलम्बन किया, वही वास्तविक मार्ग है और हमें उसी प्रेम मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। ब्रज से रास में जाते समय हमने विरह में डूबकर जिस प्रकार इस संसार का परित्याग किया, उस विरह भावना को अच्छी तरह से जानकर अपने हृदय में

बसा लीजिए। विरह-प्रेम के उन मधुर भावों को कोमल हृदय में बसाकर निजधाम के आनन्द में मग्न होइए।

रास नरसैए रे न वरणव्यो, मारे मन उत्कंठा एह।

चरण पसाय रे वालातणे, तमे सांभलो कहूं हूं तेह॥२॥

मेरे मन में यह जानने की प्रबल इच्छा थी कि नरसैया ने रास का वर्णन क्यों नहीं किया। प्रियतम अक्षरातीत की कृपा से अब मैं महारास का वर्णन करने जा रही हूँ। हे साथ जी! आप उसे ध्यानपूर्वक ग्रहण कीजिए।

**भावार्थ-** यद्यपि वर्तमान समय में ब्रज लीला बेहद मण्डल में अखण्ड है, किन्तु वह कालमाया के ही ब्रह्माण्ड में खेली गयी थी। कालमाया के अधिकतर स्थूल पदार्थ मन-बुद्धि के द्वारा अनुभूत होते हैं, इसलिये ब्रज लीला का वर्णन करना अपेक्षाकृत सरल होता है।

महारास की लीला केवल ब्रह्म की भूमिका में खेली गयी थी। वह शब्दातीत है, इसलिये परब्रह्म के जोश (जिबरील) के बिना उसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। शुकदेव जी जैसे योगेश्वर ने उसका वर्णन करना चाहा, किन्तु वे भी सफल नहीं हो सके—

तब भागे जोस कही पंचाध्यायी, रास बरनन ना हुआ तिन तांई।

प्र. ३३/२०

अपनी असफलता से क्षुब्ध शुकदेव जी के सम्बन्ध में तारतम वाणी में कहा गया है—

पात्र बिना तुम पाइया, मुनीजी क्यों करों दुख।

आज लगे बेहद का, किन लिया है सुख॥

ए तो हमारा कागद, तुम साथे आया।

खबर हद बेहद की, देकर पठाया॥

प्र. हि. बेहद वाणी ३१/७१,७२

आध्यात्मिक दृष्टि से नरसैंया शुकदेव जी की अपेक्षा बहुत निर्बल हैं। जिस कार्य को शुकदेव जी भी नहीं कर सके, उसे नरसैंया कैसे कर सकते हैं?

अब तारतम वाणी के प्रकाश में ब्रज, रास, तथा परमधाम की सारी शोभा एवं लीला का आनन्द लेने का द्वार सारे संसार के लिये खुल गया है। प्रेममयी ध्यान के द्वारा कोई भी जीव महारास का प्रत्यक्ष दृश्य देख सकता है, जो पहले सम्भव ही नहीं था।

**श्री धणिए जे रे वचन कह्यां, ते में सांभलयां रे अनेक।**

**पण में रे मारा गजा सारूं, कांई ग्रह्या छे लवलेस॥३॥**

प्रियतम अक्षरातीत ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर महारास के सम्बन्ध में बहुत सी बातें कही, किन्तु मैं अपनी बुद्धि के अनुरूप उसका कुछ अंश मात्र ही

ग्रहण कर सकी।

**भावार्थ-** श्री इन्द्रावती जी जिस मिहिरराज जी के जीव पर विराजमान होकर यह जागनी रास खेल रही हैं, उस जीव की ज्ञान ग्रहण शक्ति सीमित है। जितना वह ग्रहण कर सका, उतना ही मुख से कहा जा सका।

सरद निसा रे पूनम तणी, आव्यो ते आसो रे मास।

सकल कलानो चंद्रमा, एणी रजनीए कीधो रे रास॥४॥

आज शरद् ऋतु में आश्विन मास की पूर्णिमा है। इस मनोहर वेला में अपनी सम्पूर्ण कलाओं से युक्त चन्द्रमा निर्मल आकाश में अपनी छटा बिखेर रहा है। प्रियतम अक्षरातीत ने इसी रात्रि में केवल ब्रह्म की आनन्द योगमाया द्वारा रचित नित्य वृन्दावन में महारास की लीला की थी।

रास तणी रे लीला कहूं, जे भरियां आपणे पाय।

निमख न कीधी रे निसरतां, कांई ततखिण तेणे रे ताय॥५॥

अब मैं उस महारास का वर्णन कर रही हूँ, जिसके लिये हम सभी आत्मायें कालमाया के इस ब्रह्माण्ड को छोड़कर योगमाया के ब्रह्माण्ड में गयीं। प्रियतम के द्वारा बजायी गई बाँसुरी को सुनते ही हमने एक पल की भी देर नहीं की और उसी क्षण ब्रज से रास के लिये निकल पड़ीं।

संझाने समें रे वेण वाईयो, कांई वृन्दावन मुंझार।

एणे ने समे सहु ऊभूं मूकियूं, तेहने आडो न आव्यो रे संसार॥६॥

बेहद मण्डल के नित्य वृन्दावन में प्रियतम ने जब बाँसुरी बजायी, उस समय यहाँ सन्ध्या काल का समय चल रहा था। बाँसुरी की आवाज को सुनते ही हम सबने

तत्काल ही इस संसार को छोड़ दिया। हमारी राह में यह संसार बाधक (रोड़ा) नहीं बन सका।

**भावार्थ**— रास मण्डल में रात्रि के प्रारम्भ का दृश्य था और पूर्णिमा का चन्द्रमा उगा हुआ था, जबकि कालमाया के इस ब्रह्माण्ड में (पृथ्वी लोक के भरतखण्ड में) सन्ध्या काल का समय चल रहा था। उस समय ग्वाल बाल वन से घर की ओर लौट रहे थे। "खड़े-खड़े" शब्द का प्रयोग "तत्क्षण" के भाव में किया जाता है। इसका आशय होता है, बिना देर किये।

नहीं तो कुलाहल एवडो हुतो, पण चितडां वेध्यां रे प्रमाण।  
साथ सहुए रे वेण सांभल्यो, बीजो श्रवण तणो गुण जाण॥७॥  
अन्यथा सखियों के द्वारा संसार (घर) छोड़ते समय बहुत ही कोलाहल हुआ था, किन्तु उनका चित्त पूर्ण रूप

से अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के प्रति लगा हुआ था, इसलिये उन्होंने लोगों के कोलाहल (शोरगुल) पर कोई भी ध्यान नहीं दिया। सब सुन्दरसाथ ने बाँसुरी की मधुर ध्वनि सुनी थी, जबकि अन्य लोगों ने केवल बाँसुरी की मधुर तान ही सुनी थी।

**भावार्थ—** जब गोपियाँ विरह में अपने-अपने तन छोड़ने लगीं, तो उस समय सम्पूर्ण ब्रज मण्डल में कोलाहल मच जाना स्वाभाविक ही था। क्या जिस स्थान पर ३६००० सखियाँ विरह में अपना शरीर छोड़ेंगी, वहाँ उनके घर वालों की ओर से कोई भी प्रतिक्रिया नहीं होगी?

जब गोपियों ने बाँसुरी की मुग्ध करने वाली स्वर लहरी को सुना, तो उन्हें ऐसा लगा जैसे प्रियतम एक-एक का नाम लेकर पुकार रहे हैं। किन्तु गोपियों के अतिरिक्त अन्य किसी को भी ऐसा अनुभव नहीं हुआ। उन्हें केवल



ऐसा लगा, जैसे बहुत ही मोहक स्वरों में कोई बाँसुरी बजा रहा है। यह बजाने वाला कौन है और कहाँ बजा रहा है, यह किसी को भी पता नहीं चल सका?

कोई सखी रे हुती गाय दोहती, दूध घोणियो रे हाथ मांहे।  
 एणे समे वेण थई वल्लभनी, पडी गयो घोणियो रे तेणे ताए॥८॥

उस समय कुछ सखियाँ अपने हाथों में बर्तन (बटलोई आदि) लेकर गाय का दूध निकाल रही थीं। प्रियतम की बजायी हुई बाँसुरी की आवाज जब उनके कानों में पड़ी, तो विरह की अधिकता से उनके हाथों से दूध का बर्तन ही छूट कर गिर गया।

कोई सखी रे काम करे घर मधे, आडो ऊभो ससरो पति जेह।  
 वेण सुणी ने पाटू दई निसरी, एणी द्रष्टमां सरूप सनेह॥९॥

कोई सखी, उस समय, अपने घर में काम कर रही थी। सामने उसके पति एवं ससुर खड़े हुए दिखाई दिये। बाँसुरी की मधुर स्वर लहरी सुनकर वह इतनी भाव विह्वल हो गयी कि उसने अपने पति एवं ससुर को भी धक्का दे दिया तथा निकल पड़ी। वस्तुतः उसे अपने प्राणेश्वर के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था।

कोई सखी रे वात करे पतिसूं, ऊभी धवरावे रे बाल।  
 एणे समे वेण थई वल्लभनी, पडी गयो बाल तेणे ताल॥१०॥

कोई सखी अपने पति से बातें कर रही थी तथा खड़े होकर अपने बालक को दूध भी पिला रही थी। इसी समय उसके कानों में अक्षरातीत के द्वारा बजायी गयी बाँसुरी की आवाज सुनायी पड़ी, जिसके कारण वह

प्रियतम के स्वरूप में इतना तन्मय हो गयी कि उसके हाथ से बालक भी छूटकर गिर पड़ा और वह स्वयं चल पड़ी।

**द्रष्टव्य-** गोपियाँ प्रियतम से मिलने की इतनी जल्दी में थीं कि उन्होंने आपस में भी एक दूसरे को नहीं बताया कि वे कहाँ जा रही हैं? इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत् १०/२९/४ में कहा गया है -  
 "आजगुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः।"

कोई सखी रे हुती प्रीसणे, हाथ थाली प्रीसे छे धान।  
 एणे समे वेण थई वल्लभनी, पडी गई थाली ते तान॥११॥  
 कोई गोपी अपने हाथ में थाली लेकर भोजन परोस रही थी। इसी समय उसके कानों में जैसे ही प्रियतम के द्वारा बजायी गयी बाँसुरी की आवाज सुनायी पड़ी, उसी क्षण

उसके हाथ से थाली छूट हुई। उसके गिरने की खनखनाती हुई आवाज भी चारों ओर फैल गयी।

कोई सखी रे एणे समे निसरतां, एक पग भांणां रे मांहें।  
 बीजो पग पति ना रूदे पर, एणी द्रष्टे न आव्यूं रे कोई क्यांहें॥१२॥

घर से बाहर निकलते समय किसी सखी का एक पैर थाली में पड़ा, तो दूसरा पैर पति की छाती पर। उस समय सखियों की दृष्टि में प्रियतम के अतिरिक्त अन्य कोई दिखायी ही नहीं पड़ रहा था।

कोई सखी रे वेगे वछूटतां, पड्यो हडफटे ससरो त्यांहें।  
 आकार वहे रे घणवे उतावला, चित जई बेतूं वालाजी मांहें॥१३॥

कोई सखी बाँसुरी की आवाज सुनकर बहुत तेजी से जा रही थी। इतने में उसका श्वसुर सामने आ गया। उस

गोपी का चित्त तो अपने प्रियतम अक्षरातीत में लगा हुआ था, इसलिये वह बेसुध थी और इतनी तेजी से जा रही थी कि उसने अपने श्वसुर की ओर जरा सा भी ध्यान नहीं दिया कि यह कौन है? परिणामस्वरूप, उसके धक्के से श्वसुर भी जमीन पर गिर पड़ा।

**माता पिता रे पति सासु ससरो, रोतां न सुणियां रे बाल।**

**वाएने वेगे रे वछुटियो, वेण सांभलतां तत्काल॥१४॥**

बाँसुरी की आवाज सुनते ही सखियों ने उसी क्षण हवा की तेजी से अपने घरों को छोड़ दिया। इस कार्य में उन्होंने अपने माता-पिता, पति, सास, श्वसुर, तथा रोते हुए बच्चों की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया।

वस्तर विना सखी जे नहाती, तेणे नव संभारियां रे अंग।  
 वेण सांभलतां रे वाला तणी, एणे वेगमां न कीधो रे भंग॥१५॥

जो कुमारिका सखियाँ यमुना जी में बिना वस्त्रों के स्नान किया करती थीं, वे प्रियतम अक्षरातीत की बाँसुरी की आवाज सुनते ही अपने घरों से निकल पड़ीं। न तो उन्हें अपने अंगों की कोई सुधि थी और न उन्होंने निकलने में कोई देरी ही की।

कोई सखी रे हुती नवरावती, हाथ लोटो नामे छे जल।  
 सुणी स्वर पड्यो लोटो अंग ऊपर, न बोलानूं चितडे व्याकुल॥१६॥

कोई सखी अपने पति को स्नान करा रही थी। उसके हाथ में जल से भरा लोटा था, जिससे वह जल को उसके ऊपर डाल रही थी। जैसे ही उसने बाँसुरी की आवाज सुनी, उसने जल गिराना भुला दिया तथा बेसुधी

में लोटा ही उसके शरीर पर दे मारा। प्रियतम से मिलने के लिये उसका चित्त इतना व्याकुल था कि वह कुछ भी बोल न सकी और तुरन्त चल पड़ी।

**गौपद वछ रे एणे समे, सुकजीए निरधारियो ते सार।**

**त्राटकडे रे त्रटका करिया, कांई बंध हता जे संसार॥१७॥**

शुकदेव जी ने यह सार तत्त्व दर्शाया है कि उस समय गोपियों ने गोपद बच्छ के समान इस भवसागर को बहुत ही सरलता से पार कर लिया। किसी घास के तिनके को जिस प्रकार पल भर में ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाता है, उसी प्रकार सखियों ने पल भर में ही सभी सांसारिक बन्धनों का परित्याग कर दिया।

**विशेष-** गोपियों द्वारा संसार त्यागने का तात्पर्य मात्र अपने सगे-सम्बन्धियों का ही परित्याग नहीं है, बल्कि

उन्होंने तो अपने आराध्य के लिये सम्पूर्ण सुखों की भी परवाह नहीं की। प्रियतम अक्षरातीत ही उनके सर्वस्व थे।

संसार तणा रे काम सर्वे करतां, पण चितमां न भेद्यो रे पास।

विलंब न कीधी रे वछूटतां, ए तामसियोना प्रकास॥१८॥

तामसी सखियाँ वे हैं, जिन्होंने संसार के सभी (घरेलू व सामाजिक) कार्यों को करते हुए भी अपने हृदय में माया का प्रभाव नहीं पड़ने दिया और प्रियतम के प्रेम में संसार को छोड़ने में पल भर की भी देर नहीं की।

**भावार्थ—** "तामसी" सखियों का आशय तमोगुणी अर्थात् क्रोधी और अहंकारी सखियों से नहीं है, बल्कि जो प्रियतम के प्रेम में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दे उन्हें तामसी सखियाँ कहा गया। ये "प्रेम पिया सो ना



करें अन्तर" को पूर्णतः चरितार्थ करती हैं। प्रेम और समर्पण के क्षेत्र में लोक लज्जा की मर्यादा निभाने वाली सखियाँ "स्वांतसी" अर्थात् सात्विकी हैं, और इन दोनों के बीच गुण वाली सखियाँ "राजसी" हैं।

परमधाम में सर्वत्र एकत्व (वहदत) का सागर क्रीड़ा करता है। अतः वहां पर स्वांतसी, राजसी, तथा तामसी का भेद नहीं है। यह भेद तो इस नश्वर जगत के गुणों के प्रभाव के कारण दर्शाया गया है।

**कोई सखी रे सिणगार करतां, सुणी तेणे वेण श्रवण।**

**पायना भूखण काने पहेरिया, कान तणा रे चरण॥१९॥**

कोई सखी अपना श्रृंगार कर रही थी। संयोगवश उसी समय उसे बाँसुरी की मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी। ऐसी अवस्था में उसके हृदय में विरह के कारण इतनी

व्याकुलता बढ़ गयी कि उसने जल्दी में पैरों का आभूषण कानों में पहन लिया तथा कानों का आभूषण पैरों में।

एक नैणे रे अंजन करियूं, अने बीजो रह्यू रे एम।

वेणनो स्वर सांभल्या पछी, राजसियो रहे रे केम॥२०॥

एक सखी ने अपनी एक आँख में अञ्जन (काजल) लगाया, तो दूसरी आँख में लगाने का ध्यान ही नहीं रहा। बाँसुरी की मधुर ध्वनि सुनने के पश्चात्, भला राजसी सखियाँ इस झूठे संसार में कैसे रह सकती थीं।

राजसिए रे कांइक नैणे डीठो, पण विचार करे तो थाय वेड।

तामसियो रे मोहोवड थैयो, राजसिए न मूक्यो तेहेनो केड॥२१॥

राजसी सखियों ने अपने अधूरे श्रृंगार को अपनी आँखों से देखा तो अवश्य, किन्तु वे तुरन्त चल दीं, क्योंकि

यदि वे अपना श्रृंगार पूरा करतीं तो देर हो रही थी, जिसे सहन कर पाना सम्भव नहीं था। तामसी सखियाँ पहले ही निकल चुकी थीं, इसलिये राजसी सखियों ने भी उनका पीछा नहीं छोड़ा और वे भी तुरन्त उनके साथ हो गयीं।

स्वांतसिए रे विचार करियो, तेने आडा देवराणा रे बार।  
 कुटम सगा रे सहु टोले मली, फरीने वल्या रे भरतार॥२२॥

सात्विकी (स्वांतसी) सखियाँ अभी घर से निकलने के सम्बन्ध में विचार कर ही रही थीं कि इतने में परिवार के सभी सम्बन्धी एकत्रित हो गये और उन्होंने घर का दरवाजा बन्द कर दिया। इसके पश्चात् उनके पतियों ने उनका हाथ पकड़ कर जाने से रोक भी दिया।

त्यारे मन मांहें विचार करियो, ए कां आडा थाय दुरिजन।

ए सूं जाणे छे वर नहीं एनो वालैयो, तो जातां वारे छे वन॥२३॥

तब सात्विकी सखियों ने अपने मन में विचार किया कि हमारे जाने में ये दुष्ट लोग क्यों बाधक बन रहे हैं? क्या ये नहीं जानते हैं कि अक्षरातीत हमारी आत्मा के प्रियतम हैं? ऐसा लगता है कि इन्हें मालूम ही नहीं है, तभी ये हमें वृन्दावन जाने से रोक रहे हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में "वन" शब्द के प्रयोग से यही निष्कर्ष निकलता है कि सखियाँ वृन्दावन को ही लक्ष्य करके निकली थीं। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि बाँसुरी की आवाज वृन्दावन से आ रही है, जबकि वास्तविकता यह थी कि बाँसुरी की ध्वनि केवल ब्रह्म के नित्य वृन्दावन से आ रही थी। घरों से निकलने के बाद एक-एक करके सबके तन छूटते गये और उनकी आत्मा

धनी की प्रेरणा से अपने जीव के साथ योगमाया के नित्य वृन्दावन में पहुँच गयी।

यद्यपि बाँसुरी की आवाज सम्पूर्ण ब्रज मण्डल के अतिरिक्त अन्य लोगों (शिव आदि देवों) ने भी सुनी, किन्तु किसी को भी यह पता नहीं चल पाया कि यह अलौकिक ध्वनि कहाँ से आ रही है? सखियों के घर वालों को यह पता था कि ये वृन्दावन में श्री कृष्ण जी के पास ही जा रही हैं, इसलिये उन्होंने रोकने का प्रयास किया।

धिक धिक पडो रे आ संसारने, कां न उठे रे अगिन।

विरह तामस रे भेलो थयो, त्यारे अंगडा थयां रे पतन॥२४॥

इस संसार के लोगों को धिक्कार है, जो हमें प्रियतम के पास जाने से रोक रहे हैं। ऐसी अवस्था में हमारे अन्दर

विरह की प्रचण्ड ज्वाला क्यों नहीं धधक रही है? ऐसा सोचते-सोचते सात्विकी सखियों के अन्दर विरह तथा प्रियतम पर न्योछावर होने की भावना ने बहुत जोर पकड़ा, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन सखियों का शरीरान्त (प्राणान्त) हो गया।

**भावार्थ-** प्रियतम से मिलने की तड़प ही "विरह" है, जबकि प्रियतम के ऊपर अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि अपने प्राण भी, न्योछावर कर देने की भावना "तामस" कहलाती है। उपरोक्त चौपाई में विरह और तामस के मिलने का अभिप्राय यह है कि सखियों के अन्दर प्रियतम से मिलने का तीव्रतम विरह तो था ही, उनके मन में यह भावना भी घर कर गयी कि जिस प्रकार हमें बलपूर्वक रोका जा रहा है, उसके परिणामस्वरूप हमारा मर जाना ही उचित है। यदि हम अपने सर्वस्व से मिल

ही नहीं सकतीं, तो इस तन को रखने से लाभ ही क्या है?

वस्तुतः सात्विकी सखियाँ राख से ढकी उस अग्नि के ढेर के समान हैं, जिनमें ऊपर से तो शान्ति का स्वभाव है, किन्तु आन्तरिक रूप से उनमें भी प्रियतम के ऊपर सर्वस्व न्योछावर करने का भाव विद्यमान है, जिसे तामस कहा गया है। इस भाव के प्रकट होने पर ही उनकी विरहाग्नि चरम पर पहुँची और उन्होंने अपना तन त्यागा।

परमधाम के स्वलीला अद्वैत में सात्विकी, राजसी, तथा तामसी सखियों की भावना न तो कभी थी और न भविष्य में ही कभी होगी। जिस प्रकार श्वेत स्फटिक मणि अलग-अलग रंगों के संयोग से अपने मूल रंग के विपरीत रंग में दिखायी देने लगती है, उसी प्रकार सत्त्व, रज,

और तम के भाव से ग्रसित जीवों पर विराजमान ब्रह्मात्मायें भी वैसे ही भावों के प्रवाह में आ गयीं। आत्मा के सम्बन्ध से, परमधाम का सर्वस्व समर्पण वाला प्रेममयी भाव सभी सखियों में रहा , किन्तु जीव के सम्बन्ध से, जिनमें यह भाव अन्दर-बाहर समान रूप से प्रकट हुआ वे तामसी कहलायीं, जिनमें केवल आन्तरिक स्वरूप से विद्यमान रहा वे सात्विकी कहलायीं, तथा मध्यम अवस्था वाली सखियाँ राजसी कहलायीं।

परमधाम के मूल मिलावे में छः हजार तामसी सखियों की पीछली हार, चार हजार राजसी सखियों की दूसरी (मध्य वाली) हार, तथा २ हजार सात्विकी सखियों की सबसे आगे वाली हार मानना तारतम्य वाणी के पूर्णतया विपरीत है। इस प्रकार का भाव केवल इस नश्वर जगत में ही सम्भव है, परमधाम में नहीं।



वास्ना वहियो रे अति वेग मां, वार न लगी रे लगा र।

वस्त खरी ते केम रहे वाला विना, तेणे साथ समो कीधो सिणगार॥२५॥

अपने नश्वर तनों को छोड़कर सात्विकी सखियाँ भी बहुत तेजी से चलीं, और जरा भी देर किये बिना अन्य सखियों (तामसी तथा राजसी) के साथ ही योगमाया के ब्रह्माण्ड (केवल ब्रह्म) में पहुँच गयीं। परमधाम की आत्मा भला अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के बिना कैसे रह सकती है? इस प्रकार सात्विकी सखियों ने भी नित्य वृन्दावन में पहुँचकर अन्य सखियों के साथ ही अपना (योगमाया का) श्रृंगार किया।

**भावार्थ—** ब्रह्मसृष्टियों ने इस नश्वर जगत में पञ्चभूतात्मक नश्वर तन धारण किया था। बाँसुरी की आवाज सुनकर सबने विरह में अपना तन छोड़ दिया और योगमाया में त्रिगुणातीत चैतन्य नूरमयी तन धारण किया। श्रीमद्भागवत्

१०/२९/११ में भी कहा गया है कि "जुहर्गुणमयं देहं।"

वृजवधू कुमारिकाओ नी, कही नहीं सुकजीऐ विगत।  
 ते केम संसे राखूं मारा साथ ने, तेनी करी दऊं जुजवी जुगत॥२६॥  
 शुकदेव जी ने ब्रज वधुओं (गोपियों) के रूप में  
 ब्रह्मात्माओं का तो वर्णन किया, कुमारिका सखियों का  
 स्पष्ट विवेचन नहीं किया। ऐसी अवस्था में मैं अपने  
 सुन्दरसाथ में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहने देना  
 चाहती। इसलिये मैं उनका अलग से विवरण दे रही हूँ।

जेटली नहाती कार्तिक कुमारिका, ए वास्ना नहीं उत्पन।  
 एनी लज्या लोपावी हरीने वस्तर, तेसूं कीधो वायदो वचन॥२७॥  
 जो सखियाँ ब्रत रखकर कार्तिक महीने में यमुना जी में  
 स्नान किया करती थीं, उनमें परमधाम की सुरतायें नहीं

थीं। बल्कि ये अक्षर ब्रह्म के द्वारा धारण की गयी सुरतायें थीं। प्रियतम ने श्री कृष्ण रूप में इनके वस्त्रों का हरण किया तथा इनकी लज्जा को दूर कर समर्पण के परम पुनीत मार्ग में प्रतिष्ठित किया। इसके अतिरिक्त उन्हें यह वचन दिया कि भविष्य में तुम्हारे साथ भी लीला (रास) होगी।

**भावार्थ-** प्रायः जनसाधारण में यह मान्यता प्रचलित है कि गोपियों का चीरहरण करके श्री कृष्ण जी ने अधर्म किया। उन कुँवारी कन्याओं को नग्रावस्था में सामूहिक रूप से जल से बाहर आने के लिये कहना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता।

उपरोक्त भ्रान्ति का समाधान इन शब्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है—

जिस समय चीर हरण की लीला हुई, उस समय श्री

कृष्ण जी की उम्र मात्र १० वर्ष की थी। इस अवस्था में तो सामान्य मानवीय बालक में भी काम विकार प्रकट नहीं होता, जबकि श्री कृष्ण जी के तन में तो अक्षर ब्रह्म की आत्मा तथा अक्षरातीत का जोश एवं आवेश विराजमान था। भला ऐसे स्वरूप से स्वप्न में भी वैकारिक लीला की कल्पना कैसे की जा सकती है?

जब अक्षर ब्रह्म की वासना शुकदेव जी के ऊपर स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा रम्भा का प्रभाव नहीं पड़ सका, तथा जीव सृष्टि के अन्तर्गत माने जाने वाले गौतम बुद्ध के ऊपर आम्रपाली जैसी अद्वितीय सुन्दरी का भी कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ा, तो असंख्य ब्रह्माण्डों के स्वामी अक्षर ब्रह्म के भी प्रियतम जिस तन में लीला कर रहे हों, उस तन को काम विकार से ग्रस्त कैसे माना जा सकता है?

व्रज में श्री कृष्ण जी के तन में विराजमान अक्षरातीत का आवेश १२ हजार गोपिकाओं के रूप में विद्यमान ब्रह्मसृष्टियों के साथ प्रेममयी लीला तो करता था, किन्तु खेल का आनन्द लेने के लिये अक्षर ब्रह्म के द्वारा धारण की गई २४ हजार सुरताओं के साथ लीला नहीं होती थी। इसलिये कुमारिकाओं ने अपने साथ लीला की कामना से व्रत किया तथा यमुना जी में नग्न स्नान करने लगीं। बहुसंख्यक कुमारिकाओं द्वारा कई दिनों तक यमुना जी में नग्न स्नान की प्रक्रिया चलती रही, जो शास्त्र एवं सामाजिक मर्यादा के पूर्णतया विपरीत था। धर्मशास्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि "न नग्नः स्नायात्"।

कुमारिकायें श्री कृष्ण जी से जिस प्रेममयी लीला की आकांक्षा रखती थीं, उसके लिये समर्पण की भट्टी में तप कर कुन्दन बनना ही पड़ता है। किन्तु इस दृष्टि से

कुमारिकाओं के द्वारा भूल हो रही थी। जब एक पुरुष किसी दूसरे पुरुष के सामने नग्न होने में लज्जा का अनुभव करता है, तो इतनी बड़ी संख्या में कुमारिकाओं का प्रतिदिन पूर्णतया नग्न होकर स्नान करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। जब वे आपस में एक दूसरे के सामने नग्न हो सकती हैं, तो जिसे वे अपना सर्वस्व मानती हैं तथा जिन्हें प्राप्त करने के लिये ही इस तरह की उपवास आदि साधनायें कर रही हैं, उसी के सामने प्रत्यक्ष उपस्थित होने पर लज्जा करने से यही सिद्ध होता है कि वे अपने आराध्य के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित ही नहीं हैं। प्रेम तो पूर्णतया निर्विकार होता है और पञ्चभौतिक शरीर से सर्वथा परे आत्मिक धरातल पर होता है।

जब तक कुमारिकायें शरीर भाव से परे होकर आत्मिक

दृष्टि से सर्वस्व समर्पण का भाव नहीं लेतीं, तब तक प्रेम के क्षेत्र में उन्हें सिद्धहस्तता प्राप्त नहीं हो सकती। यही कारण है कि श्री कृष्ण जी ने उनसे कहा कि तुम इतने दिनों से यहाँ नग्न स्नान करती रही हो, इसलिये यदि तुम्हारा हृदय मेरे प्रति पूर्णतया प्रेम के भावों से समर्पित है तो इसी अवस्था में आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ।

जिस प्रकार किसी एकान्त स्थान में दो सगे भाई-बहनों को हँसते-खिलखिलाते देखकर किसी अपरिचित व्यक्ति के मन में संशय के बादल मण्डराने लगते हैं, उसी प्रकार चीरहरण की लीला को भी जो लोग काम विकार की दृष्टि से देखते हैं, उनके विषय में यही कहा जा सकता है कि वे निश्चय ही आध्यात्मिक प्रेम से कोसों दूर रहते हैं और उनकी दृष्टि स्थूल माँस-पिण्ड से परे हो ही नहीं पाती।

वे भ्रमवश प्रेम और वासना को एक ही धरातल पर देखने के अभ्यस्त हो गये होते हैं।

जे सखी हुती कुमारका, घर नहीं तेहेना अंग।

सनेह बल दया लीधी धणीतणी, ते मलीने भली साथने रंग॥२८॥

ब्रज में जो कुमारिका सखियाँ थीं, परमधाम में उनके तन नहीं हैं। किन्तु उनके सच्चे प्रेम के कारण धाम धनी ने उनके ऊपर अपार कृपा की, जिसके परिणाम स्वरूप वे भी अपना तन छोड़कर रास लीला के लिये ब्रह्मसृष्टियों के साथ मिल गयीं।

साथ दोडे रे घणवे आकलो, मननी न पोहोंती हाम।

जोगमाया आवी सामी जुगत सों, सिणगार कीधो एणे ठाम॥२९॥

सभी सखियाँ बहुत व्याकुल होकर महारास के लिये



चल पड़ीं। ५२ दिन के वियोग के कारण प्रियतम से मिलने की उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी थी। अपने नश्वर तनों को छोड़कर वे योगमाया के ब्रह्माण्ड में पहुँची और वहाँ पर उन्होंने नूरी श्रृंगार धारण किया।

सुणोजी साथ कहे इंद्रावती, जोगमाया नो जुओ विचार।  
ए केणी पेरे हूं वरणवुं, मारा साथ तणो सिणगार॥३०॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! मेरी बात सुनिये। आप योगमाया की शोभा के विषय में विचार करके देखिए। अपने सुन्दरसाथ की अलौकिक शोभा—श्रृंगार का वर्णन मैं कैसे करूँ?

वचन धणी तणां में सांभल्यां, मारा गजा सारुं रे प्रमाण।  
एक स्यामाजीने वरणवुं, बीजो साथ सकल एणी पेरे जाण॥३१॥

मैं हृषी में प्रियतम अक्षरातीत के द्वारा कहे हुए वचनों को अपनी बुद्धि के अनुसार जितना ग्रहण कर पायी हूँ, उसी के आधार पर श्यामा जी की शोभा का वर्णन कर रही हूँ। शेष अन्य ब्रह्मात्माओं की शोभा को भी आप वैसा ही जान लीजिएगा।

प्रकरण ॥५॥ चौपाई ॥१८४॥

## श्री ठकुराणीजीनो सिणगार – राग धना श्री

इस प्रकरण में श्री श्यामा जी की अलौकिक शोभा का वर्णन किया गया है।

अखंड सरूपनी अस्थिर आकारे, सोभा कहूं घणवे करीने सनेह।  
जोई जोई वचन आणूं कै उंचा, पण न आवे वाणी मांहें तेह।  
सोभा सिणगार, स्यामाजीनो निरखूंजी॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैं अपने नश्वर तन से श्री श्यामा जी के द्वारा धारण किये गये अखण्ड स्वरूप की शोभा का बड़े प्रेम से वर्णन करती हूँ। मैं श्री श्यामा जी की उस शोभा और श्रृंगार को देखकर वर्णन करने के लिये उँचे से उँचे (अति श्रेष्ठ) शब्द का प्रयोग कर रही हूँ, फिर भी वह शोभा वाणी में नहीं आ पा रही है।

ए सोभा न आवे वाणी मांहें, पण साथ माटे कहेवाणी।

ए लीला साथना रूदेमां रमाडवा, तो में सबदमां आणी॥२॥

यद्यपि इस अलौकिक शोभा का वर्णन शब्दों में व्यक्त नहीं हो पा रहा है, फिर भी सुन्दरसाथ के लिये मुझे कहना पड़ रहा है। महारास की लीला का वर्णन मेरे द्वारा शब्दों में इसलिये किया जा रहा है कि जिससे वह सुन्दरसाथ के धाम हृदय में बस जाये।

चरण अंगूठा अति भला, पासे कोमल आंगलियो सार।

रंग तो अति रलियामणो दीसे, नख हीरा तणां झलकार॥३॥

श्री श्यामा जी के दोनों चरणों के अँगूठे अति सुन्दर हैं। इनके पास की अँगुलियाँ भी अति सुन्दर और कोमल हैं। इनका रंग बहुत ही मनोहर दिखाई दे रहा है। नाखून तो हीरे के समान झलकार कर रहे हैं।

हीरा ते पण तेहज भोमना, आ जिभ्या तिहां न पोहोंचाय।

आणी जिभ्याए जो न कहूं साथने, तो रूदे प्रकास केम थाय॥४॥

श्री श्यामा जी के नखों की हीरे से जो उपमा दी गयी है, उस हीरे को बेहद मण्डल का ही चेतन एवं प्रकाशमयी (नूरमयी) हीरा समझना चाहिये, इस नश्वर जगत का जड़ हीरा नहीं। इस तन की जिह्वा से वहाँ की अखण्ड शोभा का वर्णन हो ही नहीं सकता। किन्तु यदि मैं उस शोभा का वर्णन ही न करूँ, तो सुन्दरसाथ के हृदय में इतना भी ज्ञान कैसे हो सकेगा?

**भावार्थ—** कालमाया का हीरा कोयले से बना होता है। जब कोयला उच्च ताप एवं दाब के प्रभाव में आता है, तो वह हीरे के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जबकि श्री श्यामा जी के नख की उपमा जिस हीरे से दी गयी है, वह इस जगत का जड़ हीरा नहीं है, अपितु पूर्णतः चेतन,

नूरमयी, और ब्रह्मरूप है।

फणा तो रंग पतंग छे, कांकसा नसो निरमल निरधार।

कूकम रंगे पानी सोभे, चरण तली वली सार॥५॥

श्री श्यामा जी के चरणों के पँजे लाल रंग से शोभायमान हो रहे हैं। अँगुलियों के बीच की नाड़ियाँ (नसें) बहुत ही स्वच्छ दिखायी दे रही हैं। इसके अतिरिक्त चरणों की तलियाँ लाल रंग की आभा लिये हुये अत्यधिक शोभायमान हो रही हैं।

लांक तो दीसे अति लेहेकतो, रेखा सोभित अति पायजी।

टांकण घूटीने कांडा कोमल, पीडी ते वरणवी न जायजी॥६॥

चरणों के नीचे गहराई वाला भाग बहुत अधिक सुन्दर दिख रहा है। उसके ऊपर आयी हुई कोमल रेखाएँ बहुत

अधिक शोभायमान हो रही हैं। चरणों के टाँकन, गोल घूँटी, तथा काँडा वाला भाग बहुत ही कोमल है, जबकि पिंडली की शोभा का तो किसी भी प्रकार से वर्णन हो ही नहीं सकता।

**भावार्थ-** एड़ी के ऊपर का भाग टाँकन (टखना) कहलाता है। दाहिने पैर की एड़ी की दायीं ओर तथा बायें पैर की एड़ी की बायीं ओर जो गोल घुण्डी होती है, उसे घूँटी कहते हैं। घूँटी के नीचे जिस भाग में पायल पहना जाता है, उसे काँडा कहते हैं। घुटने तथा एड़ी के बीच जो पैर का पिछला वाला भाग होता है, वह पिण्डली कहलाता है।

कुंदन केरा अनवट सोहे, विछुडा करे ठमकार।

माणक मोती ने नीला पाना, जुगते अति जडाव॥७॥

श्री श्यामा जी के दोनों चरणों के अँगूठों में शुद्ध स्वर्ण के बने हुये अनवट शोभायमान हैं। अँगुलियों में बिछुआ मधुर ध्वनि करते रहते हैं। इनमें (अनवट, बिछुआ) माणिक, मोती, नीलम, तथा पन्ना अत्यधिक युक्तिपूर्वक जड़े हुये हैं।

**भावार्थ-** सामान्य स्वर्ण की अपेक्षा कुन्दन लालिमा लिये होता है, क्योंकि यह सामान्य स्वर्ण को आग में तपाकर तैयार किया जाता है। इस चौपाई के चौथे चरण में माणिक, मोती, आदि के अत्यधिक युक्तिपूर्वक जड़े होने का आशय यह है कि ये इस प्रकार जड़े हुये हैं कि अनवट, बिछुआ अधिक से अधिक रूप में शोभायमान हो सकें।



कांबी कडला रणझण बाजे, घुंघरी तणां घमकार।

हेम तणां वाला मांहे गठिया, मांहे झांझर तणो झमकार॥८॥

श्री श्यामा जी के चरणों में झाँझरी, घुँघरी, काँबी, और कड़ला (कड़ा) के आभूषण शोभायमान हो रहे हैं। इनमें काँबी और कड़े से रनझन-रनझन की मधुर आवाज सुनायी देती है। इसी प्रकार चलने पर (पैरों) की धमक से घुँघरी से अति मधुर ध्वनि निकला करती है। ये घुँघरियाँ सोने के तार में जड़ी हुयी हैं। इसी प्रकार झाँझरी से भी चलने पर अति कर्णप्रिय झन-झन की आवाज आती है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण में "घमकार" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका आशय पैरों की धमक अर्थात् चलने से है।

कांबिए नंग आसमानी फूल वेल, जुगते कुंदन जडाव।

जडाव लाल नंग नीला पीला, कडले सोभा अति थाए॥९॥

शुद्ध स्वर्ण की काँबी में आसमानी रंग के नंग इस प्रकार से जड़े हुये हैं कि उससे अति सुन्दर फूलों और बेलों की आकृति बन गयी है। इसी प्रकार कड़े में लाल, नीले, तथा पीले रंग के नंग जड़े हैं, जिससे उसकी शोभा बहुत अधिक दृष्टिगोचर हो रही है।

**भावार्थ—** प्रायः पन्ना आसमानी रंग का, माणिक और प्रवाल लाल रंग के, नीलम नीले रंग का, पुखराज पीले रंग का, पाच हरे रंग का, मोती और हीरा श्वेत रंग के, गोमेद हल्के कत्थई रंग का, पिरोजा हल्के नीले रंग का, और लहसुनिया लहसुन के रंग का माना जाता है।

घूंघरडीनो घाट जुगतनो, कोरे करडा कुंदन।

मांहे मोती फरतां दीसे, मध्य जडिया नीला नंग॥१०॥

घुँघरी की बनावट इस प्रकार बनी है कि उसकी किनार पर सोने के दाने जड़े हुये हैं। चारों ओर मोती के नग जड़े हुये दिखायी दे रहे हैं तथा मध्य में नीले रंग का नग भी शोभायमान हो रहा है।

झाँझरिया एक जुई जुगतना, कोरे लाल जडाव कांगरी।

एक हार बे हीरा तणी, बीजी मध्य दरपण रंग दोरी॥११॥

झाँझरी की बनावट एक नई प्रकार की है, जिसकी किनार पर काँगरी के रूप में लाल नग जड़े हुये हैं। इसमें दो हीरों की एक हार (पंक्ति) आयी है। इनके मध्य में श्वेत दर्पण के समान चमकती हुई एक डोरी भी आयी है।

भूखण चरणे सोभंता, अने बोलंता रसाल।

जुजवी जुगतना जवेर ज दीसे, करे ते अति झलकार॥१२॥

इस प्रकार श्री श्यामा जी के चरणों में झाँझरी, घूँघरी, काँबी और कड़े के आभूषण शोभायमान हो रहे हैं। ये बहुत ही मनमोहक ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इन आभूषणों में अलग-अलग प्रकार के जो जवाहरात दिखायी दे रहे हैं, वे बहुत अधिक झलकार कर रहे हैं।

वस्तर केणी पेरे वरणवूं, ए तां सायर अति सरूप।

मारा जीवनी खेवना भाजवा, हूं तो कहूं गजा सारूं कूप॥१३॥

श्री श्यामा जी के वस्त्रों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ? यह अलौकिक शोभा तो अथाह सागर के समान है, जबकि मेरी बुद्धि एक छोटे से कुँए के समान है। किन्तु अपने जीव की चाहत पूरी करने के लिए अपनी

अल्प बुद्धि से मुझे इस शोभा का वर्णन करना पड़ रहा है।

नीली ते लाहिनो चरणिया, अने मांहें कसवनी भांत।

कोरे कोरे कांगरी, इंद्रावती जुए करी खांत॥१४॥

नीले रंग का चमकता हुआ घाघरा है, जिसमें तरह-तरह की कसीदाकारी की गयी है। इसके किनार पर काँगरी की इतनी सुन्दर शोभा आयी है कि श्री इन्द्रावती जी बहुत चाहत के साथ उसे देख रही हैं।

**भावार्थ-** सोने या चाँदी के तारों से तरह-तरह के बेल-बूटों आदि को उभारना (अंकित करना) कसीदाकारी कहा जाता है।

परमधाम के श्रृंगार में चरणिया का तात्पर्य जहाँ पेटीकोट से लिया जाता है, वहीं रास के श्रृंगार में

चरणिया का आशय घाघरे से लिया जाएगा।

कांगरी केरी जुगत जोड़ए, द्रढ करीने मन।

माणक मोती हीरा कुंदन, नीला ते पाच रतन॥१५॥

यदि काँगरी की बनावट को ध्यानपूर्वक देखें तो यह स्पष्ट विदित होता है कि माणिक, मोती, हीरा, नीलम, तथा पाच के नग सोने की तारों में बहुत सुन्दर शोभा के साथ जड़े हुए हैं।

भांत तो भली पेरे वरणवुं, मांहें वेल सुनेरी सार जी।

वस्तर समियल बणियल दीसे, नव सूझे कोए तार जी॥१६॥

इस प्रकार मैं श्री श्यामा जी के वस्त्रों का बहुत अच्छी तरह से वर्णन करने का प्रयास कर रही हूँ। उनके वस्त्रों की काँगरी में सुनहरी बेलों की अति सुन्दर शोभा आयी

है। सभी वस्त्रों की बनावट में समान शोभा दिखायी दे रही है। बेल-बूटे (कसीदाकारी) में प्रयुक्त हुये सोने – चाँदी का एक भी तार निरर्थक रूप में उभरा हुआ दिखायी नहीं देता है।

अनेक विध ना फूलज दीसे, मांहे जवेर तणां झलकार जी।  
 नाडी तो अति सोभा धरे, जेमां रंग दीसे अग्यार जी॥१७॥  
 लहंगे में अनेक प्रकार के फूलों की आकृति आयी है ,  
 जिनमें तरह-तरह के जवाहरात झलकार कर रहे हैं।  
 लहंगे को कमर से बाँधने वाली नाडी (नाड़ा) अत्यधिक सुन्दर है, जिसमें ग्यारह रंग दिखायी दे रहे हैं।

नीलो पीलो सेत सेंदुरियो, मांहे कसवनी भांत जी।  
 स्याम गुलालियो अने केसरियो, मांहे जांबू ते रंगनी जात जी॥१८॥

घाघरे में अनेक रंगों की कसीदाकारी की गयी है, जैसे— नीला, पीला, श्वेत, सिन्दुरिया, श्याम, गुलाल, केशरिया, और जाम्बू।

**भावार्थ—** यद्यपि सिन्दुरिया और गुलाल रंग, लाल रंग के होते हैं, किन्तु इनमें सूक्ष्म अन्तर होता है। सिन्दुरिया अर्थात् सिन्दूर के रंग से मिलता-जुलता रंग, जिसमें गुलाबी रंग की प्रधानता होती है। जबकि गुलाल रंग में लाल रंग की विशिष्टता होती है।

इसी प्रकार केशरिया रंग, लाल और पीले रंग के संयोग से बनता है। पके हुए जामुन का रंग, कत्थई रंग का होता है, जिसे जाम्बू रंग कहते हैं।

जुगत एक वली जुई छे, ऊभी लाखी लिबोईनी दोर।

मानकदे द्रढ करीने जुए, सोभित बंने कोर॥१९॥



नाड़ी की बनावट में एक और विशेष शोभा दिखायी देती है। उसमें गहरे लाल तथा पके हुये नींबू के समान पीले रंग दिखायी दे रहे हैं। नाड़ी के दोनों किनारे अति सुन्दर शोभायमान हो रहे हैं, जिन्हें श्री इन्द्रावती जी (माणकदे) बड़े ध्यान से देख रही हैं।

**भावार्थ-** माणकदे श्री इन्द्रावती जी का व्रज का नाम है, जो रास के समय भी प्रयुक्त हो रहा है।

**चीण चरणिए जोइए, मांहे वेल मोती झलकंत।**

**राती नीली चुन्नी कुंदनमां, भली पेरे मांहे भलंत॥२०॥**

हे साथ जी! आप घाघरे की चुन्नटों को तो देखिए। उसमें मोतियों की बनी हुयी अति सुन्दर बेलें झलकार कर रही हैं। इनमें लाल तथा नीले रंग के जवाहरातों की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ, सोने के साथ इस प्रकार से जड़ी

हैं कि ऐसा लगता है कि आपस में हिल-मिलकर एक हो गयी हों।

ए ऊपर जे सोभा धरे, कांई तेहेनो न लाभे पार।

अंग चरणियो प्रगट दीसे, साडी मांहे सिणगार॥२१॥

घाघरे के ऊपर जो साड़ी की छवि आयी है, उसका कोई भी पार नहीं पा सकता। कमर एवं पैरों में पहने हुये घाघरे की शोभा साड़ी में से प्रत्यक्ष दिखायी दे रही है।

छूटक छापा कुंदन केरा, साडी सेंदुरिए रंग।

हीरा माणक मोती लसणिया, मध्य पांच वानिना नंग॥२२॥

श्री श्यामा जी ने सिन्दुरिया रंग की साड़ी धारण कर रखी है, जिसमें छोटी-छोटी अति मनोहर सुन्दर आकृतियों की छपाई शोभा दे रही है। इन छापों में हीरा,

माणिक, मोती, लहसुनिया, तथा पाच के नग अपने मनोहर रूप में जड़े हुये हैं।

सोभा तो घणुए सोहामणी, जो द्रढ करी जोड़ए मन।

झीणा वस्तर ने अति उत्तम, कानिए दोरी त्रण॥२३॥

हे साथ जी! यदि आप अपने मन को एकाग्र करके चितवनि द्वारा देखें तो यह शोभा बहुत अधिक सुन्दर (अनन्त) दिखायी दे रही है। श्री श्यामा जी के सभी वस्त्र (घाघरा, साड़ी, ब्लाउज, आदि) बारीक और अति उत्तम हैं। साड़ी की किनार पर तीन डोरी (धारियों) की बनावट आयी है।

मांहें मोती कोरे कसवी, त्रीजी नीली चुंनी सार।

अनेक विधनी वेल जो सोभे, छेडे करे झलकार॥२४॥

मध्य की धारी में मोती जड़े हुए हैं। किनारे की धारी (डोरी) में बेलबूटों की चित्रकारी (कसीदाकारी) है। तीसरी धारी में नीले रंग के नगों के अति सुन्दर छोटे – छोटे टुकड़े जड़े हैं। साड़ी में अनेक प्रकार की बेलें शोभायमान हो रही हैं। अलौकिक शोभा वाले साड़ी के दोनों किनारे झलकार कर रहे हैं।

**सुन्दर लांक सोहामणो, वांसो दीसे साडीमां अंग।**

**वेण तले कंचुकीनी कसो, जुगते सोहे बंध॥२५॥**

श्री श्यामा जी की अति सुन्दर पीठ की गहराई (मेरूदण्ड के सामने का भाग) साड़ी में से बहुत ही सुन्दर दिखायी दे रही है। उनके ब्लाउज की तनियों (डोरियों) के बँध चोटी के नीचे बहुत ही युक्तिपूर्वक बँधे हुये शोभायमान हो रहे हैं।

**भावार्थ-** बालों की चोटी मेरुदण्ड की सीध में आयी है।  
चोटी के नीचे ब्लाउज की तनियाँ बँधी हुयी हैं।

अंगनो रंग निरख्यो न जाय, क्याहें न माय क्रण क्रांत।  
पेट पांसा उर कंठ निरखतां, इंद्रावती पामे स्वांत॥२६॥

श्री श्यामा जी के अंग-अंग की सुन्दरता इतनी है कि वह देखी नहीं जा रही है। इन अंगों से निकलने वाली किरणों की ज्योति इतनी अधिक है कि वह कहीं भी समा नहीं पा रही है, अर्थात् चारों ओर फैली हुयी है। श्री श्यामा जी के पेट, पसलियों, हृदय, तथा गले की अलौकिक शोभा को देखकर, मेरे (श्री इन्द्रावती जी के) हृदय को बहुत अधिक शान्ति मिल रही है।

**भावार्थ-** सौन्दर्य को न देख पाने का आशय यह है कि श्री श्यामा जी का सौन्दर्य उस अथाह सागर के समान

है, जिसको पूर्ण रूप से देख पाना (आत्मसात् कर पाना) सम्भव नहीं है।

उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण में, श्री श्यामा जी के श्रृंगार को देखकर श्री इन्द्रावती जी के हृदय को शान्ति मिलने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक ब्रह्मात्मा का लक्ष्य युगल स्वरूप की शोभा को आत्मसात् करना होता है। जब तक अन्तर्दृष्टि खोलकर उस शोभा को जी भरकर देख नहीं लिया जाता, तब तक हृदय में विरह की ज्वाला धधकती ही रहती है।

अंगनो रंग अजवास धरे, तिहां स्याम चोली सोभावे।

सुंदर सर्वे सिणगार सोहावे, तिहां लेहेर भूखण क्रण आवे॥२७॥

श्री श्यामा जी के अति सुन्दर गोरे रंग पर हल्के काले रंग की चोली बहुत अधिक मनोहर लग रही है। श्री

श्यामा जी का सम्पूर्ण श्रृंगार बहुत ही आकर्षक लग रहा है। उनके आभूषणों से उठने वाली किरणें चारों ओर लहरा रही हैं।

**भावार्थ-** रास का जो यह श्रृंगार वर्णित है, वह राजस्थान, सिन्ध, तथा काठियावाड़ में प्रचलित श्रृंगार के आधार पर है। यह सर्वविदित है कि श्री मिहिरराज जी का जन्म काठियावाड़ (नवतनपुरी) में हुआ था तथा उनका ननिहाल सिन्ध में पड़ता था। इन प्रान्तों की वेशभूषा श्री मिहिरराज जी के मन में बसी हुयी थी। इसलिये उनके भावों के अनुकूल ही रास तथा परमधाम का श्रृंगार अवतरित हुआ।

यद्यपि अक्षरातीत के युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार को किसी बन्धन विशेष में नहीं बाँधा जा सकता , किन्तु हमारी मानवीय बुद्धि के द्वारा ग्राह्य होने के लिये धाम

धनी ने श्री मिहिरराज जी के भावों के अनुकूल अपनी शोभा-श्रृंगार को स्थान विशेष की सीमा में बद्ध कर दिया।

यही कारण है कि रास तथा परमधाम के श्रृंगार में राजस्थानी, काठियावाड़ी, तथा सिन्धी वेशभूषा की छाप मिलती है। इस प्रकार काठियावाड़ के श्रृंगार में चोली और कँचुकी (ब्लाउज) एक ही हैं। यद्यपि वर्तमान समय में चोली पहले पहनी जाती है और ब्लाउज उसके बाद पहना जाता है।

इस प्रकरण में चौपाई २५, ३० तथा ३५ में "कंचुकी" शब्द का प्रयोग हुआ है, और चौपाई २७ तथा २८ में "चोली" शब्द का प्रयोग हुआ है। काठियावाड़ी श्रृंगार की मान्यता के अनुसार इन्हें एक ही मानना चाहिये।



कसकसती चोली ने कठण पयोधर, पीला खडपा सोभंत।

कस ठामे जे कांगरी, तिहां नीला जवेर झलकंत॥२८॥

कठिन स्तनों को ढँककर कसी हुयी (चुस्त) चोली आयी है। चोली के पीले खड़पे बहुत अधिक सुन्दर लग रहे हैं। चोली से तनी (कस) का जहाँ जड़ाव है, वहाँ काँगरी की सुन्दर शोभा दृष्टिगोचर हो रही है और उस काँगरी में नीले रंग के जवाहरात झलकार कर रहे हैं।

**भावार्थ-** कठोर स्तन किशोर अवस्था एवं सौन्दर्य के प्रतिमान हैं। स्तन के जिस भाग से बालक माँ का दूध पीता है, उसे चुंचुक कहते हैं। उसके ऊपर चोली का जो कुछ ढीला हिस्सा आता है, उसे चोली की कली या खड़पा कहते हैं।

गुजराती भाषा में "हरे" रंग के लिये "लीला" शब्द प्रयोग होता है। हिन्दी के "नीले" शब्द के लिये गुजराती

में "नीला" ही प्रयोग होता है। यह बात इसी प्रकरण की १५वीं चौपाई के चौथे चरण (नीला ते पाच रतन) में देखी जा सकती है, जिसमें हरे रंग के लिये "पाच" शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त श्रृंगार ग्रन्थ के इस कथन से भी यह बात स्पष्ट होती है—

नीला रंग इजार का, मिंही चूड़ी घूटी ऊपर।

तिन पर झलके दावन, हरी झांई आवत नजर॥

श्रृंगार १७/१४

भरत भली पेरे सोभित, कांई पचरंग चुन्नी सार।

अनेक विध ना फूल वेल, खुसबोए तणा वेहेकार॥२९॥

चोली में कसीदाकारी बहुत ही सुन्दर लग रही है। उसमें पाँच रंगों वाले नगों के छोटे-छोटे टुकड़ों से अनेक प्रकार के फूलों और लताओं के चित्र बने हैं, जिनसे

अति मनभावन सुगन्धि आया करती है।

कंचुकी जड़ाव छे जुगत जुजवी, ऊपर आभ्रण भली भांत।

सुंदर सरूप जोई जोईने, मारो जीव थाय निरांत॥३०॥

ब्लाउज (चोली) में नगों का जड़ाव कुछ विशेष प्रकार की अलग ही शोभा लिये हुए हैं। इसके ऊपर बहुत अच्छी तरह से आभ्रण की शोभा आयी है। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि ऐसे सुन्दर स्वरूप को देख-देखकर मेरे जीव को आनन्द मिलता है।

**भावार्थ-** आभ्रण एक प्रकार का श्रृंगार है, जो प्रायः काठियावाड़ क्षेत्र में चोली आदि के ऊपर किया जाता है। इसमें दर्पण (शीशे) के गोल-गोल छोटे टुकड़ों को चोली में इस प्रकार सिल दिया जाता है कि वे एक आभूषण की तरह दिखने लगते हैं और उसमें मुख आदि का सारा

प्रतिबिम्ब झलका करता है।

कंठ केणी पेरे वरणबुं, मारा जीवने नथी कांई बल।

पांच हार तिहां प्रगट दीसे, सोभित दोरे वल॥३१॥

श्री श्यामा जी के गले की मनोरम शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ? इस छवि का वर्णन करने के लिये मेरे जीव में नाम-मात्र का भी बल नहीं है। उनके गले में पाँच हार प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर हो रहे हैं। ये सभी हार डोरियों में गुथे हुए हैं और गले से लटकते हुये शोभायमान हो रहे हैं।

एक हार हीरा तणो, बीजो पाच वरण रतन।

त्रीजो हार मोती निरमलनो, कांई चौथो हेम कंचन॥३२॥

पहला हार हीरे का है। दूसरा हार पाच (हरे रंग के

रत्न) का है, और तीसरा हार अति स्वच्छ दिखायी देने वाले मोतियों का है। इसके अतिरिक्त चौथा हार सोने का, और पाँचवा हार अत्यधिक लालिमा लिये हुये कञ्चन (शुद्ध स्वर्ण) का है।

हेम तणो हार जुई रे जुगत नो, नवसर नव पाटली।

जडाव हीरा पाच रतन मोती, मांहेँ माणक ने नीलवी॥३३॥

हे साथ जी! सोने के इस चौथे हार की बनावट को ध्यानपूर्वक देखिये। इसमें नौ लड़ियाँ हैं तथा नौ पटलियाँ हैं। इनमें हीरा, पाच, मोती, माणिक, एवं नीलम के नग जड़े हैं।

उतरी त्रण सर सोभंती, कांई दोरो जडित अचंभ।

हूं केणी पेरे वरणवुं, मारी जिभ्या आणे अंग॥३४॥

सबसे नीचे पाँचवा हार जो कञ्चन का आया है, उसमें तीन लड़ियाँ शोभायमान हो रही हैं। अति सुन्दर डोरी में यह हार इस प्रकार जड़ा हुआ है कि उसकी मनोहारिता को देखकर आश्चर्य होता है। इस नश्वर शरीर की अपनी जिह्वा (वाणी) से इस हार की सुन्दरता का वर्णन मैं कैसे करूँ?

**कंचुकीना कांठला ऊपर कोरे, कांई दोरे तेज अपार।**

**सात रंगना नंग पाधरा, जोत करे झलकार॥३५॥**

ब्लाउज के गले की किनार पर बहुत सी धारियाँ आयी हैं, जिनमें अनन्त तेज जगमगा रहा है। इन धारियों में सात रंगों की ज्योति वाले नग स्पष्ट रूप से जड़े हुये हैं, जो झलझला रहे हैं।

मांहें मोती माणक हीरा, पाना ने पुखराज जी।

कुन्दन मांहें रतन नंग झलके, रमवा सुंदरी करे साज जी॥३६॥

इन धारियों में मोती, माणिक, हीरा, पन्ना, पुखराज, आदि रत्नों के नग सोने के साथ जड़े हुये झलकार कर रहे हैं। अपने प्राणवल्लभ के साथ रास खेलने के लिये श्री श्यामा जी ने इस प्रकार का अलौकिक श्रृंगार किया हुआ है।

कांठले माणक ने वली मोती, कुन्दन मांहें पाना नंग।

चीड तणी चारे सर सोभें, कोई धात वसेकना रंग॥३७॥

श्री श्यामा जी के गले में छठा हार चीड़ का है, जिसकी चार लड़ियाँ शोभायमान हो रही हैं। यह कोई विशेष रंग वाली धातु का ही बना हुआ प्रतीत होता है। इसमें माणिक, मोती, और पन्ना के नग सोने के साथ जड़े हुये

झलकार कर रहे हैं।

ए ऊपर वली निरखी ने जोड़िए, तो कंठसरी भली गई अंग।

कंठसरी केरी कली जुजवी, काँई जुजवा छे तेहेना नंग॥३८॥

यदि इस चीड़ के हार के ऊपर देखें, तो गले से चिपका हुआ कण्ठसरी का हार दिखायी देता है। इस कण्ठसरी के हार की अलग-अलग कलियाँ आयी हैं, जिनमें तरह-तरह के सुन्दर नग जड़े हुये हैं।

कंठसरी जडाव जुगतनी, मांहेँ राती नीली जवेरो नी हार।

सकल सिणगार स्यामाजीने सोभे, कुन्दन मां मोती झलकार॥३९॥

कण्ठसरी के हार की बनावट इस प्रकार की है, जिसमें जड़े हुये लाल तथा नीले रंग के जवाहरातों की हारें आयी हैं। सोने के तारों में गुँथे हुए मोती झलकार कर रहे



हैं। इस प्रकार के अपने अलौकिक सम्पूर्ण श्रृंगार के साथ श्री श्यामा जी सुशोभित हो रही हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि रास में श्री श्यामा जी के सात हार हैं। इसी प्रकार परमधाम में भी श्री श्यामा जी के दोनों श्रृंगारों में सात हार आये हैं।

अन्तर केवल इतना ही है कि श्री श्यामा जी के पहले श्रृंगार में नीचे से ऊपर के प्रथम पाँच हारों में पहला मोती, दूसरा माणिक, तीसरा लहसुनिया, चौथा हीरा, और पाँचवा नीलम का आया है। इसके ऊपर सोने का बना हुआ चम्पकली का हार है तथा सातवाँ हार पाँच लड़ियों वाला चीड़ का हार है, जो कण्ठसरी कहलाता है।

श्री श्यामा जी के दूसरे श्रृंगार में पहला हीरा, दूसरा माणिक, तीसरा मोती, चौथा लहसुनिया, और पाँचवा

नीलम का हार आया है। इन पाँच हारों के ऊपर चार लड़ियों वाला चीड़ का हार आया है। चीड़ के हार के ऊपर सातवाँ हार कण्ठसरी का आया है।

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि श्री श्यामा जी के पहले श्रृंगार में चम्पकली का हार छठा तथा चीड़ का हार सातवाँ है। दूसरे श्रृंगार में चम्पकली का हार नहीं है, बल्कि चीड़ का छठवाँ हार है और कण्ठसरी का सातवाँ हार है।

**नख थकी कर वरणबुं, एह जुगत अति सारजी।**

**आंगलियो अंगूठा कोमल, नख हीरा तणा झलकार जी॥४०॥**

अब मैं नख से लेकर सम्पूर्ण हाथ तक का वर्णन कर रही हूँ। यह शोभा अति मनोहर है। अँगुलियों के अतिरिक्त अँगूठा अधिक कोमल है। नाखून हीरे के समान झलकार

कर रहे हैं।

झीणी रेखा हथेलिए दीसे, पोहोंचा सोभित पतंग जी।

आंगलिए वीसा वीस दीसे, कोमल कलाई अति रंग जी॥४१॥

दोनों हथेलियों की बहुत ही पतली रेखाएँ दिखायी पड़ रही हैं। पञ्जा (पहुँचा) लाल रंग की शोभा लिये हुए है। प्रत्येक हाथ की पाँच-पाँच अँगुलियों में बीस-बीस पोरियाँ दिखायी पड़ रही हैं। कलाई बहुत ही कोमल और सुन्दर रंग की है।

वीटी जडाव छे छ आंगलिए, सातमी अंगूठी अति सार जी।

आभलियोने फरतां पाना, दरपण मां मुख झलकार॥४२॥

श्री श्यामा जी की छः अँगुलियों में जवाहरातों से जड़ी हुई अँगूठियाँ हैं। सातवीं अँगूठी बहुत अधिक सुन्दर है।

इसमें आये हुये शीशे के चारों ओर पन्ना के नग जड़े हैं। यह शीशा दर्पण का कार्य करता है, जिसमें श्री श्यामा जी का मुख झलकता रहता है।

**बे वीटी ने हीरा मोती, बीजी बे रंग बे रतन।**

**पांच रंगनी पाच एकने, एकने करडा कंचन॥४३॥**

दो अँगूठियाँ हीरे और मोती की हैं, तथा दो अँगूठियाँ दो अलग-अलग रंग वाले रत्नों की हैं। एक अँगूठी पाच (हरे रंग के जवाहरात) की है। इस प्रकार पाँच रंगों की ये अँगूठियाँ हुई। एक अँगूठी कञ्चन की है, तथा सातवीं अँगूठी दर्पण जड़ित है जिसमें श्री श्यामा जी अपना श्रृंगार देखती हैं।

**पोहोंची ने नवघरी दीसे, ऊपर ऊंचा नंग।**

**माणक मोती पाना कुन्दन, ए सोभे पोहोंची ना नंग॥४४॥**

श्री श्यामा जी की कलाइयों में पहुँची और नवघरी दिखायी दे रही हैं। नगों से जड़ित नवघरी पहुँची से ऊपर कोहनी की दिशा में ऊँचाई पर आयी हुयी है। पहुँची में माणिक, मोती, तथा पन्ना के नग सोने के साथ जड़े हुए शोभायमान हो रहे हैं।

**नवघरी ने निरमल मोती, हीरा ने रतन।**

**कुन्दन मांहे पाना पुखराज, चूड मांहे नव रंग॥४५॥**

नवघरी में अति सुन्दर मोती, हीरा, पन्ना, पुखराज, आदि के रत्न सोने में जड़े हुए हैं। इसी प्रकार चूड़ में नौ रंगों की शोभा आयी है।

**भावार्थ—** नवघरी की तरह कलाई में पहना जाने वाला

नवचूड़ भी एक आभूषण है, जिसमें नौ चूड़ियाँ जड़ी होती हैं।

नव रंगना नंग जुजवा, तेहेना ते जुजवा रूप।

हूं मारी बुध सारुं वरणवुं, पण एह छे अदभूत॥४६॥

नौ रंगों की चूड़ियों में अलग-अलग रूपों वाले अलग-अलग (अनेक प्रकार) नंग जड़े हुए हैं। अपनी अल्प बुद्धि से मैं उचित वर्णन ही कर रही हूँ, किन्तु यह शोभा इतनी अद्भुत है कि इसका यथार्थ वर्णन हो ही नहीं सकता।

नीलवी ने लसणियां सोभित, पाना ने वली लाल।

माणक मोती ने हीरा कुन्दन, मांहेँ रतन तणां झलकार॥४७॥

नवचूड़ में नीलम, लहसुनिया, पन्ना, लाल, माणिक, मोती, तथा हीरा आदि रत्न सोने के साथ जड़े हुए हैं

और झलकार करते हुये अति सुन्दर शोभा को धारण कर रहे हैं।

कोणी आगल कांकणी, जांबू रंग नंग जडाव।

कुन्दन ना करकरियां सोभे, जोत करे अपार॥४८॥

कोहनी से पहले कलाई के ऊपरी भाग में कँकनी की शोभा आयी है, जिसमें जामुनी रंग के सुन्दर-सुन्दर नग जड़े हैं। सोने में नगों के अति छोटे-छोटे बारीक टुकड़े (रवे) जड़े हुए हैं, जिनकी अपार ज्योति हो रही है।

मोहोलिए मोती ने वली कांगरी, नीली राती चुन्नी कुन्दन।

वेल मांहेँ हीरा हार दीसे, इंद्रावती जुए द्रढ मन॥४९॥

कँकनी के मुख पर काँगरी की शोभा आयी है, जिसमें मोती जड़े हुए हैं। नीले तथा लाल रंग के जवाहरातों के

अति छोटे-छोटे टुकड़े शुद्ध स्वर्ण में जड़े हुए शोभायमान हो रहे हैं। काँगरी में आयी हुई बेलों में हीरों की हार दिखायी दे रही है। इस अलौकिक शोभा को मैं (इन्द्रावती) बहुत ध्यानपूर्वक देख रही हूँ।

**सुंदरने सोभे एक जुगते, झण बाजे रसाल।**

**चूड केरा छापा अति सोभे, उर पर लटके माल॥५०॥**

पहुँची, नवघरी, नवचूड़, तथा कँकनी, आदि सभी आभूषण एक समान सुन्दर शोभा से युक्त हैं। इनसे झन-झन की अति मीठी ध्वनि निकला करती है। नवचूड़ के ऊपर आये हुये चित्र बहुत ही सुन्दर शोभा को धारण किये हुए हैं। श्री श्यामा जी के हृदय कमल पर अति सुन्दर माला दृष्टिगोचर हो रही है।



गाल तणो रंग कह्यो न जाय, अधुर परवाली नी भांत।

दंत सोभे रंग दाडिम नी कलियो, हखटी अधुर वचे लांक॥५१॥

श्री श्यामा जी के लालिमा से भरपूर गोरे गालों का रंग इतना सुन्दर है कि उसका वर्णन हो ही नहीं सकता। उनके दोनों होंठ प्रवाल की तरह लालिमा से भरपूर दिख रहे हैं। अनार के दानों की तरह दाँतों की सुन्दर शोभा आयी है। ठुड्डी तथा होठों के बीच की गहराई का भाग बहुत ही सुन्दर दिखायी दे रहा है।

**भावार्थ-** जिस प्रकार अनार के दाने आपस में सटे होते हैं तथा उनमें लालिमा एवं सफेदी का मिश्रण होता है, उसी प्रकार लालिमा मिश्रित सफेदी लिये दाँत अति लाल रंग के मसूड़े में जड़े हुए हैं। मानवीय बुद्धि के लिये ग्राह्य बनाने हेतु श्यामा जी के दाँतों की उपमा अनार से तथा होठों की उपमा प्रवाल से की गयी है।

मुख चौक सोभित अति मांडनी, अने झलके काने झाल।

जडाव माणक मोती ने हीरा, कुन्दन मां पाना लाल॥५२॥

श्री श्यामा जी का मुखारविन्द बहुत ही सुन्दर दिखायी दे रहा है। उनके दोनों कानों में सुन्दर झुमकियाँ झलकार कर रही हैं। इन झुमकियों में माणिक, मोती, हीरा, पन्ना, तथा लाल के अति सुन्दर नग शुद्ध सोने के साथ जड़े हुए हैं।

**भावार्थ—** ठुड़ी तथा ललाट, एवं दोनों कानों के बीच से गुजरने वाली रेखाएँ, जिस बिन्दु पर मिलती हैं वह चौक कहलाता है। इनके बीच का सम्पूर्ण भाग मुखारविन्द कहलाता है।

नासिका बेसर लाल मोती लटके, आंखडिए अंजन सोहे।

पापण चलवे ने पीउजी ने पेखे, चतुराईए मन मोहे॥५३॥

श्री श्यामा जी की नासिका में अति सुन्दर बेसर दिखायी दे रहा है, जिसमें लाल दिखने वाला मोती का नग शोभायमान हो रहा है। आँखों में हल्का अञ्जन भी दृष्टिगोचर हो रहा है। श्री श्यामा जी प्रेम भरी चतुराई से अपने नेत्रों की पलकों के संकेत से प्रियतम को इस प्रकार देखती हैं कि उनके मन को मुग्ध कर लेती हैं।

**भावार्थ-** मोती का रंग श्वेत होता है। ऐसी अवस्था में "लाल मोती" का आशय यही हो सकता है कि श्री श्यामा जी के होंठों की लालिमा से श्वेत रंग का मोती लाल दिखायी देने लगता है।

नेणा चपल अति अणियाला, ने रेखा सोभे मांहें लाल।

बेहुगमा भ्रकुटीनी सोभा, टीलडी ते मध्य गुलाल॥५४॥

श्री श्यामा जी के नेत्र चपल और अत्यन्त नुकीले हैं।

दोनों नेत्रों में लाल -लाल रेखाएँ सुशोभित हो रही हैं। दोनों भौहों के बीच में लाल रंग की बिन्दी बहुत ही सुन्दर लग रही है।

**भावार्थ-** चपल और नुकीले नेत्र, प्रेम और सौन्दर्य के प्रतिमान रूप माने जाते हैं। प्रेम के आदान-प्रदान के लिये हमेशा उत्सुक रहने के कारण, श्री श्यामा जी के नेत्रों को चपल कहा गया है। आलस्य, प्रमाद, तथा नींद से भरे नेत्र सदैव सुस्त रहते हैं।

मारा साथ सुणो एक वातडी, आ सरूप ते केम वरणवाय।  
 एक भूखण तणी जो भांत तमे जुओ, तो आणे देह जीव न खमाय॥५५॥  
 मेरे प्राणधार जी! मेरी एक बात सुनिये। श्री श्यामा जी के इस अलौकिक स्वरूप की शोभा का मैं क्या वर्णन कर सकती हूँ? यदि आप एक आभूषण की शोभा को भी

देख लें, तो आपके नश्वर शरीर में रहने वाला जीव इसे सहन नहीं कर सकेगा।

**भावार्थ-** मोहसागर में प्रगट होने वाले जिस जीव ने बेहद या परमधाम के अनुपम सौन्दर्य, प्रेम, और आनन्द के बारे में कुछ सुना ही नहीं होता, तो यह कैसे सम्भव है कि वह उसका प्रत्यक्ष अनुभव कर सके ? यह स्थिति ऐसी ही है, जैसे किसी बैलगाड़ी पर मालगाड़ी का सारा बोझ डालने का प्रयास करना।

यदि यह कहा जाये कि बेहद या परमधाम के अलौकिक प्रेम और आनन्द का अनुभव तो जीव की अन्तर्दृष्टि से होता है, बाह्य चक्षुओं या अन्य इन्द्रियों से नहीं, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि जीव उस सुख का अनुभव नहीं कर सकता ?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि अपनी

अन्तर्दृष्टि को खोलने के लिये तारतम ज्ञान के प्रकाश में आत्म-भाव लेकर स्वयं को विरह की अग्नि में जलाना ही पड़ेगा। इस अवस्था को प्राप्त हुये बिना जीव के चित्त में सञ्चित जन्म-जन्मान्तरों के वैकारिक संस्कारों का कभी भी क्षय नहीं हो सकता। और इस लक्ष्य को पाये बिना न तो हृदय में कभी निर्मलता आ सकती है और न ही प्रेम की रसधारा बह सकती है।

बेहद या परमधाम के अनुभव के लिये समर्पण, विरह, और प्रेम अनिवार्य है। इसकी कमी से ही राजा भावसिंह बेहद मण्डल का सुख न ले सके और धैर्य न रख सके। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका देहान्त हो गया। धनी की कृपा से विरह, प्रेम, और समर्पण में परिपक्व होकर, जीव भी, बेहद या परमधाम का अंशमात्र रसपान कर सकता है। किन्तु यह अवस्था किसी विरले ही जीव

को प्राप्त होती है। यही कारण है कि उपरोक्त चौपाई में जीव के द्वारा बेहद मण्डल के सुख को सहन न करने योग्य बताया गया है।

यह विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य है कि महारास के इस वर्णन को श्री इन्द्रावती जी का जीव कुछ अंशों तक सहन कर पा रहा है। तभी तो शब्द रूप में महारास का वर्णन अवतरित हो पा रहा है। अन्यथा जोश-आवेश द्वारा महारास या परमधाम का ज्ञान हो जाने पर भी, उसे व्यक्त कर पाना या सहन कर पाना, सामान्य जीव के लिये सम्भव नहीं होता है।

एक बेसर ऊपर लालज दीसे, ते लालक नो न लाभे पार।

जेटला मांहेँ मीट फरी वले, एटले दीसे झलकार॥५६॥

एक बेसर में जो लालिमा दिखायी दे रही है, उसकी

सीमा का कोई भी आँकलन नहीं कर सकता। जहाँ तक दृष्टि जाती है, वहाँ तक लालिमा की ही शोभा दिखायी देती है।

**खीटलडी जडाव भली पेरे, माहें लाल हीरा सुचंग।**

**माणक मोती नीला पाना, माहें पांच वानि ना नंग॥५७॥**

नाक में आयी हुयी खूँटी का आभूषण बहुत ही सुन्दर दिख रहा है। इसमें लाल बहुत ही उत्तम तरीके से जड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें पाँच प्रकार - हीरा, माणिक, मोती, नीलम, और पन्ना - के नग भी जड़े हुए हैं।

**भावार्थ-** बेसर की तरह ही खूँटी नाक में पहना जाने वाला एक आभूषण होता है। इसे कोका, कील, पुँगरिया, तथा जड़ आदि भी कहते हैं। लाल और माणिक में सूक्ष्म



अन्तर होता है। यद्यपि दोनों का रंग लाल ही होता है, किन्तु माणिक हल्का लाल होता है, जबकि लाल गहरे लाल रंग का होता है।

**करण लवने जे सोभा धरे, ऊपर साड़ी नी कोरे।**

**सणगटडा मांहेँ पिउजीने पेखे, आडी द्रष्टेँ हेरे॥५८॥**

श्री श्यामा जी की साड़ी का किनारा आँख और कान के बीच के स्थान से होकर आया है, जो बहुत ही सुन्दर लगता है। श्री श्यामा जी घूँघट की ओर से अपने प्राणवल्लभ को प्रेममयी तिरछी दृष्टि से देखा करती हैं।

**भावार्थ—** आँख और कान के बीच के स्थान को "लवने" कहते हैं। घूँघट निकालने के लिये साड़ी का किनारा वहीं से होकर गुजरता है। इसी प्रकार, श्री राज जी के घुँघराले बाल इसी लवने नामक स्थान से होकर

आये हैं। इस सन्दर्भ में सागर ग्रन्थ में कहा गया है—

लवने केस कानों पर, तिन केसों का जो नूर।

आसमान जिमी के बीच में, जोत भराए रही जहूर॥

सागर ५/३९

निलवट वेणा चोकडो, पांच मोती तिहां सोभे।

लाल पाच कुंदन मांहे सोभित, जोई जोईने जीव थोभे॥५९॥

माथे पर चौकोर बेंदा आया है, जिसमें पाँच मोती जगमगा रहे हैं। इसके अतिरिक्त लाल और पाच के नग भी सोने के साथ बेंदे में जड़े हुए शोभायमान हो रहे हैं। इस अनुपम छवि को देखकर बार-बार मेरा जीव मुग्ध हो रहा है।

पटली सामी छ फूली सोभे, मध्य सेंदुरनी रेखे।

बेहू गमा मोती सर सोभे, इंद्रावती खांत करी पेखे॥६०॥

श्री श्यामा जी के माथे पर जो पट्टी आयी है, उसमें छः फूलों की शोभा दृष्टिगोचर हो रही है। माँग में सिन्दूर की अति सुन्दर पतली-सी रेखा दिखायी दे रही है। माँग के दोनों ओर मोतियों की लड़ियाँ शोभायमान हो रही हैं। इन्हें श्री इंद्रावती जी बहुत चाहत के साथ देख रही हैं।

चार फूली ते फरती दीसे, बे फूली अणियाली।

मध्य लाल मोती फरतां पाना, ए जुगत क्याहें न भाली॥६१॥

पटली के छः फूलों में से चार फूल गोल आकृति वाले हैं और दो फूल नोकदार हैं। इन फूलों के मध्य में लाल और मोती आये हैं, तथा इनके चारों ओर घेरकर पन्ना के नग सुशोभित हो रहे हैं। ऐसी अद्वितीय शोभा कहीं भी

दिखायी नहीं पड़ती है।

राखडली मां रतन नंग झलके, हीरा पाना बेहू भांत।

माणक मोती फरतां दीसे, वेण चुए गुंथी अख्यात॥६२॥

श्री श्यामा जी की माँग के मध्य में गोलाकृति लिये हुए राखड़ी की शोभा आयी है, जिसमें हीरा, पन्ना, आदि अनेक प्रकार के रत्नों के नग झलकार कर रहे हैं। माणिक और मोती के नग चारों ओर घेरकर आये हैं। बालों की चोटी सुगन्धित तेल में गुंथी हुयी है।

पांच रंगना पांचे फुमक, सोहे मूल वेणनें बंध।

गोफणडे फुमक जे दीसे, तेहेनो स्याम कसवी रंग॥६३॥

चोटी में पाँच रंगों के पाँच फुम्मक शोभायमान हो रहे हैं, जो चोटी के मूल में बँधे हैं। चोटी के नीचे का भाग

गोफनड़ा (फुँदरिया) कहलाता है। इसमें काले और लाल रंग के फुम्मक दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

गोफण्डे घूँघरडी फरती, अने बोलंती रसाल।

फरता पाना दोरी बंध सोभे, वेण लेहेके जेम व्याल॥६४॥

गोफनड़ों में घेरकर घुँघरियाँ आयी हैं। ये बहुत ही मधुर ध्वनि करती रहती हैं। घुँघरी में पन्ना के नग गोलाई में पँक्तिबद्ध होकर आये हैं। चोटी सर्पणी की तरह लहराती रहती है।

मुख मांहे बीडी तंबोलनी, मंद मरकलडो सोभे।

इंद्रावती नेंणेसूं निरखे, अति घणूं करीने लोभे॥६५॥

श्री श्यामा जी के मुख में पानों का बीड़ा है। वे मन्द – मन्द मुस्कुराती हुई बहुत ही सुन्दर लग रही हैं। श्री

इन्द्रावती जी अपनी अन्तर्दृष्टि के द्वारा, बहुत अधिक प्रेम भरकर, इस अनुपम छवि को बार-बार देखने का लोभ नहीं छोड़ पा रही हैं।

**भावार्थ-** यद्यपि इस चौपाई के चौथे चरण में श्री श्यामा जी के बार-बार दर्शन को लोभ की संज्ञा दी गयी है, किन्तु इस प्रकार का कथन प्रेम भरे हास्य-व्यंग्य के रूप में किया जा रहा है। जब किसी अलौकिक शोभा से दृष्टि हटाने की इच्छा नहीं करती, तो प्रेम भरे हास्य-व्यंग्य में इसी प्रकार कहा जाता है कि इस प्रकार आप कब तक देखने की इच्छा (लोभ) में लगे रहेंगे?

मुखडूँ निहाले अँगूठीमां, सोभा धरे सर्वा अंग।

सणगटडो सिणगार सोभावे, श्री कृष्णजी केरी अरधंग॥६६॥

श्री कृष्ण जी की अर्धांगिनी अपनी अँगूठी में अपने

मुखारविन्द की शोभा को देखा करती हैं। उनके अंग-अंग में अलौकिक कान्ति दृष्टिगोचर हो रही है। घूँघट के साथ उनका मधुर सौन्दर्य बहुत ही अधिक शोभायमान हो रहा है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में श्री कृष्ण जी की अर्धांगिनी कहने से यह संशय होता है कि क्या श्री श्यामा जी श्री कृष्ण जी की अर्धांगिनी हैं? क्योंकि इस प्रकरण का शीर्षक ही श्री श्यामा जी के श्रृंगार के रूप में है, जिसकी पहली चौपाई में कहा गया है- "शोभा श्रृंगार श्यामा जी नो निरखूं जी।" इसी प्रकार ७०वीं चौपाई में कहा गया है- "वली श्यामा ते आव्या साख्यात।"

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि ब्रज में अक्षरातीत ने श्री कृष्ण जी के नाम से ही लीला की। इसलिये रास के समय में भी यह नाम यहाँ प्रयुक्त किया

गया है। तन का नाम मात्र कालमाया के ब्रह्माण्ड में ही सम्भव है, क्योंकि यहाँ प्रत्येक कार्य शब्द के आधार पर होता है। बेहद मण्डल और परमधाम शब्द की सीमा से परे हैं। इसे तारतम्य वाणी के इन शब्दों में देखा जा सकता है—

बेहद को सबद न पोहोंचही, तो क्यों पोहोंचे दरबार।

लुगा न पोहोंच्या रास लों, इन पार के भी पार॥

क. हि. २४/४१

किन्तु बेहद मण्डल में होने वाली रासलीला के वर्णन में विवश होकर ब्रज के नाम को उद्धृत करना पड़ रहा है। यही कारण है कि जिस प्रकार इस चौपाई में श्री कृष्ण जी का नाम आया है, उसी तरह से प्रकरण १६ चौपाई १ में कहा गया है "सखी वृखभान नंदनी, कंठ कर कृष्ण नी"।



यह सर्वविदित है कि वृषभान नंदनी राधा जी ही हैं। यह सर्वमान्य तथ्य है कि परमधाम में मात्र श्री राज श्यामा जी और सखियाँ हैं, वहाँ पर नन्द, यशोदा, वृषभान, या प्रभावती के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में वहाँ राधा और कृष्ण जी का अस्तित्व भी नहीं हो सकता, क्योंकि ये यहाँ की लीलाओं के तनों के नाम हैं।

ऐसी अवस्था में यह प्रश्न होता है कि यदि परमधाम में राधा-कृष्ण जी नहीं हैं, तो रास के श्रृंगार में बार-बार श्यामा जी, ठकुराणी जी, राज जी, और वालाजी शब्द का प्रयोग क्यों हो रहा है?

इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है कि श्रृंगार या लीला का वर्णन हमेशा वर्तमान काल में ही होता है। वर्णन करने वाला हमेशा इसी भावना से वर्णन करता है

कि वह अपने आराध्य को प्रत्यक्ष अपने सामने देख रहा है। यही कारण है कि राधा और कृष्ण जी के स्थान पर श्री श्यामा जी एवं श्री राज जी का नाम आया है, जबकि यह बात तो सबको पता ही है कि रास खेलने के बाद श्री राज जी का आवेश ब्रह्मात्माओं के साथ परमधाम चला गया था।

कछु इन विध कियो रास, खेल फिरे घर।

खेल देखन के कारने, आइयां उमेदां कर॥

उमेदां न हुइयां पूरन, धाख मन में रही।

तब धनीजीऐं अंतरगत, हुकम कियो सही॥

प्र. हि. १/१,२

जब महारास के पश्चात् ब्रह्मात्मायें अपने निज घर पहुँच गयीं, और केवल ब्रह्म में होने वाली महारास की लीला सबलिक के महाकारण में अखण्ड हो जाती है तो उन

अखण्ड तनों को श्री राज जी या श्री श्यामा जी के रूप में नहीं माना जा सकता। किन्तु श्रृंगार या लीला का वर्णन करते समय श्री राज जी या श्री श्यामा जी ही कहा जायेगा, क्योंकि उन्होंने उस तन में लीला की है।

यदि यह कहा जाये कि श्रृंगार वर्णन में जब श्री राज जी के स्थान पर श्री कृष्ण जी का नाम आ रहा है और उनकी अर्धांगिनी को श्री श्यामा जी कहा जा रहा है, तो परमधाम में श्री कृष्ण जी का अस्तित्व क्यों नहीं सिद्ध हो सकता?

ऐसा कहना कदापि उचित नहीं है। अपने आराध्य की शोभा या लीला का वर्णन करने वाला स्वतन्त्र है कि वह स्वरूप के नाम के साथ रूप के भी नाम का प्रयोग कर सके। लीला करने वाले आवेश स्वरूप श्री राज जी हैं। ब्रज में उन्होंने जिस तन में विराजमान होकर लीला की

थी, उसका नाम श्री कृष्ण था। इसी प्रकार, रास में लीला करने वाले तन का नाम भी श्री कृष्ण था। इस तथ्य को रास ग्रन्थ की इस चौपाई से समझा जा सकता है—

रमत रास करत हांस, कान्ह मोहन वेल री।

कान्ह मोहन वेल, सखी कान्ह मोहन वेल री॥

रास ३६/१

श्री कृष्ण जी के तन में लीला करने वाले आवेश स्वरूप श्री राज जी हैं, किन्तु भावों में तन्मय होकर जब वर्णन किया जायेगा तो श्री राज जी का नाम लिया जायेगा, और जब शरीर को लक्ष्य में रखकर लीला का वर्णन किया जायेगा तो शरीर का नाम श्री कृष्ण प्रयुक्त किया जायेगा। यही स्थिति श्री श्यामा जी और वृषभान सुता श्री राधा जी के सम्बन्ध में भी माननी चाहिये।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह बात कही जा सकती है कि परमधाम में श्री राधा एवं कृष्ण जी नहीं हैं।

**मुखथी वाणी जे ओचरे, कांई ए स्वर अति रसाल।**

**एक मात्र कणका जो रुदे आवे, तो थाय फेरो सुफल संसार॥६७॥**

श्री श्यामा जी के मुखारविन्द से जो भी स्वर (शब्द) फूटते हैं, उनमें माधुर्यता का परम आनन्दमयी रस प्रवाहित होता है। यदि उसका अंशमात्र भी हमारे हृदय में आ जाये, तो इस नश्वर संसार में हमारा आना सार्थक हो जाये।

**भावार्थ—** इस चौपाई के माध्यम से सुन्दरसाथ को विशेष शिक्षा दी गयी है कि माधुर्यता हमारे जीवन का अभिन्न अंग होना चाहिये। अपने हृदय में माधुर्यता के भावों को भरे बिना आत्म-जाग्रति की कल्पना नहीं की

जा सकती।

सूच्छम सरूप ने उनमद अंगे, केणी पेरे ए वरणवाय।

मारी बुध सारुं हूं वरणवुं, इंद्रावती लागे पाय॥६८॥

श्री इन्द्रावती जी श्री श्यामा जी के चरणों में प्रणाम करके कहती हैं कि आपका स्वरूप त्रिगुणातीत है। आपके अंग-अंग में प्रेम की उमंग भरी है। ऐसी अलौकिक शोभा का वर्णन भला कैसे हो सकता है? ऐसी स्थिति में मैं तो अपनी अल्प बुद्धि से जो भी अंशमात्र वर्णन कर पा रही हूँ, उसे उचित ही कहा जा सकता है।

पांउं भरे एक भांतसूं, स्यामाजी सोभे एणी चाल।

जीव निरखीने नेत्र ठरे, इंद्रावती लिए रंग लाल॥६९॥

श्री श्यामा जी की चाल इतनी मनमोहक है कि उनके

कदम रखने के निराले ढंग को देखकर श्री इन्द्रावती जी की अन्तर्दृष्टि रुक-सी जाती है और उनका जीव भी प्रेम के आवेग में मग्न हो जाता है।

**भावार्थ-** "दृष्टि का ठहर जाना" एक मुहाविरा है, जिसका आशय यह होता है कि मन उस सौन्दर्य को देखने में मुग्ध हो गया है, जिसके कारण आँखें उसको छोड़कर कुछ और देखना ही नहीं चाहतीं। इसी प्रकार "लाल रंग का हो जाना" प्रेम के रोमाञ्च में भर जाने के सन्दर्भ में कहा जाता है।

ए सिणगार जोड़ए ज्यारे निरखी, त्यारे सूं करे मायानो पास।  
साथ सकल तमे जो जो विचारी, वली स्यामा ते आव्या साख्यात॥७०॥

श्री श्यामा जी के इस अनुपम श्रृंगार का विचार करके जो अपनी आत्मिक दृष्टि से देखते हैं, भला, माया उनका

क्या बिगाड़ सकती है? हे साथ जी! यदि आप सभी विचार करके देखें तो यह स्पष्ट होगा कि इस स्वरूप का चिन्तन करने पर ऐसा लगता है कि साक्षात् श्री श्यामा जी ही पुनः आ गयी हों।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण का आशय यह कदापि नहीं मान लेना चाहिये कि महारास में इस समय श्री श्यामा जी हैं। वस्तुतः रास मण्डल में इस समय श्री श्यामा जी द्वारा धारण किया हुआ तन है, जिसमें उन्होंने कभी साक्षात् लीला की थी। इस समय उस तन में श्री श्यामा जी की सुरता नहीं है, किन्तु उसकी शोभा में डूब जाने पर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे साक्षात् श्री श्यामा जी ही पुनः आ गयी हों।

वास्तविकता तो यह है कि श्री श्यामा जी इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान



हैं। इसे तारतम वाणी के इन कथनों से समझा जा सकता है—

यामें सुरत आई स्यामा जी की सार, मतु मेहता घर अवतार।

प्र. हि. ३७/६६

सुन्दर बाई इन फेरे, आए हैं साथ कारन जी।

भेजे धनिऐं आवेश देय के, अब न्यारे न होए एक खिन जी॥

प्र. हि. २/२

श्री धनी जी को जोस आतम दुलहिन, नूर हुकम बुध मूल वतन।

ए पाँचों मिल भई महामत, वेद कतेबों पोहोंची सरत॥

प्र. हि. ३७/१०१

सुंदर सोभा स्यामाजी केरी, निरखी निरखी ने निरखूं जी।

अंतर टालीने एक थया, इंद्रावती कहे हूं हरखूं जी॥७१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं की श्री श्यामा जी की ऐसी मनोहर शोभा को मैं निरन्तर देखते ही रहना चाहती हूँ। उनकी शोभा में डूब जाने के कारण माया का पर्दा हट गया और मैं उनसे एकरूप हो गयी, जिसके परिणाम स्वरूप अब मैं हर्षोल्लास के अथाह सागर में डूब गयी हूँ।

**प्रकरण ॥६॥ चौपाई ॥२५५॥**

## श्री साथनों सिणगार – राग धना श्री

### सुन्दरसाथ का श्रृंगार

इस प्रकरण में रास लीला खेलने वाली ब्रह्मात्माओं के श्रृंगार का वर्णन किया गया है।

जोगमाया नो देह धरीने, श्री स्यामाजी थया तैयार।

ततखिण तिहां तेणे ठामे, मारे साथे कीधो सिणगार॥१॥

बाँसुरी की आवाज सुनते ही ब्रह्मात्माओं के साथ श्री श्यामा जी ने कालमाया के ब्रह्माण्ड को छोड़ दिया और बेहद मण्डल के अन्तर्गत केवल ब्रह्म की आनन्द योगामाया के ब्रह्माण्ड में पहुँची। वहाँ उन्होंने योगमाया का अति सुन्दर नूरमयी तन धारण किया और रास लीला के लिए तैयार हो गयीं। वहाँ उसी क्षण मेरे प्रिय सुन्दरसाथ ने भी अपना श्रृंगार कर लिया।

**भावार्थ-** अक्षर की बुद्धि के स्वरूप "केवल ब्रह्म" आनन्द स्वरूप हैं। इसलिये इनकी आह्लादिनी शक्ति को आनन्द योगमाया का ब्रह्माण्ड कह दिया गया है। यहाँ प्रेम और आनन्द की लीला सम्पादित होती है, इसलिये इसको रस स्वरूप कहते हैं।

इसी प्रकार, अक्षर के अहं के स्वरूप "सत्स्वरूप" में सत्, चिद्, और आनन्द तीनों ही प्रतिबिम्बित होते हैं।

अक्षर के चित्त स्वरूप को "सबलिक ब्रह्म" कहते हैं। इनकी आह्लादिनी शक्ति चिद् रूप माया कहलाती है, इसमें चित् की प्रधानता है।

अक्षर का मन रूप "अव्याकृत ब्रह्म" है, जिसकी आह्लादिनी शक्ति सद्रूप माया है।

सोभा सागर साथ तणी, सखी केणी पेरे ए वरणवाय।

हूं रे अबूझ कांई घणूं नव लहूं, एनो निरमाण केम करी थाय॥२॥

हे साथ जी! रास में ब्रह्मात्माओं की शोभा एक सागर के समान है। भला मैं उसका कैसे वर्णन कर सकती हूँ? मैं तो अल्प बुद्धि वाली नादान हूँ। वहाँ की शोभा को ज्यादा आत्मसात् नहीं कर सकती, इसलिये सुन्दरसाथ की सम्पूर्ण शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव ही नहीं है।

**भावार्थ—** यद्यपि रास का वर्णन अक्षरातीत के जोश-आवेश द्वारा हो रहा है, किन्तु श्री इन्द्रावती जी के नाम से कहलाया जा रहा है। इतना होते हुए भी स्वयं को अबूझ (नादान) कहना यही शिक्षा देता है कि परमधाम, युगल स्वरूप, तथा ब्रह्मात्माओं की शोभा के वर्णन में कभी अहंकार की ग्रन्थि का पोषण नहीं करना चाहिये। वस्तुतः शोभा-श्रृंगार का रस तो उन्हें ही प्राप्त हो सकता

है, जिन्होंने श्रद्धा और समर्पण की भट्टी में स्वयं को झोंक दिया होता है। शुष्क शब्दजाल के तीरों का बोझ ढोने वाले, इस अलौकिक रस से वंचित रह जाते हैं।

**कोटान कोट जाणे सूरज उदया, ब्रह्मांड न माय झलकार।**

**प्रघल पूर जाणे सायर उलट्यो, एक रस थई सर्वे नार॥३॥**

सखियों की शोभा को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे करोड़ों सूर्य उग आये हैं और उनका तेज इस योगमाया के ब्रह्माण्ड में इतना झलकार कर रहा है कि वह समा नहीं पा रहा है। सभी सखियों की शोभा एक समान है। उनकी शोभा को देखकर ऐसा लग रहा है, जैसे सौन्दर्य का सागर अपनी अनन्त लहरों के साथ क्रीड़ा कर रहा हो।

एक नखतणी जो जोत तमे जुओ, तेमां कई ने सूरज ढंपाए।  
 केम करी सोभा वरणवुं रे सखियो, मारो सब्द न पोहोंचे त्याहें॥४॥

हे साथ जी! यदि आप उन सखियों के एक नख की भी ज्योति को देखें, तो उसके समक्ष इस नश्वर जगत के अनेकों सूर्य फीके पड़ जाते हैं। ऐसी अवस्था में उनकी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूं? इस नश्वर जगत के शब्दों में वहाँ की यथार्थ शोभा का वर्णन करने का सामर्थ्य ही नहीं है।

वली गुण जो जो तमे नखतणां, हूं तेहनो ते कहूं विचार।  
 सूरज दृष्टें तापज थाय, आणे अंग उपजे करार॥५॥

पुनः यदि आप नखों की ज्योति के गुणों के सम्बन्ध में देखें, तो उनके विषय में मैं अपने विचार प्रकट कर रही हूँ। सूर्य को देखने पर तो उसकी उष्णता से कष्ट होता

है, किन्तु सखियों के नखों के तेज को देखने पर आनन्द आता है।

साथतणी रे साडियो ज्यारे जोइए, तेमां रंग दीसे अपार।  
 अनेक विधना जवेरज दीसे, करे ते अति झलकार॥६॥  
 यदि सखियों की साड़ियों को देखा जाये , तो उनमें अनन्त प्रकार के रंग दिखाई देते हैं। इन साड़ियों में अनेक प्रकार के जवाहरात जड़े हैं, जो बहुत अधिक झलकार कर रहे हैं।

तेवा सरूप ने तेवा भूखण, तेज तणा अंबार।  
 ए अजवालूं ज्यारे जीव जुए, त्यारे सूं करे संसार॥७॥  
 जैसे सखियों का स्वरूप अति सुन्दर, त्रिगुणातीत, एवं नूरमयी है, उसी तरह से उनके आभूषण भी हैं। ऐसा



लगता है, जैसे अपार तेजोराशि झलकार कर रही है। इस तेजोमयी शोभा को यदि जीव देखे तो यह नश्वर संसार भला उसका क्या कर सकता है, अर्थात् उसके ऊपर माया का कोई भी दुष्प्रभाव नहीं पड़ सकता?

**मांहों मांहें वालाजीनी वातो, बीजो चितमां नथी उचार।**

**ततखिण वेण सांभलतां वल्लभ, खिण नव लागी वार॥८॥**

ब्रज में सखियाँ अष्ट प्रहर – चौंसठ घड़ी केवल धाम धनी की ही बातें किया करती थीं। उनके चित्त में अपने प्राणेश्वर को छोड़कर और किसी के बारे में सोचने – विचारने का स्थान ही नहीं था। इसलिये जैसे ही प्रियतम ने योगमाया में बाँसुरी बजाई, तो सखियों को संसार छोड़ने में एक पल की भी देरी नहीं लगी।

मन उमंग वालाजीसूं रमवा, आयत अति घणी थाय।

आनंद मांहेँ अति उजाय, धरणी न लागे पाय॥९॥

अपने प्रियतम के साथ रास खेलने के लिये सखियों के मन में बहुत अधिक उमंग और चाहना थी। वे आनन्द में इतनी विभोर हो गयी थीं कि उनके पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे थे।

**भावार्थ—** "धरती पर पाँव न पड़ना" एक मुहाविरा है जिसका आशय होता है, अत्यधिक प्रसन्नता और आनन्द के अतिरेक (अधिकता) में डूब जाना।

भूखण स्वर सोहामणा, मुख वाणी ते बोले रसाल।

ए स्वरने ज्यारे श्रवणा दीजे, त्यारे आडो न आवे पंपाल॥१०॥

सखियों के मुख से प्रेम रस से भीने हुए अमृत के समान मधुर वचन निकल रहे थे, और उनके आभूषणों से भी

मधुर स्वर फूट रहे थे। यदि आप इन मधुर स्वरों को सुन लें, तो आपके सामने यह संसार का पर्दा नहीं रहेगा।

**भावार्थ-** सखियों के प्रेम भरे मीठे वचनों को सुनकर हृदय में प्रेम का प्रकट होना स्वाभाविक ही है। जिसके हृदय में प्रेम का रस प्रवाहित होने लगता है, उसके ऊपर माया का कोई भी अस्त्र-शस्त्र काम नहीं करता।

साथ सकल मारा वाला पासे आव्यो, मन आणी उलास।  
विविध पेरे वालाजीसुं रमवा, चितमां नथी मायानो पास॥११॥  
सभी सखियाँ रास खेलने के लिये अपने मन में उमंग लेकर मेरे प्राणेश्वर अक्षरातीत के पास आयीं। उनके चित्त में माया का थोड़ा भी अंश नहीं था। वे तो मात्र अपने आराध्य के साथ अनेक प्रकार से रास खेलना चाहती थीं।

रस भर रंग वालाजीसुं रमवा, उछरंग अंग न माय।

इंद्रावती बाई कहे धामना साथने, हूं नमी नमी लागूं पाय॥१२॥

अपने प्रियतम के साथ प्रेम और आनन्द में भरकर रास खेलने के लिये सखियों के अन्दर इतना उत्साह है कि वह उनके हृदय में समा नहीं पा रहा है। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि रास की क्रीड़ा करने वाली परमधाम की इन ब्रह्मात्माओं के चरणों में मैं झुक - झुक कर बार-बार प्रणाम कर रही हूँ।

प्रकरण ॥७॥ चौपाई ॥२६७॥

## श्रीराजजीनों सिणगार

इस प्रकरण में महारास के अन्दर श्री राज जी के द्वारा धारण किये गये तन के श्रृंगार का वर्णन किया गया है।

पेहेलो सिणगार कीधो मारे वालेजीए, तेहेनो ते वरणवुं लवलेस।

पछे संवाद वालाजी साथनो, ते मारी बुध सारुं कहेस॥१॥

कालमाया से योगमाया में पहुँचकर श्री राज जी ने सबसे पहले अपना श्रृंगार किया। उसका मैं रंचमात्र ही वर्णन कर पा रही हूँ। इसके पश्चात् श्री राज जी और सुन्दरसाथ में क्या बातें हुई, उसके विषय में मैं अपनी अल्प बुद्धि से वर्णन करूँगी।

**भावार्थ-** अक्षरातीत श्री राज जी के आवेश के केवल ब्रह्म (योगमाया के ब्रह्माण्ड) में पहुँचते ही, उनकी इच्छा मात्र से पल भर में ही उनका सम्पूर्ण श्रृंगार प्रकट हो

गया। इस चौपाई के प्रथम चरण में श्री राज जी के द्वारा श्रृंगार किये जाने का आशय इस नश्वर जगत की तरह नहीं समझना चाहिये कि वहाँ भी वस्त्र और आभूषण यहाँ की तरह पहने जाते हैं।

यद्यपि श्री राज जी का श्रृंगार पहले हुआ, किन्तु रास ग्रन्थ में श्री श्यामा जी और सुन्दरसाथ का श्रृंगार पहले अवतरित हुआ है। जबकि सागर और श्रृंगार ग्रन्थ में सबसे पहले श्री राज जी का श्रृंगार वर्णित है, उसके पश्चात् श्री श्यामा जी और सुन्दरसाथ का।

सोभा रे मारा स्याम तणी, सखी केणी पेरे वरणवुं एह।  
 सबदातीत मारा वालाजीनी सोभा, मारी जिभ्या आंणी देह॥२॥  
 हे सुन्दरसाथ जी! मैं अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की शोभा का वर्णन कैसे करूँ? मेरे प्रियतम की शोभा शब्दों

से परे है, जबकि मेरी जिह्वा (वाणी) इस नश्वर शरीर की है।

**भावार्थ-** जिस प्रकार सागर में रहने वाली मछली सागर की अथाह जलराशि का माप नहीं कर सकती, उसी प्रकार भले ही सम्पूर्ण वर्णन श्री राज जी ही क्यों न करवा रहे हों, किन्तु उसे यथार्थ रूप में व्यक्त कर पाने का सामर्थ्य इस नश्वर शरीर की बुद्धि या वाक् इन्द्रिय (जिह्वा, वाणी) में नहीं है।

चरण तणा अंगूठा कोमल, नख हीरा तणा झलकार।

रंग तो जोई जोई मोहिए, पासे कोमल आंगलियो सार॥३॥

श्री राज जी के दोनों चरणों के अंगूठे बहुत ही कोमल हैं और नख हीरे के समान झलकार कर रहे हैं। नखों के रंग को जितना ही देखते हैं, उतना ही मन मुग्ध होता जाता

है। अंगूठे के साथ लगती हुई अंगुलियां बहुत ही सुन्दर और कोमल हैं।

फणा नसो अने कांकसा, अति रंग घणू रे सोहाए।

जीव थकी अलगां नव कीजे, राखिए चरण चित मांहे॥४॥

दोनों चरणों के पंजों की नसें तथा अंगुलियों के बीच की जगह बहुत ही सुन्दर लग रही है। हे साथ जी! इन दोनों चरणों की शोभा को अपने हृदय मन्दिर में बसा लीजिये और अपने जीव से एक क्षण के लिये भी अलग नहीं कीजिये।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई में यह संशय होता है कि इसके तीसरे चरण में श्री राज जी की शोभा को जीव के हृदय में बसाने के लिये क्यों कहा गया है, आत्मा के हृदय में क्यों नहीं?



हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वर्तमान समय में श्री राज जी के जिस श्रृंगार का वर्णन हो रहा है, उसमें श्री राज जी का आवेश नहीं है। जब तक उस तन में श्री राज जी का आवेश लीला करता रहा, तब तक वह उनका स्वरूप था। वर्तमान में वह एक नूरमयी तन का रूप भर है, जिसे अक्षरातीत नहीं कहा जा सकता। अतीत में धाम धनी ने इस श्रृंगार को धारण किया था, इसलिये इसे श्री राज जी का श्रृंगार कहकर वर्णित किया जा रहा है। तारतम वाणी (सागर, श्रृंगार) में परमधाम के युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार को आत्मा के धाम हृदय में ही बसाने का निर्देश किया गया है-

तार्थे हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप युगल।  
सुरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइए बल बल॥

सागर ११/४६

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रह्यो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए॥

सागर ११/४४

ऐसा आवत दिल हुकमें, यों इस्कें आत्म खड़ी होए।

जब हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए॥

श्रृंगार ४/१

श्री राज जी के द्वारा अतीत काल में धारण किये गये श्रृंगार को जीव के हृदय में बसाने पर लाभ यह होगा कि जीव में माधुर्य (अंगना) भाव का विस्तार होगा तथा धनी के प्रति विरह-प्रेम की वृद्धि होगी। जिस तन में अक्षरातीत का आवेश नहीं होगा, आत्मा किसी भी स्थिति में उसे अपना आराध्य नहीं मानेगी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रास के समय जब मूल स्वरूप ने श्री कृष्ण जी के तन से अपना जोश-आवेश खींचा,

तब तन तो वहीं था लेकिन सखियों को दिखायी नहीं दिया।

चरण तले पदमनी रेखा, करे ते अति झलकार।

पानी लांक लाल रंग सोभे, इंद्रावती निरखे करार॥५॥

एड़ी और लांक का रंग लाल रंग में शोभायमान हो रहा है। इस अनुपम छवि को देखकर श्री इन्द्रावती जी को बहुत अधिक आनन्द हो रहा है।

**भावार्थ-** चरणों की एड़ी तथा पंजे की तली में जो गहरा स्थान आया है, उसको लांक कहते हैं।

टांकन घूँटी ने कांडा कोमल, कांबी कडला बाजे रसाल।

घूंघरडी घम घम स्वर पूरे, मांहे झांझर तणो झमकार॥६॥

श्री राज जी के चरणों के टखने, घूँटी, तथा पिण्डलियाँ बहुत ही कोमल हैं। जब श्री राज जी के चलने से घम-घम की आवाज आती है, तो घूँघरी और झांझरी से अति मधुर झन-झन की ध्वनि सुनायी पड़ती है।

**भावार्थ-** घम-घम की आवाज पैरों के चलने (धमक) से ही सम्भव है। घुंघरी से निकलने वाली ध्वनि बहुत ही पतली होती है। उससे घम-घम की आवाज नहीं आ सकती।

कांबी कडला जुगते जडियां, सात वानि ना नंग सार।

लाल पाना हीरा माणक नीलवी, कुन्दनमां मोती झलकार॥७॥

कांबी और कड़ले में सात प्रकार के अति सुन्दर नग जड़े हुए हैं। लाल, पन्ना, हीरा, माणिक, नीलम, और मोती। मोती के नग शुद्ध स्वर्ण में जड़े हुए हैं और जगमगा

रहे हैं।

**झांझरियां जडाव जुगतनां, करकरियां सोभंत।**

**घूंघरडी करडा जडतरमां, झलहल हेम करंत॥८॥**

झांझरी की बनावट इस प्रकार आयी है कि उसमें जड़े हुये नगों के छोटे-छोटे दाने बहुत अधिक शोभायमान हो रहे हैं। घूंघरी में सोने के साथ तरह-तरह के सुन्दर नग जड़े हुये हैं, जो अति सुन्दर झलकार करते रहते हैं।

**कनक तणां वाला मांहे गठिया, निरमल नाका झलकंत।**

**झांझरियांमां जुगते जडियां, भली पेरे मांहे भलंत॥९॥**

सोने के तार में घूंघरी गुँथी हुयी है, जिसके कुण्डे बहुत ही सुन्दर झलकार कर रहे हैं। झांझरी में नगों का जड़ाव इस प्रकार का है कि पता ही नहीं चलता। नग झांझरी में

पूरी तरह से ओत-प्रोत से हो गये हैं।

**भावार्थ-** योगमाया का यह सम्पूर्ण श्रृंगार चेतन है। सभी वस्त्र और आभूषण चेतन तथा प्रकाशमयी हैं। नगों के जड़े होने की बात इस नश्वर जगत के आधार पर कही गयी है, ताकि हमारी मानवीय बुद्धि में वह ग्राह्य हो सके।

पीडी ऊपर पायचा, ने झीणी कुरली झलवार।

केसरिए रंग सूथनी, इंद्रावती निरखे करार॥१०॥

श्री राज जी ने केशरिया रंग की सूथनी (चूड़ीदार पायजामा) धारण कर रखी है। उनकी पिण्डलियों पर सूथनी का पायचा आया है, जिसकी बारीक चुन्नटें बहुत ही मनोरम झलकार कर रही हैं। इस अनुपम छवि को देखकर श्री इन्द्रावती जी का हृदय आनन्द से भर जाता है।

**भावार्थ-** सूथनी का निचला भाग जो पिण्डली पर आता है, पायचा कहलाता है। इसी भाग में चुन्नटें बनायी जाती हैं।

मोहोलिए मोती ने वली नेफे, वेल टांकी बेहू भांत।  
 नाडी मांहे नव रंग दीसे, मानकदे जुए करी खांत॥११॥  
 सूथनी की मोहरी तथा नेफे पर मोती जड़े हुये हैं तथा इन दोनों स्थानों पर सुन्दर बेलों की भी शोभा आयी है। नेफे की नाड़ी (डोरी) में नौ रंग दिखायी दे रहे हैं, जिन्हें श्री इन्द्रावती जी (माणकदे) बहुत चाहत के साथ देख रही हैं।

**भावार्थ-** पिण्डली के नीचे सूथनी का निम्नतम भाग जो पैर को घेरकर आता है, मोहरी कहलाता है। इसी प्रकार सूथनी का उच्चतम भाग, जिसके अन्दर से गुजरती हुयी

नाड़ी के द्वारा सूथनी को कमर में बाधा जाता है, नेफा कहलाता है।

सेत स्याम ने सणिए सेंदुरिए, कखूवर बंने कोर।

नीलो पीलो जांबू गुलालियो, ए सोभा अति जोर॥१२॥

नाड़ी (डोरी) के दोनों किनारों तक आये हुये दस रंग इस प्रकार हैं— श्वेत, काला, गुलाबी, सिन्दुरिया, आसमानी, नीला, पीला, जामुनी, और गहरा लाल। यह शोभा बहुत अधिक मोहक है।

पीली पटोली पेहेरी एक जुगते, मांहेँ विविध पेरे जडाव।

जीव तणु जीवन ज्यारे जोइए, त्यारे नव मूकाय लगार॥१३॥

मेरे जीव के आधार प्रियतम अक्षरातीत ने एक पीली पटोली भी बहुत अच्छी तरह से धारण कर रखी है,



जिसमें अनेक तरह के नग जड़े हुए हैं। यदि कोई इस अनुपम शोभा को देख ले, तो वह एक पल के लिये भी छोड़ना नहीं चाहेगा।

**भावार्थ-** पीली पटोली बिना सिला हुआ ऐसा वस्त्र है, जो पटुके से कुछ ज्यादा चौड़ा होता है। इसे कमर में बाँधा जाता है और इससे कमर का अधिकांश भाग ढक जाता है।

**कोरे वेल जडाव जुगतनी, मध्य जडावना फूल।**

**जडाव झलहल जोर करे, चीर कानियांनी कोरे मस्तूल॥१४॥**

पटोली की किनार पर अति सुन्दर बेलों के चित्र अंकित हैं। उनके मध्य में फूलों की चित्रकारी है, जो अपनी ज्योति से बहुत अधिक झलझला रही है। पटोली की तनियों के कोने पर रेशम के धागों से फूलों के अति

मनोहर चित्र बने हुए हैं।

माणक मोती ने नीली चुन्नी, फूल वेल मांहें झलकंत।

सोभा मारा स्यामजीनी जोई जोई जोइए, मारी तेणे रे काया ठरंत॥१५॥

पटोली के फूलों और लताओं में माणिक, मोती तथा नीलम के अति छोटे-छोटे ज्योतिर्मयी टुकड़े झलकार कर रहे हैं। अपने प्राणेश्वर की ऐसी अनुपम छवि को बारम्बार देखकर मेरा शरीर शीतल हो जाता है।

**भावार्थ-** विरह की अग्नि में शरीर, अन्तःकरण, तथा इन्द्रियों को प्रज्वलित अवस्था में दर्शाया जाता है। अपने प्राण प्रियतम का दर्शन पाकर विरहाग्नि बुझ जाती है तथा उसके जीवन में जीवनदायी प्रेम और आनन्द का संचार होता है। इसे ही शरीर, नेत्र, तथा अन्तःकरण आदि का शीतल होना कहते हैं।

नीलो ने कांई पीलो दीसे, कणा तणो रंग जेह।

काणी छेडा जडाव जुगते, लवलेस कहूं हूं तेह॥१६॥

पटोली के नीचे की किनार का रंग तोते के पंख के रंग जैसा सुन्दर दिखायी दे रहा है। उसकी किनार के कोने में अति सुन्दर चित्रकारी आयी है, जिसका मैं थोड़ा सा वर्णन सुनाती हूँ।

छेडे हेम हीरा ने पुखराज पाना, कोरे माणक नीलवी ने मोती।

काणी छेडा जुजवी जुगते, इंद्रावती खांत करी जोती॥१७॥

सोना, हीरा, पुखराज, पन्ना, माणिक, नीलम, और मोती के नग पटोली के किनार के कोने पर बहुत ही सुन्दर आकृतियों में जड़े हुए हैं, जिनकी अलौकिक ज्योति को श्री इन्द्रावती जी की आत्मा बहुत चाहत के साथ देख रही हैं।

अंगनो रंग कह्यो न जाय, जाणे तेज तणो अंबार।

पेट पास उरकंठ निरखता, इंद्रावती पामे करार॥१८॥

श्री राज जी के एक-एक अंग की अनुपम शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। उनका स्वरूप तेज की अनन्त राशि के समान दिखायी दे रहा है। उनके पेट, पसलियों, हृदय कमल, तथा गले की शोभा को देखने पर श्री इन्द्रावती जी के हृदय को असीम शान्ति मिलती है।

रतन हीराना बे हार दीसे, त्रीजो हेम तणो जडाव।

चौथो हार मोती निरमलनो, करे जुजवी जुगत झलकार॥१९॥

श्री राज जी के गले में सर्वप्रथम हारों के दो हार दिखायी दे रहे हैं। तीसरा हार स्वर्ण जड़ित है। इसके पश्चात् चौथा हार अति स्वच्छ दिखने वाले मोतियों का

है। अलग-अलग प्रकार की शोभा को धारण करने वाले ये चारों हार बहुत ही सुन्दर झलकार कर रहे हैं।

उतरी जडाव सर बे सोभंती, चुंनी राती नीली जुगत।

निरखी निरखी ने नेत्र ठरे, पण केमे न पामिए तृपत॥२०॥

इन चारों हारों के नीचे नगों से जड़ित दो हारों वाला (उतरीय का) हार सुशोभित हो रहा है। इसमें लाल और नीलम के बहुत छोटे-छोटे सुन्दर नग जड़े हुए हैं। इनको बारम्बार देखने पर नेत्र शीतल तो हो जाते हैं, किन्तु हृदय में देखने की तृप्ति नहीं हो पाती अर्थात् जी नहीं भरता।

**भावार्थ-** सबसे नीचे होने के कारण इस हार को उतरीय का हार कहते हैं। नेत्रों के शीतल होने का तात्पर्य दर्शन से आनन्द का मिलना है, लेकिन उनको देखने की

चाहत इतनी प्रबल होती है कि उनको पल भर भी अपनी आँखों से ओझल करने के लिये हृदय तैयार नहीं होता। इसे ही हृदय का तृप्त न हो पाना कहते हैं।

**रंग सेंदुरिए पछेडी, अने मांहें कसवनी भांत।**

**छेडे तार ने कसवी कोरे, इंद्रावती जुए करी खांत॥२१॥**

श्री राज जी के कन्धे पर सेन्दुरिया रंग की पिछौरी आयी हुयी है, जिसमें सोने-चाँदी के तारों से तरह-तरह की सुन्दर चित्रकारी की गयी है। पिछौरी के दोनों छोरों की किनार पर सोने के तारों से जो सुन्दर चित्रकारी की गयी है, उसे श्री इन्द्रावती जी बहुत चाहत के साथ देख रही हैं।

**भावार्थ-** पिछौरी को आजकल बोलचाल की भाषा में अंगोछी या गमछी भी कहते हैं। इसको दोनों कन्धों और

कमर के दोनों हिस्सों से इस प्रकार लपेटा जाता है कि पेट के स्थान पर दोनों भागों का मिलन होता है और इसके दोनों छोर पीठ की तरफ लटक जाते हैं। यह ध्यान रखने योग्य विशेष तथ्य है कि रास के श्रृंगार में, परमधाम के श्रृंगार की तरह, कहीं भी बागे का वर्णन नहीं आया है। पिछौरी तथा पटोली से ही कमर से लेकर गले तक के भाग को ढका जाता है। सोने-चाँदी के तारों से फूलों और बेलों के जो चित्र बनाये जाते हैं , उन्हें नक्शकारी, कसीदाकारी, या बेल-बूटे बनाना कहते हैं।

अंग ऊपर आणी बंने चौकडी, छेडा बंने पासे लटकंत।

नवल वेख लीधो एक भांतनो, जोई जोईने जीव अटकंत॥२२॥

श्री राज जी ने पिछौरी को कन्धे के ऊपर इस प्रकार से ओढ़ रखा है, जिससे आगे-पीछे चौकड़ी बन जाती है।

इसके दोनों किनारे दोनों ओर लटक रहे होते हैं। प्रियतम ने रासलीला करने के लिये विचित्र प्रकार का एक नया ही भेष धारण किया है, जिसकी शोभा को देखकर मेरे जीव की दृष्टि बार-बार अटक जाती है।

**भावार्थ-** आत्मा अक्षरातीत की जिस शोभा को देखकर आनन्दित हो रही होती है, आंशिक रूप से जीव भी उसमें सहभागी बना होता है। आत्मा जिस शोभा को देखने में डूब जाती है, जीव को वहाँ ऐसा लगता है कि यह शोभा तो अनन्त है, इसको कैसे आत्मसात् करूँ? इसे ही जीव की दृष्टि का अटकना कहते हैं।

कोमल कर एक जुई रे जुगतना, जो वली जोड़ए रंग।

झलकत नख अंगूठा आंगलियो, पोहोंचा कलाई पतंग॥२३॥

यदि श्री राज जी के हाथों की कोमलता और उसके रंग



की सुन्दरता के बारे में देखें, तो एक प्रकार की अलौकिक छवि दिखायी देती है। अंगुलियों तथा अंगूठों के नाखून झलकार कर रहे हैं। उनकी कलाई तथा पंजे लालिमा से भरपूर अति मनोहर दिखायी दे रहे हैं।

**भावार्थ-** हथेली की विपरीत दिशा में कलाई के आगे का भाग पहुँचा या पंजा कहलाता है।

**झीणी रेखा हथेली आंगलिए, सात वीटी सोभंत।**

**त्रण वीटी ऊपर नंग दीसे, अति घणुं ते झलकंत॥२४॥**

उनकी दोनों हथेलियों तथा अंगुलियों में आयी हुई रेखाएं बहुत ही पतली हैं। अंगुलियों में सात अंगूठियाँ सुशोभित हो रही हैं। तीन अंगूठियों के ऊपर नंग जड़े हैं, जो बहुत अधिक जगमगा रहे हैं।

अंगूठिए लाल चुन्नी नी जडतर, बे वीटी हीरा रतन।

एक वीटी ने नीलू पानू, बीजा वाकडा वेलिया कंचन॥२५॥

दोनों अंगूठे की अंगूठियों में लाल रंग के बहुत छोटे – छोटे टुकड़े जड़े हुए शोभायमान हो रहे हैं। दो अंगूठियाँ हीरे के नगों की हैं। एक अंगूठी नीलम और पन्ना के नग की है, तो दूसरी अंगूठी सोने के तारों से बेल की आकृति में आयी है।

**भावार्थ**– उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि हाथों के दोनों अंगूठों में दो अंगूठियाँ आयी हैं। शेष अंगुलियों में सात मुद्रिकाओं (वीटी) की शोभा है। तीन नगों की, दो हीरों की, एक नीलम और पन्ना के नगों की, तथा एक सोने के तारों की। इस प्रकार कुल नौ अंगूठियाँ आयी हैं।

कोमल कांडे कडली सोभे, नीली जडित अति सार।

कडली पासे पोहोंची घणी ऊँची, करे ते अति झलकार॥२६॥

कोमल कलाइयों में नीलम से जड़ी हुई बहुत सुन्दर कडली (धातु की चूड़ी) सुशोभित हो रही है। कडली के पास ही अति मनोहर पहुँची भी आयी है, जो बहुत अधिक झलझलाहट कर रही है।

मध्य माणक ने फरता मोती, पाच तणो नीलास।

किरण ज्यारे उठतां जोड़ए, त्यारे जोत न माय आकास॥२७॥

पहुँची के मध्य में माणिक का नग आया है। उसके चारों ओर मोती तथा आसमानी रंग की नीलिमा लिये हुए पाच के नग आये हैं। इनसे उठती हुई किरणों को देखने से ऐसा लगता है कि इनकी ज्योति इतनी अधिक है कि आकाश में भी समा नहीं सकती, अर्थात् चारों ओर

ज्योति ही ज्योति दिखायी पड़ती है।

**भावार्थ-** आकाश का रंग नीला होता है तथा पाच का रंग आकाश के समान होता है। इसलिये उपरोक्त चौपाई में नीला शब्द का प्रयोग किया गया है।

कोमल कोणी चंदन अंग चरचित, मणि जडित बाजूबंध।

कंचन कसवी फुमक बेहू लटके, सूं कहूं सोभा सनंध॥२८॥

चन्दन से सुशोभित हाथों की कोहनी बहुत ही कोमल हैं। दोनों बाजूबन्ध मणियों से जड़ित हैं। दोनों बाजूबन्धों में बहुत सुन्दर फुम्मक लटक रहे हैं, जिनके ऊपर सोने के तारों से बहुत सुन्दर चित्रकारी की गयी है। इस अद्वितीय शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ?

जोड़ए मुखारविंद गाल बंने गमां, तेज कह्यो नव जाय।

अधखिण जो अलगा रहिए, त्यारे चितडां उपापला थाय॥२९॥

हे साथ जी! जरा श्री राज जी के मुखारविन्द के दोनों गालों की शोभा को तो देखिये। उनके अलौकिक तेज का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। यदि आप आधे क्षण के लिये भी इस शोभा से अलग हो जायें, तो चित्त व्याकुल हो जाता है।

हरवटी सोहे हंसत मुख दीसे, वली जोड़ए अधुरनो रंग।

दंत जाणे दाडिमनी कलियों, अधुर परवालीनो भंग॥३०॥

प्राणेश्वर अक्षरातीत के हँसते हुये मुख में ठुड्डी बहुत ही सुन्दर दिखायी दे रही है। पुनः होठों की सुन्दरता को देखिए। दोनों होंठ प्रवाल की लालिमा को भी लज्जित कर रहे हैं। दाँत तो ऐसे लग रहे हैं, जैसे अनार के दानों की

भी शोभा को मात कर रहे हों।

मुख ऊपर मोती निरमल लटके, बेसर ऊपर लाल।

काने करण फूल जे सोभा धरे, ते ता झलके मांहेँ गाल॥३१॥

मुख के ऊपर नासिका में बेसर की शोभा आयी है, जिसमें अति स्वच्छ मोती लटक रहा है। वह श्री राज जी के होठों की लालिमा से लाल रंग का दिखायी दे रहा है। कानों में आये हुए कर्णफूल बहुत ही सुन्दर लग रहे हैं। गालों के ऊपर इनकी झलकार प्रत्यक्ष दिखायी दे रही है।

करणफूल छे अति घणूं ऊँचा, राती नीली चुन्नी सार।

निरखी निरखी जीव निरांते, मांहेँ मोतीडा करे झलकार॥३२॥

दोनों कानों के कर्णफूलों की छवि बहुत अधिक है। इनमें लाल और नीले रंग के जवाहरातों के छोटे-छोटे जड़े हुए

टुकड़ों की शोभा आयी है। इनके मध्य जड़ा हुआ मोती झिलमिला रहा है। इस अलौकिक छवि को देखकर जीव आनन्द में डूब जाता है।

खीटलडी वालाजी केरी, जीव करे रे जोयानी खांत।

माणक मोती हीरा पुखराज, कुंदन मांहे जडियां भांत॥३३॥

धाम धनी के कानों में कर्णफूल के ऊपर खूँटी की शोभा दृष्टिगोचर हो रही है। मेरे जीव में उसे देखने की बहुत अधिक चाह थी। खिटलड़ी में माणिक, मोती, हीरा, तथा पुखराज के नग सोने में जड़े हुए शोभायमान हो रहे हैं।

आंखडली अणियाली सोभे, मध्य रेखा छे लाल।

निरखत नेण कोडामणा, जीवने ताणी ग्रहे तत्काल॥३४॥

श्री राज जी के तीखे नेत्र बहुत ही सुन्दर लग रहे हैं। नेत्रों के मध्य लाल रेखा दिखायी पड़ रही है। आनन्द की वर्षा करने वाले ऐसे नेत्रों को देखकर जीव तत्क्षण धनी के चरणों में खिंच जाता है।

**मीठी पांपण चलवे एक भांते, तारे तेज अपार।**

**बेहुगमां भ्रकुटीनी सोभा, इन्द्रावती निरखे करार॥३५॥**

जब श्री राज जी प्रेम की माधुर्यता से भरे हुए नेत्रों की पलकों को विचित्र प्रकार से चलाते हैं (संकेत करते हैं), तो उनके नेत्रों में विद्यमान तारों का अपार तेज दिखायी पड़ता है। उनकी दोनों भौंहों की अलौकिक छवि को देखकर श्री इन्द्रावती जी को अथाह आनन्द होता है।

**द्रष्टव्य—** इस चौपाई के दूसरे चरण में "तारों" का तात्पर्य आकाश के तारे नहीं, बल्कि नेत्र की पुतली में



स्थित तारे से है।

निलवट सोभे तिलक नी रेखा, नीली पीली गुलाल।

बेहुगमां सुन्दर ने सोभे, रेखा मध्य बिंदका लाल॥३६॥

माथे (ललाट) पर आयी हुई नीले, पीले, तथा लाल रंग की तिलक की रेखाएं बहुत ही सुन्दर लग रही हैं। तिलक की दोनों रेखाओं के बीच में लाल रंग की बिन्दी अत्यधिक शोभायमान हो रही है।

मस्तक मुकुट सोहामणो, कांई ए सोभा अति जोर।

लाल सेत ने नीली पीली, दोरी सोभित चारे कोर॥३७॥

मस्तक पर अति सुन्दर मुकुट विद्यमान है, जिसकी अपार शोभा आयी हुयी है। इसके चारों किनारों में लाल, श्वेत, नीले, तथा पीले रंग की जवाहरातों की बनी हुई

डोरियाँ सुशोभित हो रही हैं।

ए ऊपर जवदाणा नी सोभा, एह जुगत अदभूत।

ते ऊपर वली फूलोनी जडतर, तेना केम करी वरणवुं रूप॥३८॥

इनके ऊपर जौ के दानों की आकृति में बहुत ही अदभुत शोभा आयी है। इनके ऊपर अति सुन्दर फूलों की चित्रकारी है, जिसके अनुपम रूप का वर्णन मैं कैसे करूँ?

बीजा अनेक विधना फूल दोरी बंध, करे जुजवी जुगत झलकार।

माणक मोती हीरा पुखराज, पिरोजा पाना पांचो सार॥३९॥

इन फूलों के अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के फूलों की अलग-अलग पंक्तियों की बनावट आयी है, जो अलग-अलग रूपों में झलकार करती हैं। फूलों की ये पंक्तियाँ

माणिक, मोती, हीरा, पुखराज, पिरोजा, और पन्ना के इन पाँच रंगों की शोभा में आयी है।

**भावार्थ-** पिरोजा हल्के नीले रंग का होता है और पन्ना आसमानी रंग का होता है। इसलिये दोनों रंगों को एक ही रंग में वर्णित कर दिया गया है, अर्थात् छः जवाहरात के पाँच नग हुए। यद्यपि हीरा और मोती का रंग भी श्वेत ही होता है, किन्तु मोती के रंग में थोड़ा सा पीलापन होता है। इसलिये इन्हें अलग - अलग रंगों वाला माना गया है।

लाल लसणिया नीलवी गोमादिक, साढ सोलू कंचन।  
 फूल पांखडियो मणि जवेरनी, मध्य जडया छे रतन॥४०॥  
 मुकुट में लाल, लहसुनिया, नीलवी, और गोमेद आदि के नग सोने को साढ़े सोलह बार तपाकर शुद्ध किए

कञ्चन में जड़े हुए हैं। मुकुट के ऊपर बनी हुई फूलों की पँखुड़ियाँ मणियों और जवेरों की हैं, जिनमें रत्न जड़े हुए हैं।

मुकुट ऊपर ऊभी जवेरोनी हारो, तेमां रंग दीसे अपार।  
 अनेक विधनी किरणज उठे, ते तां ब्रह्मांड न माय झलकार॥४१॥

मुकुट के ऊपर जवाहरातों की खड़ी हारें आयी हैं। उनमें अनन्त प्रकार के रंग दिखायी देते हैं। उन जवाहरातों से अनेकों प्रकार की इस तरह से किरणें उठ रही हैं कि उनकी झलझलाहट रास के ब्रह्माण्ड में समा नहीं पा रही है।

चार हारना चारे फुमक, तेहेना जुजवी जुगतना रंग।  
 लाखी लिबोई ने स्याम सेत, सुन्दर ने ए सोभंत॥४२॥

श्री राज जी के गले में आये हुए चार हारों में चार फुम्मक लटक रहे हैं। उनमें प्रत्येक फुम्मक में अलग – अलग प्रकार के नग आये हैं। चारों हारों के क्रमशः लाल, पीले (नींबू की तरह), काले, और श्वेत रंग के फुम्मक आये हैं, जो बहुत ही सुन्दर शोभा को धारण किये हुए हैं।

**वेण गूंथी एक नवल भांतनी, गोफणडे विविध जडाव।**

**फरती फरती घुंघरडी, ने बोलंती रसाल॥४३॥**

प्रियतम अक्षरातीत के बालों की चोटी नए ही तरीके से गुंथी हुयी है। चोटी के फुँदने में अनेक प्रकार के जवाहरात जड़े हुए हैं। फुँदने में घेरकर घुँघरी आयी है, जो बहुत ही मधुर ध्वनि करती है।

**भावार्थ—** वेणी के नीचे लटके हुए फूल को गोफणड़े

कहते हैं।

गोफण्डे फुमक जे दीसे, तेनो लाल कसवी रंग।

जडाव मांहे माणक ने मोती, पाना पुखराज नंग॥४४॥

गोफण्डे (फुँदने) में जो फुम्मक दिखायी दे रहे हैं, उनका रंग गहरा लाल आया है। उनमें (फुम्मक में) माणिक, मोती, पन्ना, और पुखराज के नग बहुत सुन्दर तरीके से जड़े हुए हैं।

वांसा ऊपर वेंण लेहेकती, सोभा ते वरणवी न जाए।

खुसबोय मांहे रंग भीनो, बीडी तंबोल मुख मांहे॥४५॥

श्री राज जी की पीठ पर उनके बालों की चोटी इस प्रकार लहरा रही है कि उसकी शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। उनके मुख में पानों का बीड़ा है, जिसकी

आनन्दमयी सुगन्धि चारों ओर फैली हुयी है।

नवल वेख ल्याव्या एक भांतनो, कसबटिए वांसली लाल।

अधुर धरीने ज्यारे वेण बजाडे, त्यारे चितडा हरे तत्काल॥४६॥

धाम धनी ने एक नए ही प्रकार का (नटवर) भेष धारण किया है। उनकी कमर में लाल बाँसुरी सुशोभित हो रही है। जब वे बाँसुरी को अपने होठों से लगाकर बजाते हैं, तो तत्क्षण ही उसके मोहक संगीत से सबका चित्त हर लेते हैं।

वेण तणी विगत कहूं तमने, कोरे कांगरी जड़ाव।

मोहोवड नीला मध्य लाल, छेडे आसमानी रंग सोहाय॥४७॥

अब मैं आपसे बाँसुरी की शोभा का वर्णन करती हूँ। इसकी किनार पर काँगरी की सुन्दर शोभा दृष्टिगोचर हो

रही है। बाँसुरी के मुख पर नीला, मध्य में लाल, और किनारे पर आसमानी रंग शोभा दे रहा है।

वस्तर वरणव्यां सब्द मांहे सखियो, वली वरणवी भूखणनी भांत।  
रेसम हेम कह्या में जवेरना, पण ए छे वसेक कोय धात॥४८॥  
हे साथजी! मैंने रास के युगल स्वरूप के वस्त्रों और आभूषणों का वर्णन यहाँ के शब्दों के आधार पर किया है। रेशमी वस्त्रों, स्वर्ण, आदि धातुओं तथा अनेकों प्रकार के जवाहरातों का भी वर्णन किया है, किन्तु योगमाया का यह श्रृंगार कुछ विशेष ही तत्त्व का है।

**भावार्थ—** बेहद मण्डल अक्षर के हृदय का स्वरूप है। इस प्रकार अव्याकृत से लेकर सत्स्वरूप तक सारा योगमाया का ब्रह्माण्ड त्रिगुणातीत, चैतन्य, अखण्ड, तथा प्रकाशमयी है। मानवीय बुद्धि के लिये ग्राह्य बनाने हेतु



इस नश्वर जगत के धातुओं, जवाहरातों, आदि से केवल उपमा दी गयी है, किन्तु यह उपमा वास्तविक नहीं है। वहाँ के एक-एक पत्ते में करोड़ों सूर्यों की आभा है। ऐसी अवस्था में वहाँ की वास्तविक शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है? इस सम्बन्ध में कलश हिन्दुस्तानी का यह कथन देखने योग्य है—

हेम जवेर के बन कहूं, तो सब झूठी वस्त।

सोभा जो अविनास की, कही न जाए मुख हस्त॥

बरनन करूं एक पात की, सो भी इन जुबां कही न जाए।

कोट ससि जो सूर कहूं, तो एक पात तले ढंपाए॥

कलस हिन्दुस्तानी २०/१९, २०

सज थया सिणगार करीने, रास रमवानूं मन मांहें।

साथ सकल मारा पिउ पासे आव्यो, इंद्रावती लागे पाए॥४९॥

अपने मन में प्राणेश्वर के साथ रास रमण करने की इच्छा लेकर, सब सुन्दरसाथ ने अपना नख से शिख तक श्रृंगार किया और मेरे धाम धनी के पास आये। रास का आनन्द देने वाले अपने ऐसे प्राणेश्वर अक्षरातीत के चरणों में मैं इन्द्रावती प्रणाम करती हूँ।

**दई प्रदखिणा अति घणी, साथें कीधा दंडवत परणाम।**

**हवे करसूं रामत रंग तणी, अने भाजसूं हैडानी हाम॥५०॥**

प्रेम की अति गहन निष्ठा के साथ सब सुन्दरसाथ ने श्री राज जी की प्रदक्षिणा की और उनके चरणों में दण्डवत प्रणाम किया। सबके मन में यह बात बैठ गयी कि अब हम अपने प्रियतम के साथ रास की आनन्दमयी रामते करेंगे और अपने हृदय की प्रेम की चाहत पूरी करेंगे, जो बावन (५२) दिनों के वियोग के कारण अब तक नहीं हो

पायी थी।

**भावार्थ-** उपरोक्त दोनों चौपाइयों ४९, ५० में धाम धनी के चरणों में दण्डवत प्रणाम करने का जो प्रसंग दिया है, यह प्रक्रिया कालमाया के ब्रह्माण्ड में ही होती है, योगमाया के ब्रह्माण्ड में नहीं। दण्डवत प्रणाम की प्रक्रिया दास भक्ति में होती है। प्रेम के आँगन में दासत्व का कोई स्थान नहीं होता। वस्तुतः दण्डवत प्रणाम का आशय अपने आराध्य के प्रति अपने अहं को पूर्णतया समाप्त कर देना होता है।

पुराण संहिता १६/३०, ३९ में यह वर्णित है कि जब पञ्चदेव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश्वर, और सदाशिव) योगमाया के अखण्ड ब्रजमण्डल में श्री कृष्ण जी को प्रणाम करते हैं, तो लीला तुरन्त ही अदृश्य हो जाती है। इसका मूल कारण यही है कि प्रेम की भूमिका में दास

भक्ति के द्वारा एक कदम भी नहीं चला जा सकता। यद्यपि परिक्रमा ग्रन्थ में अष्ट प्रहर की लीला में भी "आए आए के चरणों लागे" अवश्य कहा गया है, किन्तु यह यहाँ के भावों के आधार पर कहा गया है। परमधाम और योगमाया की लीला की यथार्थता यही है कि वहाँ चरणों में दण्डवत प्रणाम की लीला नहीं होती।

**प्रकरण ॥८॥ चौपाई ॥३१७॥**

## उथला (उलाहना) – राग मेवाडो

इस प्रकरण में यह बात दर्शायी गयी है कि सखियों के रासमण्डल में पहुँचने पर श्री राज जी ने घर छोड़कर आने के कारण किस प्रकार उलाहना दिया और सखियों ने उसके प्रत्युत्तर में क्या कहा?

वालैयो वाणी एम उचरेजी, कहे सांभलजो सहु साथ।

पतिव्रता स्त्री जे होय, ते तो नव मूके घर रात॥

रे सखियो सांभलो॥१॥

श्री राज जी के मुख से इस प्रकार के शब्द निकलते हैं—  
हे सखियों! तुम सभी मेरी कही हुई बातों को सुनो। जो पतिव्रता स्त्री होती है, वह किसी भी स्थिति में रात्रि में घर से बाहर नहीं निकलती।

तमे साथ सकल मली सांभलो, हूं वचन कहूं निरधार जी।

तमे वेण मारो श्रवणे सुण्यो, घर मूक्या ऊभा बार जी॥२॥

तुम सभी सखियाँ मिलकर मेरी बात सुनो। मैं बहुत ही उत्तम बात कह रहा हूँ। तुमने मेरी बाँसुरी की ध्वनि को अपने कानों से सुना और उसे सुनते ही तत् क्षण खड़े-खड़े अपने घर-द्वार को क्यों छोड़ दिया?

**भावार्थ-** उपरोक्त दोनों चौपाइयों में श्री राज जी प्रेम भरी व्यंग्यमयी भाषा में सखियों से कह रहे हैं कि मुझ जैसे पर-पुरुष के लिये अपने पति और घर-द्वार को छोड़ने की क्या आवश्यकता थी? इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत् १०/२९/१८ का यह कथन बहुत उचित लगता है-

"स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।  
व्रजस्यानामयं कश्चिद् ब्रुतागमनकारणम्॥"

अर्थात् महाभाग्यवती गोपियों! तुम्हारा स्वागत है।  
बतलाओ, तुम्हें प्रसन्न करने के लिये मैं कौन सा काम  
करूँ? ब्रज में तो सब कुशल-मंगल है न? कहो, इस  
समय यहाँ आने की क्या आवश्यकता पड़ गयी?

कुसल छे कांई वृजमां जी, केम आवियो आणी वेर जी।  
उतावलियो उजाणियो जी, कांई मूक्या कारज घेर जी॥३॥

ब्रज में सब कुछ कुशल-मंगल तो है। अचानक ही इस  
समय क्यों आयी हो? अपने-अपने घर से किस कारण  
इतने उतावलेपन में दौड़ती हुई आयी हो?

किहे रे परियाणे तमें निसरया, कांई जोवा वृंदावन।  
जोयूं वन रलियामणू, कांई तमे थया प्रसंन॥४॥

क्या विचार करके तुम घर से निकली हो? क्या तुम्हें

वृन्दावन देखने की इच्छा है? क्या अति सुन्दर वृन्दावन को देखकर तुम प्रसन्न हो गयी हो?

हवे पुरे रे पधारो आपणे जी, कांई रजनी ते रूप अंधार।

निसाचारी जीव बोलसे जी, त्यारे थासे भयंकार॥५॥

अब तुम अपने निवास स्थान में लौट जाओ, क्योंकि इस समय भयंकर अन्धकार वाली रात्रि का समय चल रहा है। रात्रि के समय जब हिंसक जीव कठोर स्वरों में बोलने लगेंगे, तो तुम डर जाओगी।

निसाए नारी जे निसरे जी, कांई कुलवंती ते न केहेवाय।

नात परनात जे सांभले जी, कांई चेहरो तेमां थाय॥६॥

रात्रि के समय जो स्त्री घर को छोड़कर बाहर निकल जाती है, उसे कुलीन स्त्री नहीं कहा जा सकता। तुम्हारे



सगे-सम्बन्धी जो भी इस बात को सुनेंगे, तो उनके बीच में अवश्य तुम्हारी निन्दा होगी।

सखियो तमे तो कांई न विमासियूं जी, एवडी करे कोई वात।

अणजाणें उठी आवियूं जी, कांई सकल मलीने साथ॥७॥

हे सखियों! तुमने तो जरा भी विचार नहीं किया। बिना सोचे-विचारे तुम सभी मिलकर अचानक ही यहाँ आ गयीं? क्या कोई भी इस तरह की नादानी करता है, जो तुमने की है?

ससरो सासु मात तातनी जी, कांई तमे लोपी छे लाज।

तमे सरम न आणी केहेनी, तमे ए सूं कीधूं आज॥८॥

सास-ससुर, माता-पिता की गरिमा को तुमने पूर्णतया ध्वस्त कर दिया है। तुमने आज यह क्या कर दिया?

तुमने तो किसी के भी कहने की लाज नहीं रखी।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण में "कहने" (मना करने की लाज न रखने) का आशय यह है कि जब सखियाँ घरों से निकल रहीं थीं, तो उनके सास-ससुर और माता-पिता ने उन्हें मना किया था कि मत जाओ। लेकिन सखियाँ सारे बन्धनों को तोड़कर आ गयीं। उपरोक्त कथन में यही बात व्यंग्यात्मक दृष्टि से कही जा रही है कि सभी सम्माननीय सम्बन्धियों की अवहेलना करके मेरे पास क्यों आयी हो?

तमे पति तो तमारा ऊभा मूकिया जी, कांई रोता मूक्या बाल।  
 ए वचन सुणीने विनता टलवली, कांई भोम पडियो तत्काल॥९॥  
 तुमने तो अपने पति को खड़े-खड़े ही छोड़ दिया। रोते हुए बालकों की जरा भी चिन्ता नहीं की और उन्हें छोड़

दिया। श्री राज जी के ऐसे वचनों को सुनकर सखियाँ तड़पने लगीं और कुछ बेसुध होकर उसी समय धरती पर गिरने लगीं।

**भावार्थ-** "खड़े-खड़े छोड़ देना" एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ होता है, पूर्णतया निरर्थक समझकर किसी का परित्याग कर देना। बाँसुरी की आवाज सुनने के पश्चात् सखियों के एकमात्र लक्ष्य श्री राज जी ही थे। उस समय उन्हें सांसारिक सम्बन्धियों के प्रति जरा भी मोह नहीं रह गया था। यही कारण है कि उन्होंने अनायास ही सबका परित्याग कर दिया। इसी को खड़े-खड़े छोड़ देना कहा है।

तेमां केटलीक सखियो ऊभी रहियो, कांई द्रढ़ करीने मन।  
बाई वांक हसे जो आपणों जी, तो वालोजी कहे छे वचन॥१०॥

उनमें से कुछ सखियाँ ही अपने मन को दृढ़ करके खड़ी रह पायीं। वे कहने लगीं— हे सखी! हमसे कुछ भूल हुई है, तभी धाम धनी हमसे इस प्रकार की बातें कर रहे हैं।

वचन वाले सामा तामसियो, राजसियो फडकला खाय।  
स्वांतसिए बोलाए नहीं, ते तां पडियो भोम मुरछाय॥११॥  
तामसी सखियाँ प्रियतम के वचनों का उत्तर दे रही हैं।  
राजसी सखियाँ तड़प रही हैं। सात्विकी सखियाँ मूर्च्छित होकर पड़ी हुई हैं, इसलिये वे बोल नहीं पा रही हैं।

एणे समे मही सखी ऊभी रही, कहे सांभलो धणी ना वचन।  
सखियो कुलाहल तमे कां करो जी, कांई ऊभा रहो द्रढ करी मन॥१२॥  
इस समय मान वाली इन्द्रावती सखी ही खड़ी रही। वह अन्य सखियों से कहने लगी कि तुम इतना कोलाहल

क्यों कर रही हो? जरा प्रियतम के वचनों को तो सुनो कि वे क्या कह रहे हैं? अपने मन को दृढ़ करके खड़ी तो रहो।

सखियो भूला छूं घणवे आपण जी, अने वली कीजे सामा रुदन।  
कलहो करो भोमे पडो जी, कां विलखाओ वदन॥१३॥  
सखियों! हमने कहीं न कहीं बहुत अधिक भूल की है।  
पुनः प्रियतम के सामने क्यों रो रही हो? उनसे विवाद भी करती हो और धरती पर मूर्च्छित होकर अपने शरीर को दुःखी क्यों करती हो?

पिउजी पधारया प्रभातमां, आपण आव्या छूं अत्यारे।  
ते पण तेडीने वाले काढियां, नहीं तो निसरतां नहीं क्यारे॥१४॥  
प्रियतम गाय चराने के लिये प्रातःकाल निकले थे,

जबकि हम सब तो अभी इस समय आयी हैं। उसमें भी प्रियतम ने बाँसुरी बजाकर हमें ब्रज से बुलाया है, अन्यथा हम किसी भी तरह से घर से निकल नहीं सकती थीं।

**भावार्थ-** इस चौपाई का कथन इस सन्दर्भ में कहा गया है कि जब बाँसुरी बज रही थी, तो उस समय सखियों को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे बाँसुरी के स्वरों में धाम धनी एक-एक सखी का नाम लेकर बुला रहे हों।

**पाछल आपण केम रहूं, जो होय कांई वालपण।**

**केम न खीजे वालैयो, ज्यारे सेवा भूल्यां आपण॥१५॥**

यदि हमारे अन्दर अपने प्राणेश्वर के प्रति पूर्ण प्रेम होता, तो हम उनके प्रति प्रेम और समर्पण में इस तरह से पीछे क्यों रहतीं? जब हमसे उनके प्रति प्रेम-सेवा में चूक

हुयी है, तो ऐसी अवस्था में वे हमसे नाराज क्यों न हों?

**भावार्थ-** चौपाई के उपरोक्त कथन में श्री इन्द्रावती जी को ५२ दिन पूर्व की वह घटना याद आ रही है, जब धाम धनी के द्वारा वृन्दावन में चलने के लिये कहने पर सबने पारिवारिक समस्याओं का वास्ता देकर मना कर दिया था।

वालाजी केहेवुं होय ते केहेजो, कांई अमने निसंक।

अमे तम आगल ऊभा छूं, कांई रखे आणो ओसंक॥१६॥

श्री इन्द्रावती जी धाम धनी से कहती हैं कि मेरे प्राणेश्वर! आपको जो कुछ कहना हो, आप निःसंकोच कहिये। मैं आपके सामने ही खड़ी हूँ। आप मेरे प्रति किसी तरह की आशंका न रखें।

सखियो तम माटे हूं एम कहूं, कांई तमारा जतन।

रखे कोई तमने वांकू कहे, त्यारे दुःख धरसो तमे मन॥१७॥

श्री राज जी कहते हैं कि हे सखियों! इसलिए तुम्हारी भलाई को ध्यान में रखकर ही मैं इस तरह की बातें कह रहा हूँ, जिससे तुम्हें कोई अधर्मी (मिथ्याचारी) न कहे, क्योंकि इससे तुम्हारा मन दुःखी होगा।

सखियो तमे जेम घर ऊभां मूकियां, तेम माणस न मूके कोय।

एम व्याकुल थई कोई न निसरे, जो गिनान रूदेमां होय॥१८॥

हे सखियों! तुमने जिस तरह से इतनी सरलता से घर को छोड़ दिया, कोई भी विवेकवान व्यक्ति इतनी सरलता से नहीं छोड़ेगा। जिसके हृदय में ज्ञान होता है, वह कभी भी तुम्हारी तरह व्याकुल होकर इस तरह से घर को नहीं छोड़ सकता।



सखियो तमे पाछां वलो, अधखिण म लावो वार।

मनडे तमारे दया नहीं, घेर टलवले छे बाल॥१९॥

हे सखियों! अब आधे क्षण की भी देर किये बिना तुम घर वापस लौट जाओ। ऐसा लगता है कि तुम्हारे मन में दया है ही नहीं। घर पर तुम्हारे बच्चे रो रहे हैं, उनको छोड़कर तुम कैसे चली आयी हो?

ए धरम नहीं नारी तणोजी, हूं कहूं छूं वारंवार।

हवे घरडे तमारे सिधाविए जी, घेर वाटडी जुए भरतार॥२०॥

मैं बार-बार यह कह रहा हूँ कि यह सच्ची नारी का धर्म नहीं है। अब तुम्हें अपने घर लौट जाना चाहिए। घर पर तुम्हारे पतिदेव तुम्हारी बाट देख रहे हैं।

वालैया हजी तमारे केहेवुं छे, के तमे कहीने रह्या एह।

ते सर्वे अमे सांभल्युं जी, तमे कहुं जुगते जेह॥२१॥

श्री इन्द्रावती जी कहते हैं कि हे धनी ! अभी आपको कुछ कहना है या आपने अपनी सारी बात कह ली। आपने जो कुछ भी प्रवचन दिया है, उसे हमने अच्छी तरह से सुन लिया है।

सखियो हजी मारे केहेवुं छे, तमे श्रवणा देजो चित।

मरजादा केम मूकिए, आपण चालिए केम अनित॥२२॥

श्री राज जी उत्तर देते हैं कि हे सखियों ! अभी मुझे बहुत कुछ कहना है, तुम ध्यानपूर्वक उसे सुनो। किसी को भी धर्म की मर्यादा नहीं छोड़नी चाहिए और हमें किसी भी स्थिति में अधर्म की राह नहीं अपनानी चाहिए।

हवे वली कहूं ते सांभलो, कांई मोटूं एक दृष्टांत।

वेद पुराणे जे कह्यूं, कांई तेहेनूं ते कहूं वृतांत॥२३॥

अब मैं पुनः तुम्हें एक बहुत अच्छा दृष्टान्त देकर कह रहा हूँ, उसे सुनो। वेद-पुराणों में जो कुछ कहा है, मैं उसके आशय (अभिप्राय) के अनुसार यह बात कह रहा हूँ।

भवरोगी होय जनमनो, जो एहेवो होय भरतार।

तोहे तेने नव मूकवो, जो होय कुलवंती नार॥२४॥

यदि अपना पति जन्म से ही रोग-ग्रस्त हो, तो जो कुलीन नारी होती है, वह उसे इस अवस्था में भी नहीं छोड़ती।

**भावार्थ-** कुलीन नारी का तात्पर्य यह है कि उच्च कुल और उच्च संस्कार में पली-बढ़ी नारी। श्री राज जी

व्यंग्यात्मक भाषा में यह बात दर्शा रहे हैं कि तुम्हें अपने पतियों को छोड़कर मेरे पास नहीं आना चाहिए था , क्योंकि तुम कुलीन नारी हो। परोक्ष रूप से धाम धनी उन्हें उस बात की याद दिला रहे हैं, जो उन्होंने ५२ दिन पहले कही थी कि हम कुलीन नारी हैं। भला हम अपने पतियों और घरों को छोड़कर आपके साथ वृन्दावन कैसे चल सकती हैं?

**जो पति होय आंधलो, अने वली जड होय अपार।**

**तोहे तेने नव मूकवो, जो होय कुलवंती नार।।२५।।**

यदि पति अन्धा हो और अति मूर्ख हो , तो भी कुलीन नारी का यह कर्त्तव्य होता है कि उसका परित्याग न करे।

जो पति होय कोढियो, अने कलहो करे अपार।

तोहे तेने नव मूकवो, जो होय कुलवंती नार॥२६॥

यदि पति कोढ़ी हो और दिन-रात विवाद (झगड़ा) ही करता रहे, तो भी जो स्त्री कुलीन होती है, वह अपने पति का परित्याग नहीं करती।

जो पति होय अभागियो, अने जनम दलिद्री अपार।

तोहे तेने नव मूकवो, जो होय कुलवंती नार॥२७॥

यदि पति भाग्यहीन हो और जन्म से ही अति दरिद्र (कंगाल) हो, तो भी कुलीन नारी इस अवस्था में भी उसका परित्याग नहीं कर सकती।

जो पति होय पांगलो, बीजा अवगुण होय अपार।

तोहे तेने नव मूकवो, जो होय कुलवंती नार॥२८॥

यदि पति लंगड़ा हो तथा उसमें अनन्त प्रकार के अवगुण भी भरे हों, फिर भी एक कुलीन स्त्री का कर्तव्य है कि वह अपने पति से सम्बन्ध न तोड़े।

खोड होय भरतारमां, अने मूरख होय अजाण।

तोहे तेने नव मूकवो, एम कहे छे वेद पुराण॥२९॥

यदि पति पुरुषत्वहीन हो, तथा अज्ञानी एवं अतिमूर्ख हो, तो भी कुलीन स्त्री को उसका परित्याग नहीं करना चाहिए। ऐसा वेद-पुराणों अर्थात् धर्मग्रन्थों में कहा गया है।

ते माटे हूं एम कहूं, जे नव मूकवो पत।

ततखिण तमे पाछा वलो, जो रूदे होय कांई मत॥३०॥

इसलिये हे सखियों ! मैं तुम सबसे यह बात कह रहा हूँ  
कि अपने पतियों को मत छोड़ो। यदि तुम्हारे हृदय में  
जरा भी बुद्धि है, तो इसी क्षण अपने घर लौट जाओ।

हवे साथ कहे अमे सांभल्या, कांई तमारा वचन।

हवे अमे कहूं ते सांभलो, कांई द्रढ करीने मन॥३१॥

अब सखियाँ कहती हैं कि आपने जो इतना बड़ा प्रवचन  
दिया है, उसे हमने अच्छी तरह से सुन लिया है। अब  
हम जो कुछ कह रही हैं, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनिये।

पति तो वालैयो अमतणो, अमे ओलखियो निरधार।

वेण सांभलतां तमतणी, अमने खिण नव लागी वार॥३२॥

हमने निश्चित रूप से पहचान लिया है कि हमारे प्रियतम तो एकमात्र आप ही हैं। इसलिये जैसे ही आपने बाँसुरी बजाई, हमने संसार को छोड़ने में एक पल की भी देर नहीं की।

अमे पीहर पख नव ओलखूं, नव जाणूं सासर वेड।

एक जाणूं मारो वालैयो, नव मूकूं तेहेनो केड॥३३॥

न तो हमने अपने मायके की गरिमा नष्ट होने की चिन्ता की और न हमें यह जानने की जरूरत रही कि ससुराल की मर्यादा क्या होती है? हम तो एकमात्र आप प्रियतम को ही जानते हैं और हम किसी भी प्रकार से आपका दामन नहीं छोड़ सकते।



पति तो केमे नव मूकवो, तमे अति घणूं कहुं रे अपार।

तमे साख पुरावी वेदनी, त्यारे केम मूकूं आधार॥३४॥

कुलीन स्त्री को चाहिये कि वह किसी भी स्थिति में अपने पति को न छोड़े। इस विषय पर आपने अनेक प्रकार के कथनों से इतना बड़ा प्रवचन दे डाला। इसके लिये आपने वेदों की साक्षी भी दे दी है। ऐसी स्थिति में आप ही बताइये कि अपने जीवन के आधार आप प्राणेश्वर को पाकर, भला हम आपको कैसे छोड़ सकती हैं?

तमे कहुं पति नव मूकवो, जो अवगुण होय रे अपार।

तमे रे तमारे मोहें कहुं, तमे न्याय रे कीधो निरधार॥३५॥

आपने अपने प्रवचन में कहा कि भले ही अपने पति में अनन्त अवगुण क्यों न हों, फिर भी कुलीन स्त्री को

चाहिये कि वह उसे न छोड़े। निश्चित रूप से आपने अपने ही मुख से हमारे पक्ष में इसका निर्णय भी कर दिया है।

अवगुण पति नव मूकवो, तो गुण धणी मूकिए केम जी।

तममां अवगुण किहां छे, तमे कां कहो अमने एम जी॥३६॥

आपके कथनानुसार जब गुणों से हीन पति को नहीं छोड़ना चाहिए, तो आप ही बताइये कि आप जैसे सर्वगुण सम्पन्न प्रियतम को हम कैसे छोड़ सकती हैं? भला आप में क्या अवगुण है? इस तरह के विचलित करने वाले वचन आप हमसे क्यों कहते हैं?

एवा हलवा बोल न बोलिए, हूं वारूं छू तमने।

ए वचन केहेवा नव घटे, कांई एम केहेवुं अमने॥३७॥

मैं आपको मना करती हूँ कि आपको हमारे प्रति इस

तरह की हल्की भाषा नहीं कहनी चाहिए। आपको हमसे ऐसा कहना उचित नहीं है। पुनः आप हमारे प्रति ऐसे शब्दों का प्रयोग क्यों करते हैं?

अमे तो आव्या आनंद भरे, कांई तमसुं रमवा रात जी।

एवा बोल न बोलिए, अमने दुख लागे निघात जी॥३८॥

हम तो रात्रि के इस समय, आपसे रास क्रीड़ा करने की आशा से, अति आनन्दपूर्वक आपके पास आयी हैं। आप हमसे इतनी रूखी बातें न कहिये? ऐसी कठोर बातों को सुनकर हमें बहुत दुःख होता है।

अमे किहां रे पाछां वली जाइए, अमने नथी बीजो कोई ठाम जी।

कहो जी अवगुण अमतणां, तमे कां कहो अमने एम जी॥३९॥

अब आप ही बताइये कि हम पुनः वापस लौटकर कहाँ

जाएँ? आपके अतिरिक्त हमारा कोई दूसरा आश्रय स्थान ही नहीं है। यदि आप हमें स्वीकार नहीं करना चाहते, तो यह बताइये कि हमारा अवगुण क्या है? आप हमसे वापस लौट जाने के लिये क्यों कहते हैं?

अमे तम विना नव ओलखूं, बीजा संसार केरा सूल जी।  
चरणे तमारे वालैया, कांई अमारा छे मूलजी॥४०॥

हम आपके अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं जानती हैं? आपके अतिरिक्त संसार का प्रत्येक सम्बन्धी दुःख ही देने वाला है। हमारे प्राण प्रियतम! हमारा मूल आधार तो एकमात्र आपके चरणों में ही है।

फल रोप्यो आंबो तमतणो, वाड कांटा कुटुंम पाखल।  
बीजो झांपो रखोपुं करे, कांई स्यो रे सनमंध तेसुं फल॥४१॥

आपने ही मधुर आम के वृक्षों का बाग लगाया है। उसके चारों ओर कुटुम्ब-परिवार रूपी काँटों की बाड़ लगा दी है। अन्य सम्बन्धी तो मात्र रक्षा करने के लिये हैं। भला उनका आम के फल से क्या सम्बन्ध है?

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई में उपमा अलंकार के माध्यम से ब्रह्मसृष्टियों के इस नश्वर जगत के सम्बन्धों का स्पष्टीकरण दिया गया है। अक्षरातीत के आदेश से इस खेल में आना आम के वृक्ष का लगाना है। जिन तनों में उनकी सुरता विद्यमान है, उनकी सुरक्षा करना पारिवारिक सम्बन्धियों का उत्तरदायित्व है। किन्तु उन तनों में विद्यमान आत्माओं का एकनिष्ठ प्रेम मात्र अक्षरातीत के लिये है, क्योंकि उनसे उनका अटूट सम्बन्ध है। सखियाँ यही बात कहना चाह रही हैं कि हमारा वास्तविक प्रेम तो आपसे है। माता-पिता, सास-

ससुर, तथा पति तो मात्र सांसारिक सम्बन्धों के निर्वाह के लिये हैं।

फूल फूल्या जेम वेलडी, ते तां विकसे सदा रे सनेह।

वछूटे ज्यारे वेलथी, त्यारे ततखिण सूके तेह॥४२॥

जिस प्रकार किसी लता में लगा हुआ फूल उसके सम्बन्ध से हमेसा खिला रहता है, किन्तु जिस क्षण वह लता से अलग होता है, उसी क्षण वह सूख जाता है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में सखियों ने स्वयं को खिला हुआ फूल माना है तथा अक्षरातीत की सान्निध्यता को लता माना है। वे यह बात दर्शाना चाह रही हैं कि हे प्राणेश्वर! आप ही हमारे जीवन के सर्वस्व हैं। जिस प्रकार लता से अलग होकर फूल मुरझा जाता है, उसी प्रकार आपसे अलग होकर हमारा भी अस्तित्व समाप्त हो

जाएगा।

जीव अमारा तम कने, कांई चरणे वलगां एम।

फूल तणी गत जाणजो, ते अलगां थाय केम॥४३॥

आपके चरण रूपी लता से हमारा जीव रूपी फूल लिपटा हुआ है। आप फूल की स्थिति तो जानते ही हैं। भला वह लता से कैसे अलग हो सकता है?

तेम जीव अमारा बांधिया, जेम पडिया मांहे जाल।

खिण एक सांमू नव जुओ, तो पिंडडा पडे तत्काल॥४४॥

उसी प्रकार आपके चरणों की प्रेम रूपी जाल (बेल) से हमारा जीव रूपी फूल भी बँधा है। यदि एक क्षण के लिए भी आप हमें दिखायी नहीं देंगे, तो उसी क्षण हमारा शरीरान्त हो जाएगा।

**द्रष्टव्य-** यद्यपि योगमाया के ब्रह्माण्ड में मृत्यु नहीं हो सकती, किन्तु विरह के भावों को ऐसी ही भाषा में व्यक्त किया जाता है। शरीर का धरती पर गिर जाने का तात्पर्य, मूर्च्छित हो जाना (चेतना-शून्य हो जाना) भी होता है।

**जीव अमारा चरणे तमतणे, ते अलगां थाय केम।**

**जल मांहे जीव जे रहे, कांई मीन केरा वली जेम॥४५॥**

जिस प्रकार जल में रहने वाली मछली जल से अलग नहीं हो सकती, उसी प्रकार हमारा जीव भी आपके चरणों में है। वह आपसे अलग कैसे हो सकता है?

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाइयों (४३, ४४, ४५) में आत्मा के स्थान पर जीव के बारम्बार प्रयोग से यह संशय होता है कि ऐसा क्यों किया गया है?



इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि परमधाम की आत्मायें ब्रज में जीवों पर बैठकर माया का खेल देख रही थीं। तारतम ज्ञान का प्रकाश न होने से ब्रह्मात्माओं को जीव और आत्मा के भेद का पता नहीं था। इसलिए ब्रज में जिस जीव भाव की प्रबलता थी, उसका प्रभाव रास में देखने को मिल रहा है, क्योंकि आत्माओं के साथ ब्रज वाले जीव रास में भी थे।

वाला तमे अमसूं एम कां करो, अमे वचन सह्या नव जाय।

खिण एक सामूं नव जुओ, तो तरत अदृष्ट देह थाय॥४६॥

प्राण प्रियतम! आप हमारे साथ इस तरह निष्ठुर व्यवहार क्यों कर रहे हैं? आपके ये रूखे वचन हमसे सहे नहीं जा रहे हैं। यदि आप एक क्षण के लिये भी हमें दिखायी न पड़ें, अर्थात् अलग हो जाएं, तो उसी क्षण हमारा शरीर

छूट जाएगा।

निखर अमारी आतमा, अने निठुर अमारा मन।

कठण एवां तमतणां, अमे तो रे सह्यां वचन॥४७॥

हमारी आत्मा कठोर है और हमारा मन निष्ठुर है। यही कारण है कि आपके इतने कठोर वचनों को हम सहन कर पा रहे हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई में यह जानने की जिज्ञासा होती है कि आत्मा को यहाँ कठोर क्यों कहा गया है? क्या आत्मा में कठोरता का दोषारोपण वाणी के सिद्धान्तों के विपरीत नहीं है? यह दोष तो जीव में हो सकता है, आत्मा में नहीं।

उपरोक्त जिज्ञासा का समाधान यह है कि सखियों में कालमाया के जीवों वाला संस्कार अभी बना हुआ था।

एकत्व (वहदत) का जो रस परमधाम में होता है, वह कालमाया या योगमाया के ब्रह्माण्ड में नहीं होता। इसलिये प्रेमी और प्रेमास्पद (आसिक और मासूक) के बीच प्रेम की अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में जो झिक-झिक (प्रेममयी विवाद या नोंक-झोंक) होती है, वह स्वाभाविक ही है। इस अवस्था में दार्शनिक तथ्य पीछे छूट जाते हैं और भावों की अभिव्यक्ति ही अग्रणी हो जाती है। आत्मा को कठोर कहने का यही आशय है।

**अम मांहे कांई अमपणूं, जो होसे आ वार।**

**तो वचन एवां तमतणां, अमे नहीं रे सांभलूं निरधार॥४८॥**

यदि इस समय हमारे अन्दर कुछ भी स्वाभिमान होता, तो आपके इतने रूखे वचनों को हम कभी भी सुन नहीं सकती थीं।

**भावार्थ-** सखियों ने अपना सर्वस्व अपने प्रियतम के प्रति सौंप दिया था। समर्पण की इस अवस्था में प्रियतम के कठोर वचनों का प्रतीकार हो पाना सम्भव नहीं होता, क्योंकि अपना अस्तित्व हो तब तो प्रतीकार हो। उपरोक्त चौपाई के पहले चरण में स्वाभिमान (स्वयं के अस्तित्व का भान) न होने का यही आशय है।

**सखिएं मनमां वचन विचारियां, कांई प्रेम वाध्यो अपार।  
जोगमाया अति जोर थई, कांई पाछी पडियो तत्काल॥४९॥**

जब सखियाँ अपने मन में इस प्रकार की बातें सोच ही रही थीं, उसी समय योगमाया का प्रभाव अत्यधिक बढ़ा, जिससे उनके हृदय में अपार प्रेम उमड़ने लगा। प्रेम की भावुकता के कारण, बहुत-सी सखियाँ उसी समय मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं।

**भावार्थ-** तारतम वाणी में अनेक स्थानों पर योगमाया का प्रसंग आया है-

जोगमाया में बाढ़यो आवेस, सुध नहीं दुख सुख लवलेस।

प्र. हि. ३७/४०

पीछे जोगमाया को भयो पतन, तब नींद रही अछर सैंयन।

प्र. हि. ३७/४८

जोगमाया कर रास जो खेले, कई सुख साथ लिए पिउ भेले।

प्र. हि. १०/११

आनन्दकारी जोगमाया, अविनासी उत्पन।

क. हि. २०/१०

तार्थे कालमाया जोगमाया, दोऊ पल में कई उपजत।

क. हि. २४/१२

जोगमाया तो माया कही, पर नेक न माया इत।

क. हि. २४/११

उपरोक्त सन्दर्भों से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ अक्षर ब्रह्म अपने अन्तःकरण की आह्लादिनी शक्ति (चैतन्य प्रकृति) के साथ क्रीड़ा करते हैं, उसे योगमाया का ब्रह्माण्ड कहते हैं। केवल ब्रह्म आनन्द की भूमिका है, इसलिये उसमें स्वाभाविक रूप से प्रेम और आनन्द की लीला होती है। प्रेम में कभी हास नहीं होता, बल्कि इसमें नित्य नवीनता और वृद्धि होती रहती है। इसी आधार पर रास लीला से पूर्व सखियों के हृदय में अपार प्रेम की बाढ़ आ गयी, जिसे उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण में दर्शाया गया है।

ततखिण वाले उठाडियो, कांई आवीने लीधी अंग।

आनंद अति वधारियो, कांई सोकनो कीधो भंग॥५०॥

उसी क्षण प्रियतम ने आकर मूर्च्छित पड़ी हुई सखियों को उठाया और उन्हें गले लगाया, जिसके परिणाम स्वरूप उनका शोक दूर हो गया और उनके आनन्द में अपार वृद्धि हो गयी।

वालोजी कहे छे वातडी, तमे सांभलजो सहु कोय।

में जोयूं तमारूं पारखूं, रखे लेस मायानो होय॥५१॥

श्री राज जी कहते हैं कि हे सखियों! तुम सभी मिलकर यह बात सुनो। मैं तो ऐसा कहकर तुम्हारी परीक्षा ले रहा था कि कहीं तुम्हारे अन्दर अभी माया की थोड़ी सी भी चाहत तो नहीं बची है।

ओसीकल वचन वाले कहा, कांई ते में न कहेवाय।

सुकजीए निरधारियूं छे, पण ते में लख्यूं न जाय॥५२॥

धाम धनी ने हमें लज्जित करने वाली जो बातें कही हैं, उनका वर्णन करने में मैं पूर्णतया असमर्थ हूँ। शुकदेव जी ने तो उन वचनों का कुछ वर्णन भी कर दिया है, लेकिन मैं तो उन्हें लिख भी नहीं सकती।

**भावार्थ-** भागवत् १०/२९/१८-२७ में शुकदेव जी ने श्री राज जी के द्वारा गोपियों को कहे हुए उथले वचनों का वर्णन किया है।

ए वचन श्रवणे सुणी, कांई मनडां थयां अति भंग।

वाला एम तमे अमने कां कहो, अमे नहीं रे खमाय अंग॥५३॥

श्री राज जी के वचनों को सुनकर सखियों के मन बहुत दुःखी हो गये थे। वे कहने लगीं कि हे धाम धनी! आप इस तरह के रूखे वचन हमसे क्यों कहते हैं? हमारे हृदय में उसे सहन करने की शक्ति नहीं है।



कलकलती कंपमान थैयो, कांई ततखिण पडियो तेह।

आवीने उछरंगे लीधियो, कांई तरत वाध्यो सनेह॥५४॥

विलख-विलख कर रोती हुई तथा थर-थर काँपती हुई कुछ सखियाँ, उसी क्षण मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। श्री राज जी ने आकर उन्हें प्रेमपूर्वक उठाया, जिससे उनके हृदय में तुरन्त प्रेम-रस का संचार हो गया।

आंखडिए आंसू ढालियां, तमें कां करो चितनो भंग।

आंसूडां लोऊं तमतणां, आपण करसूं अति घणू रंग॥५५॥

सखियों की आँखों से आँसू बह रहे हैं। श्री राज जी उनके आँसुओं को पोंछते हुए अति प्रेम भरे शब्दों में कहते हैं कि तुम अपने मन को इतना दुःखी क्यों कर रही हो? हम सब मिलकर अति आनन्दमयी रास की लीला करेंगे।

सखियो पूरूं मनोरथ तमतणां, कांई करसूं ते रंग विलास।

करवा रामत अति घणी, में जोयूं मायानो पास॥५६॥

हे सखियों! मैं तुम्हारे प्रेम की चाहत को अवश्य पूर्ण करूँगा। मैं तुम्हारे साथ रास की अति आनन्दमयी लीला करूँगा। रास की अत्यधिक आनन्दमयी लीला करने के लिये ही, मैंने निष्ठुर (उथले) वचनों को कहकर तुम्हारी परीक्षा ली थी कि तुम्हारे अन्दर अभी माया है या नहीं।

**भावार्थ—** जिस प्रकार योगमाया के ब्रह्माण्ड में सखियों के साथ रास तभी सम्भव हो सकी, जब उन्होंने अपने सगे-सम्बन्धियों तथा तृष्णाओं को छोड़कर एकमात्र श्री राज जी से ही प्रेम किया। उसी प्रकार इस जागनी ब्रह्माण्ड में जागनी रास तभी खेली जा सकती है, अर्थात् हमारी आत्मा तभी जाग्रत हो सकती है, जब हमारा प्रथम प्रेम केवल श्री राज जी के लिए हो। युगल स्वरूप

को अपने धाम हृदय में बसाये बिना आत्म-जाग्रति की कल्पना ही नहीं की जा सकती और इसका एकमात्र साधन चितवनि ही है।

सखियो वृन्दावन देखाडूँ तमने, चालो रंग भर रमिए रास।

विविध पेरेनी रामतो, आपण करसूँ मांहों-मांहें हांस॥५७॥

सखियों! चलो, मैं तुम्हें पहले वृन्दावन दिखाता हूँ। इस वृन्दावन में अनेक प्रकार की रामतों के द्वारा हम आनन्दपूर्वक रास की क्रीड़ा करेंगे। इसमें हम आपस में प्रेम भरी हँसी की लीला भी करेंगे।

तमे प्राणपे मूने वालियो, जेम कहो करूँ हूँ तेम।

रखे कोई मनमां दुख करो, कांई तमे मारा जीवन॥५८॥

तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी हो। एकमात्र तुम्हीं

मेरे जीवन का आधार हो। मेरी रूखी बातों से तुम किसी भी प्रकार दुःखी न हो। तुम जैसा कहो, मैं वैसा ही करने के लिए तैयार हूँ।

**भावार्थ-** यदि रास मण्डल में कहे हुए श्री राज जी के इन कथनों को हम आत्मसात् कर लें, तो इस जागनी ब्रह्माण्ड में अक्षरातीत से भयभीत होते रहने एवं दासत्व भावना वाले बन्धन की बेड़ियाँ टूट जाएँगी। तभी हम नवधा भक्ति को छोड़कर, चितवनि के द्वारा, परमधाम के प्रेम मार्ग का अनुसरण करेंगे और आत्म-जाग्रति के मार्ग पर चल सकेंगे।

**प्रकरण ॥९॥ चौपाई ॥३७५॥**

## वृन्दावन देखाड्यूं छे – राग धन्या श्री

इस प्रकरण में वृन्दावन की अनुपम शोभा का वर्णन किया गया है।

जीवन सखी वृन्दावन रंग जोइएजी, जोइए अनेक रंग अपार।

विगते वन देखाडूं तमने, मारा सुंदरसाथ आधार॥१॥

श्री राज जी कहते हैं कि मेरी जीवन स्वरूपा , हे सखियों! तुम वृन्दावन की अनुपम सुन्दरता को देखो। इसमें अनेक प्रकार के अनन्त वृक्षों एवं लताओं की संख्या हैं। तुम मेरी प्राणेश्वरी हो। अब मैं तुम्हें अच्छी तरह से इस वृन्दावन की शोभा को दिखाता हूँ।

आंबा आंबलियो ने आसोपालव, अंजीर ने अखोड।

अननास ने आंबलियो दीसे, चारोली चंपा छोड॥२॥

इस वृन्दावन में आम , इमली, अशोक, अंजीर, अखरोट, अन्नानास, चिरौंजी, और चम्पा के वृक्षों की भी शोभा को देखो।

**साग सीसम ने सेमला सरगू, सरस ने सोपारी।**

**सूफ सूकड ने साजडिया, अगर ऊंचो अति भारी॥३॥**

इसमें सागौन , शीशम, सेमल, सुहांजना, सिरस, सुपारी, सौंफ, चन्दन, गुलमोहर, और अर्जुन के अति ऊँचे तथा भारी वृक्षों को देखो।

**वड पीपल ने वांस वेकला, बोलसरी ने वरणा जी।**

**केवडी केल कपूर कसूंबों, केसर झाड अति घणा जी॥४॥**

वट, पीपल, बाँस, बकुल, मौलिश्री, अरहर, केवड़ा, केला, कपूर, कुसुम, और केशर के बहुत घने अति

सुन्दर पौधों को देखो।

मेहेदी नेवरी ने मलियागर, दाडम डोडंगी ने द्राख।

बीयो बदाम ने बीली बिजोरो, रुद्राख ने भद्राख॥५॥

मेंहदी, दालचीनी, मलयागिरी, चन्दन, अनार, जीवन्ती (एक लता), अंगूर, बीयो, बादाम, बेल, बिजोरा, नींबू, रुद्राक्ष, तथा भद्राक्ष के वृक्ष हैं।

पीपली पारस ने पारजातक, साले ने सीसोटा जी।

फणस तूत ने तीन तेवरियां, ताड छे अति मोटा जी॥६॥

छोटा पाकड़, पारस, कल्प वृक्ष, साल, सिसोटा, कटहल, और शहतूत हैं, तो ककड़ी, खीरा, और फूट (तीन तेवरिया) जैसे लताओं के पौधे भी हैं। इसके अतिरिक्त ताड़ जैसे बहुत बड़े-बड़े वृक्ष भी हैं।

रायण रोड़ण ने रामण रायसण, लिंबडा लिंबोई लवंग।

तज तलसी ने आदू एलची, वाले अति सुगंध॥७॥

वहाँ खिरनी, रोड़ण, रामफल, रायसण, नीम, नींबू, और लौंग के वृक्ष हैं। इसके अतिरिक्त तेजपात, तुलसी, अदरक, और इलायची आदि के अति सुगन्धित पौधे हैं।

केवडो काथो ने कपूर काचली, भरणी ने भारंगी।

सेवण सेरडी सूरण सिगोंटी, नालियरी ने नारंगी॥८॥

केवड़ा, कत्था (खैर), कपूर, काचली (एक प्रकार की ककड़ी), तोरई, भारंगी (अष्ट वर्ग की एक औषधि), सेवण (सवां की तरह की एक घास), गन्ना, सूरन (जिमीकन्द), सिंगोटी (जल फल या सिंघाड़ा), नारियल, एवं सन्तरे के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं।



अरणी ऊंमर वेहेडा दीसे, जांबू ने वली जाल।

गूंदी गूदा गुंगल गंगोटी, गहुला ने गिरमाल॥९॥

अरणी, गूलर, बहेड़ा, जामुन, जाल, गुंदी (गोंदनी),  
नागरमोथा, गुंगल, गंगोटी, गुहला (करोछी), और  
गिरिमाल के वृक्ष हैं।

उंवरो अगथिया ने आंबलियो, अकलकरो अमृत जी।

करमदी ने कगर करंजी, कदम छे अदभुत जी॥१०॥

उंवरो, अगस्त, इमली, आँवला, अकलकरा, अमृत,  
करौंदा, कगर, करञ्ज, और अति सुन्दर लगने वाला  
कदम्ब का वृक्ष शोभायमान हो रहा है।

बूंद बकान ने कोठ करपटा, निगोड ने वली नेत्र।

मरी पानरी ने वली मरुओ, अकोल ने आंकसेत्र॥११॥

बूंद, बकैन, कोठ, करपटा, निगोड, कचमोद, काली मिर्च, पानरी, वन तुलसी, अकोल, तथा आंकसेत्र आदि के पेड़ हैं।

कमलकाकडी ने झाड चीभडी, बोरडी ने वली बहेडा।

हिरवण हीमज हरडे मोटी, मोहोला ने वली महुडा॥१२॥

कमलगट्टा, खरबूजा की बेलें, बेर, बहेड़ा, हिरवणी (कपास की एक जाति), हीमज (छोटी हरड़), बड़ी हरड़, मोहोला, तथा महुआ, आदि के वृक्ष दिखायी दे रहे हैं।

धामणा धावडी ने वरीयाली, सफल जल भोज पत्र।

खसखस फूल दीसे एक जुगते, छोत्रा ऊपर छत्र॥१३॥

धामणा, धवरू, सौँफ, सेव, भोज पत्र, तथा खस खस, आदि के खिले हुए फूल धरती के ऊपर खुले हुए छत्र के समान एक प्रकार की अनुपम शोभा से युक्त दिखायी दे रहे हैं।

माया मस्तकी ने वरस बडबोहोनी, सकरकंद संदेसर।

करोड भरोड ने पलासी, अकथ ने आक सुंदर॥१४॥

माजूफूल, बरछड़ा, बड़बोहोनी, शकरकन्द, पुन्नाग, करकट, भैरव श्रृंगी, पलाश, अकथ, तथा आक के अति सुन्दर पेड़ दिखायी दे रहे हैं।

टेवरू कुंदरू ने कबोई, कांकसी ने कलूंब।

खेजड खजूरी ने खाखरा दीसे, केसू तणी अति लूंब॥१५॥

टेवरू, कुंदरू (गिलोडा), कबोई, कांकसी, कलूंब, खीजड़ा, खजूर, खाखरा, तथा केशू वृक्ष के झुण्ड दिखायी पड़ रहे हैं।

परवती परवाली ने पाडर, पान वेल अति सार।

आल अकोल ने बेर उपलेटा, दुधेला ने देवदार॥१६॥

पर्वती, प्रवाली, पाडर, तथा पान की बेलें बहुत सुन्दर दिखायी दे रही हैं। आल, अकोल, बेर उपलेटा, दुधेला, तथा देवदार के वृक्ष की छवि बहुत ही अलौकिक लग रही हैं।

चंबेली ने चनी चणोठी, चंद्रवंसी चोली ने चीभडी।

गलकी ने गिसोटी गोटा, गुलबांस ने गुलपरी॥१७॥

चमेली, चणक, गुंजा, स्वेतगुंजा, कुमुद, सेम, तारई, भिसोटी, गोटा, गुलछड़ी, और रजनीगन्धा के फूल बहुत ही सुहावने लग रहे हैं।

जाई जुई ने जासू जायफल, जाए ने जावंत्री ।

सूरजवंसी ने सणगोटी, सुआ ने सेवंत्री॥१८॥

जाई, जूही, जासू, जायफल, जाय, जावन्त्री, सूर्यवंशी, सणगोटी, सुआ, तथा सेवंत्री के फूल बहुत अधिक मनमोहक लग रहे हैं।

कोली कालंगी ने कारेली , तुंबडी ने तडबूची।

कोठवडी ने चनकचीभडी, टिंडुरी ने खडबूची॥१९॥

कुष्माण्ड (कुम्हड़ा), कालिंगी (एक प्रकार की ककड़ी), करेला, गोल आकृति वाली लौकी, तरबूज, कोठवड़ी, चना, ककड़ी की जाति की एक बेल , टिण्डोरा, तथा खरबूजे की अति सुन्दर बेलें दृष्टिगोचर हो रही हैं।

गुलाबी ने कफी डोलरिया, दूधेली ने दोफारी।

कमल फूल ने कनीयल केतकी, मोगरेमां झरमरी॥२०॥

गुलाब, कफी डोलरिया, दुधेली, दोफारी, कमलफूल, कनेर, केतकी, मोगरा, तथा झरमरी के अति मनमोहक फूल दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

ओलिया वालोलिया ने परवालिया, इसक फाग वेल सार।  
 आरिया तो अति उत्तम दीसे, जाणे कलंगे रंग प्रातकाल॥२१॥

ओलिया, वालोलिया (एक प्रकार की बेल),  
 परवालिया, लाजवन्ती के फूल बड़े आकर्षक दिख रहे  
 हैं। आरिया (एक प्रकार की ककड़ी) का फूल तो इतना  
 सुन्दर दिखायी दे रहा है कि जैसे प्रातःकाल की लालिमा  
 में कलंगी दिख रही है।

सहेस्त्र पांखडीनो दमणो दीसे, सोवरण फूली मकरंद।  
 वन सिणगार कीधो वेलडिए, जुजवी जुगतना रंग॥२२॥

हजार पंखुड़ी वाला गेंदे का फूल दिखायी दे रहा है,  
 जिसके स्वर्णमयी पराग खिले हुए शोभायमान हो रहे हैं।  
 अलग-अलग रंगों वाली लताओं ने सम्पूर्ण नित्य  
 वृन्दावन का अलग ही श्रृंगार किया है।

साक फल अंन अनेक विधना, कंदमूल मांहे सार।

सारा स्वाद जुजवी जुगतना, वन फलियां रे अपार॥२३॥

अनेक प्रकार के साग, फल, अन्न, और कन्दमूल दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इन सबका स्वाद अलग-अलग प्रकार का आया है। इस तरह नित्य वृन्दावन अति सुन्दर शोभा को धारण किये हुए है।

वन ऊपर वेलडियो चढियो, जो जो ते आ निकुंज।

मंदिर ना जेम जुगतें दीसे, मांहे अनेक विधना रंग॥२४॥

हे साथ जी! इस निकुञ्ज वन की शोभा को देखिये, जिसमें लताओं ने वृक्षों के ऊपर चढ़कर मन्दिरों का रूप धारण कर लिया है। ये मन्दिर इस प्रकार की शोभा में दिखायी दे रहे हैं, जिसमें अनेक प्रकार के रंगों का समावेश हो।



बृध आडी तरवर नी डालो, जुगते वन कुलंभ।

भोम ऊपर ऊभा फल लीजे, एम केटली कहूं एह सनंध॥२५॥

वृक्षों की लम्बी-लम्बी डालियाँ एक दूसरे के ऊपर फैली हुयी हैं। सम्पूर्ण नित्य वृन्दावन नए-नए पत्तों से खिला हुआ दिख रहा है। वृक्षों में फल इतने नीचे हैं कि आप धरती पर से खड़े होकर उन्हें तोड़ सकते हैं। नित्य वृन्दावन की इस प्रकार की अलौकिक छवि का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ?

बीजी विध विधनी वनस्पति मौरी, केटला लऊं तेना नाम।

जमुनाजीना त्रट घणूं रूडा, रूडा मोहोल बेसवा ना ठाम॥२६॥

दूसरी अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ हैं, जिनमें बौर लगी हुयी हैं। उनमें से कितनों का मैं वर्णन करूँ। यमुना जी का तट बहुत ही सुन्दर है। वहाँ किनारे पर बैठने के लिये

फूलों के बहुत सुन्दर-सुन्दर महल बने हुए हैं।

बेहू कांठे वनस्पती दीसे, झलूबे ऊपर जल।

नेहेचल रंग सदा विध विधना, ए वन छे अविचल॥२७॥

यमुना जी के दोनों किनारों पर वृक्षों की डालियाँ जल के ऊपर के आयी हुयी हैं। अनेक प्रकार की वनस्पतियों से भरपूर इस नित्य वृन्दावन की शोभा अखण्ड है तथा यहाँ का आनन्द भी अखण्ड है।

कांठ जल ऊपर वेलडियो, तेमां रंग अनेक।

फूलडे जल छाह्युं छे जुगते, विध विधना विसेक॥२८॥

यमुना जी के दोनों किनारों के जल के ऊपर आयी हुयी वृक्षों की डालियों के साथ अनेक रंगों की लतायें लिपटी हुयी हैं। इन लताओं में अनेक प्रकार की शोभा वाले फूल

जल के ऊपर आये हुए हैं।

जमुनाजी ना जल जोरावर, मध्य वहे छे नीर।

वेहेतां जल वले रे खजूरिया, दरपण रंग जाणो खीर॥२९॥

यमुना जी का जल मध्य में बहुत तीव्र गति से बहता है। बहते हुए जल में भँवरें (गोल चक्र) दिखायी देती हैं। जल का रंग दर्पण की तरह अति श्वेत है।

वृन्दावन फूल्यूं बहु फूलडे, सोभा धरे अपार।

वन फल उत्तम अति घणूं ऊंचा, कुसम तणा वेहेकार॥३०॥

वृन्दावन में अनेक प्रकार के फूल खिले हुए हैं, जिनकी शोभा अनन्त है। ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर अति श्रेष्ठ वन फल लगे हैं। चारों ओर फूलों की सुगन्धि फैली हुयी है।

रेत सेत सोभा धरे, वृन्दावन मंझार।

सकल कलानो चंद्रमा, तेज धरा धरे अपार॥३१॥

वृन्दावन में जमुना जी के किनारे अति श्वेत रेती शोभायमान हो रही है। सम्पूर्ण कलाओं से युक्त चन्द्रमा आकाश में शोभायमान है, जिसका अति सुन्दर स्वर्णिम प्रकाश पृथ्वी पर फैला हुआ है।

**द्रष्टव्य**— यहां पृथ्वी का तात्पर्य केवल—ब्रह्म की भूमिका से है, कालमाया की धरती से नहीं।

गूंजे भमरा स्वर कोयलना, घूमे कपोत चकोर।

सूडा बपैया ने वली तिमरा, रमे ते वांदर मोर॥३२॥

फूलों पर भौरै गुँजार कर रहे हैं। कोयल मधुर स्वरों में बोल रही है। कबूतर और चकोर एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक उड़-उड़ कर घूम रहे हैं। तोता, पपीहा, तथा झींगुर

अपनी मधुर ध्वनि से सम्पूर्ण वातावरण को आनन्दमयी बना रहे हैं। बन्दर और मोर तरह-तरह की क्रीड़ायेँ करते हुए दिखायी दे रहे हैं।

मांहें ते मृग कस्तूरिया, प्रेमल करे अपार।

बीजा अनेक विधना पसु पंखी, ते रमे रामत अति सार॥३३॥

वृन्दावन में कस्तूरी मृगों की अपार सुगन्धि चारों ओर फैली हुयी है। जो दूसरे प्रकार के अन्य पशु-पक्षी हैं, वे भी तरह-तरह की आकर्षक क्रीड़ायेँ करते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

छूटक थड ने घाटी छाया, रमवाना ठाम अति सार।

इंद्रावती बाई अति उछरंगे, आयत करे अपार॥३४॥

वृक्षों के बीच में छोटे-छोटे चबूतरे आये हैं तथा वृक्षों के

नीचे घनी छाया आयी है। सम्पूर्ण वृन्दावन खेलने के लिये बहुत अच्छी जगह है। अपने प्राणेश्वर के साथ अति उमंग भरी क्रीड़ा के लिये श्री इन्द्रावती जी के अन्दर अपार चाहना है।

**आरोग्यां वन फल स्वादे, जल जमुना त्रट सार।**

**वृन्दावन वाले जुगतें देखाड्यूं, आगल रही आधार॥३५॥**

जमुना के किनारे भ्रमण करती हुई सखियों ने जल के साथ वृन्दावन के मधुर फलों का रसास्वादन किया। प्राणाधार श्री राज जी सखियों के आगे-आगे चलकर वृन्दावन को बहुत अच्छी तरह से दिखाते रहे।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण में "रही" शब्द के स्थान में "रहे" शब्द अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि "आगल" और "आधार" शब्द का प्रयोग श्री

राज जी के लिए किया गया है, किसी सखी के लिए नहीं।

यदि "रही" शब्द को ही उपयुक्त माना जाये, तो इसका अभिप्राय यह होगा की धाम धनी सखियों को जितना अधिक वृन्दावन दिखा रहे हैं, उससे भी अधिक देखने की आकांक्षा सखियों के मन में बनी रही है।

एह सरूपने एह वृन्दावन, ए जमुना त्रट सार।

घरथी तीत ब्रह्मांडथी अलगो, ते तारतमे कीधो निरधार॥३६॥

अक्षरातीत के आवेश स्वरूप ने ब्रह्मात्माओं के साथ जिस नित्य वृन्दावन में लीला की, यमुना जी के घाटों की अनुपम शोभा के साथ वह नित्य वृन्दावन परमधाम से भी अलग है तथा कालमाया के इस ब्रह्माण्ड से भी अलग है। वस्तुतः यह स्थान बेहद मण्डल के अन्दर

केवल ब्रह्म की आनन्द योगमाया के अन्दर है। धाम धनी ने तारतम ज्ञान के द्वारा यह स्पष्ट निर्णय दे दिया है।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई से पूर्व श्री राज श्यामा जी तथा सखियों के द्वारा धारण किए गए तनों एवं नित्य वृन्दावन की शोभा का वर्णन किया गया है। यद्यपि वर्तमान समय में न तो रास बिहारी के तन में अक्षरातीत का आवेश है और न ही रास में श्री श्यामा जी या अन्य सखियों की सुरतायें हैं, किन्तु लीला और सौन्दर्य का प्रस्तुतीकरण वर्तमान में ही होता है। इसलिये सर्वत्र श्री राज जी, श्यामा जी और सखियों का वर्णन आया है। उसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस चौपाई के पहले चरण में "एह सरूप ने एह वृन्दावन" कहा गया है।

यथार्थतः आवेश से रहित तन "रूप" ही कहलाएगा "स्वरूप" नहीं। **प्रकरण ॥१०॥ चौपाई ॥४११॥**



## रामत पेहेली – राग कालेरो

"रामत" का तात्पर्य है क्रीड़ा। सच्चिदानन्द परब्रह्म प्रेम और आनन्द रस के अनन्त सागर हैं। स्वलीला अद्वैत परमधाम में श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियाँ एक ही स्वरूप हैं। इसको सागर और लहरों के लौकिक दृष्टान्त से समझा जा सकता है।

यद्यपि सागर और लहर का जल एक समान होता है, किन्तु सागर में अथाह जलराशि होती है, जबकि लहर में सीमित। लेकिन परमधाम के स्वलीला अद्वैत एकत्व (वहदत) में सर्वत्र पूर्णता है। यदि विज्ञान (मारिफत) की दृष्टि से देखा जाये तो अक्षरातीत ही सभी रूपों में क्रीड़ा कर रहे हैं। लहरों की लीला को भी सागर की लीला कहकर परमधाम के अद्वैत को समझने का प्रयास किया जाता है, किन्तु तारतम वाणी के प्रकाश में श्री राज जी

के प्रेम में डुबकी लगाये बिना इस रहस्य को कभी भी जाना नहीं जा सकता।

बाह्य रूप से देखने पर रामतें लौकिक खेल की तरह लगती हैं, किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो यह विदित होगा कि युगल स्वरूप एवं सखियों के बीच जो प्रेम का आदान-प्रदान है, वह इन क्रीड़ाओं के माध्यम से सम्पादित होता है। इन क्रीड़ाओं में हँसना, बोलना, दौड़ना, आलिंगन, चुम्बन, आदि का वर्णन अवश्य मिलेगा, किन्तु वास्तविकता यह है कि अक्षरातीत के हृदय में उमड़ता हुआ प्रेम का सागर इन क्रीड़ाओं के ही माध्यम से अपनी अंगरूपा सखियों के हृदय में संचरित होता है। इसे ही देखने की इच्छा अक्षर ब्रह्म ने की थी, जो महारास के रूप में धाम धनी ने केवल-ब्रह्म में दिखायी।

संक्षेप में महारास की रामतों की कुछ झलक इस प्रकार है।

वाले वेख लीधो रलियामणो, कांई करसूं रंग विलास।  
 आयत छे कांई अति घणी, वालो पूरसे आपणी आस॥  
 सखीरे हम चडी॥१॥

सभी सखियाँ आपस में बातें करते हुए कहती हैं कि हमारे प्राण-वल्लभ ने बहुत ही सुन्दर वस्त्र धारण किया है। अब हम इनके साथ आनन्द की लीलायें करेंगी। प्रियतम के साथ प्रेममयी लीला करने की हमारे मन में अति चाहना है। ऐसा लगता है कि धाम धनी आज हमारी इच्छा को अवश्य पूर्ण करेंगे। सखियों! अब तो हमारे रोम-रोम में अपने प्राणेश्वर के लिए प्रेम का ही जोश समाया हुआ है।

वृन्दावन तो जुगते जोयूं, स्याम स्यामाजी साथ।

रामत करसूं नव नवी, कांई रंग भर रमसूं रास॥२॥

श्री राज जी, श्यामा जी के साथ हमने वृन्दावन को बहुत अच्छी तरह से देख लिया है। अब तो एकमात्र इच्छा है कि हम रास की नई-नई क्रीड़ाएँ करें और प्रेम में विभोर होकर आनन्द में डूब जायें।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण में "रमसूं रास" अर्थात् रास रमण का कथन आया है। वस्तुतः ब्रह्मानन्द में डूबना ही रास रमण करना है। जब आत्मा को अपने प्राणेश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी न दिखायी दे, तो वही रास है। अंगों का स्पन्दन तो मात्र बाह्य क्रीड़ा है। उसका वर्णन इसलिये किया गया है कि जिससे हमारी मानवीय बुद्धि रास लीला के गहन रहस्यों को आत्मसात् कर सके।

सखी मांहों माहें वात करे, आज अमे थया रलियात।

वेख निरखीने नेत्र ठरे, आज करसूं रामत निघात॥३॥

सखियाँ आपस में बातें कर रही हैं – आज तो हम धन्य-धन्य हो गयी हैं। अपने प्राणवल्लभ की अनुपम शोभा को देखकर हमारे नेत्र शीतल हो गये हैं। आज तो हम जी भर कर अपने प्राणाधार के साथ प्रेममयी क्रीड़ाये करेंगीं और अपने हृदय की प्यास बुझायेंगी।

वेख नवानो वागो पेहेरयो, तेड्या वृंदावन।

मस्तक मुकट सोहामणो, वेख ल्याव्या अनूपम॥४॥

देखो! आज प्रियतम ने कितना सुन्दर नया वस्त्र पहना हुआ है, और मस्तक पर अति सुन्दर मुकुट भी धारण कर लिया है। ऐसा लगता है कि उनके मन में भी हमारे साथ रास खेलने की इच्छा है, तभी तो उन्होंने ऐसी

अनुपम छवि धारण की है और बाँसुरी की आवाज से हमें सम्मोहित करके इस वृन्दावन में बुलाया है।

भली भांतना भूखण पेहेरया, वेण रसालज वाय।

साथ सकलमां आवीने ऊभो, करसूं रामत उछाय॥५॥

उन्होंने तरह-तरह के अति सुन्दर आभूषण पहन रखे हैं। हमारा चित्त हरने के लिए अति मीठी बाँसुरी भी बजा रहे हैं और स्वयं हम सबके बीच में आ-आकर खड़े हो जा रहे हैं। अब हमारे लिए सुनहरा अवसर है कि हम उमंग में भरकर उनके साथ प्रेममयी क्रीड़ायें (रामतें) करें।

तेवा भूखण ने तेवो वागो, नटवरनो लीधो वेख।

घणां दिवस रामत कीधी, पण आज थासे वसेख॥६॥

प्राण-प्रियतम ने अति सुन्दर आभूषणों की तरह ऐसे ही सुन्दर वस्त्र भी धारण किया है। उनके द्वारा नटवर (नृत्य एवं अभिनय कला करने वाले) जैसा अति मनमोहक भेष धारण किया गया है। यद्यपि ब्रज में हमने बहुत दिनों (११ वर्ष) तक लीलायें की हैं, किन्तु आज तो विशेष रूप से महारास की ही लीला होगी।

**रास रमवाने वालेजी अमारे, आज कीधो उछरंग।**

**नेणै जोई जोई नेह उपजावे, वारी जाऊं मुखारने विंद॥७॥**

आज महारास खेलने के लिए धाम धनी ने हमारे हृदय में अपार उमंग भर दी है। वे अपने प्रेम भरे नेत्रों से हमारी तरफ बार-बार देख रहे हैं और हमारे हृदय में प्रेम पैदा कर रहे हैं। मैं उनके सुन्दर मुख की मधुर मुस्कान पर न्योछावर हूँ।

सखी इंद्रावती एम कहे, चालो जैए वालाजी ने पास।

कंठ वलाई मारा वालाजी संगे, कीजे रंग विलास॥८॥

इस प्रकार इसी बीच श्री इन्द्रावती जी उन सखियों के पास आकर कहती हैं कि चलो सखियों! हम प्रियतम के पास चलें और उनके गले में बाहें डालकर प्रेम की आनन्दमयी लीलायें करें।

एवी वात सांभलतां वालेजी अमारे, आवीने ग्रही मारी बांहें।

कहो सखी पेहेली रामत केही कीजे, जे होय तमारा चित मांहें॥९॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हम लोगों के बीच में यह बात अभी चल ही रही थी कि श्री राज जी ने सुन ली और हमारे पास आ गए तथा मेरी बाँह पकड़ कर अति प्रेम भरे शब्दों में कहने लगे कि सखी! तुम्हारे मन में जो बात हो उसे तुम बताओ कि सबसे पहले कौन—सी



रामत खेलें?

सखियो मनोरथ होय ते केहेजो, रखे आणो ओसंक।

जेम कहो तेम कीजिए, आज करसूं रामत निसंक॥१०॥

हे सखियों! तुम्हारे मन में जो भी इच्छा हो, उसे अवश्य बताओ। अपने मन में किसी तरह का संशय न रखो। तुम जैसा कहोगी, वैसा ही मैं करूंगा। आज तो हम सभी खुले हृदय से (बिना किसी संकोच के) रास की रामतें करेंगे।

पूरूं मनोरथ तमतणां, करार थाय जीव जेम।

सखी जीवन मारा जीव तमे छो, कहो करूं हूं तेम॥११॥

मैं तुम्हारी प्रेम की चाहत को पूर्ण करूंगा, जिससे तुम्हारे जीव को आनन्द मिले। हे सखियों! तुम मेरे जीव

के जीवन हो, इसलिये तुम सभी जैसा कहोगी मैं वैसा ही करूँगा।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण में श्री राज जी के द्वारा कहा गया है कि "सखियों तुम मेरे जीव के जीवन हो", तो यहाँ यह संशय पैदा होता है कि क्या अक्षरातीत के स्वरूप में भी जीव का अस्तित्व है?

इसका समाधान इस प्रकार है- वस्तुतः आशिक (प्रेमी) के लिए उसका माशूक (प्रेमास्पद) ही उसके जीवन का आधार होता है। अपने माशूक के बिना आशिक अपने अस्तित्व की कल्पना नहीं करता। इस लौकिक जगत में जिस चैतन्य के शरीर में रहने से पूरा शरीर चेतन बना रहता है, उसको जीव कहते हैं। इसी तथ्य को दर्शाने के लिए लौकिक भाव में जीव का जीवन कहा गया है। अक्षरातीत जिस तन में विराजमान हों, उस

तन को कार्यशील होने के लिए जीव की आवश्यकता नहीं है और न ही किसी भी स्थिति में उनकी मृत्यु की सम्भावना है, क्योंकि अपने ही सत् अंग अक्षर ब्रह्म के स्वाप्निक रूप आदिनारायण के द्वारा सारी सृष्टि को जीवन शक्ति वही दे रहे हैं। किन्तु प्रेम की अभिव्यक्ति इन्हीं शब्दों में की जाती है कि मैं अपने प्रेमास्पद के बिना रह ही नहीं सकता।

यद्यपि ब्रज लीला में श्री कृष्ण जी के जिस तन में बैठकर उन्होंने लीला की, उसमें विष्णु भगवान का जीव अवश्य था, किन्तु रास में जिस श्री कृष्ण (बांके बिहारी) के तन में विराजमान होकर उन्होंने लीला की, वह स्वयं चैतन्य नूरी तन है और उसको जीवित रहने के लिए किसी जीव की आवश्यकता नहीं है।

रास की रामतों के समय अक्षर की आत्मा और जोश के

साथ अक्षरातीत के आवेश ने ही लीला की। उस समय सखियों के एक-एक तन में ब्रह्मसृष्टि अपने जीव के साथ थी तथा दो-दो ईश्वरी सृष्टि उस तन में विद्यमान होकर रास की लीला देख रही थी। कुमारिकाओं के जीव सबलिक के कारण में ब्रज लीला में अखण्ड हो चुके थे, जो बाद में प्रतिबिम्ब की सखियों के रूप में अवतरित हुए।

**रासनी रामत अति घणी, अनेक छे अपार।**

**सघली रामत संभारीने, अमने रमाडो आधार॥१२॥**

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं— प्राणप्रियतम! रास की रामतें अत्यधिक आनन्दमयी हैं। वे संख्या में बहुत हैं, अनन्त हैं। किन्तु आप सभी आनन्दमयी रामतों को ध्यान में रखकर हमें मुख्य-मुख्य रामतों (क्रीड़ाओं) का

आनन्द दीजिए।

अमे रंग भर रमवा आवियां, कांई करवा विनोद हाँस।

उत्कंठा अमने घणी, तमे पूरो सकलनी आस॥१३॥

हम सभी अपने हृदय में प्रेम भरकर आपसे रास क्रीड़ा करने के लिए आयी हैं। हमारे मन में आपसे प्रेममयी हँसी-विनोद करने की बहुत अधिक इच्छा है। आप हमारी इन सभी इच्छाओं को पूरा कीजिए।

अमे अवसर देखी उलासियो, कांई अंगडे अति उमंग।

कहे इंद्रावती अमने, तमे सहुने रमाडो संग॥१४॥

श्री इंद्रावती जी कहती हैं— प्राणेश्वर! रास क्रीड़ा के लिए यह उपयुक्त अवसर देखकर हमारा हृदय उल्लास से भर गया है। हमारे अंग-अंग में इसलिए अति उमंग छाई

हुई है कि आप हम सबके साथ रास की प्रेममयी लीलायें करेंगे।

**प्रकरण ॥११॥ चौपाई ॥४२५॥**

## चरचरी

मारे वालैए करी उमंग, सखी सर्वे तेडी संग।

रमाडे नव नवे रंग, अदभुत लीला आज री॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राणवल्लभ ने महारास के लिए हम सब सखियों के अन्दर उमंग भर दी है और नित्य वृन्दावन में बुला लिया है। आज नए-नए ढंगों से वे रास की अद्भुत लीला कर रहे हैं।

सखियो मली संघात, सोभित चाँदनी रात।

तेज भूखण अख्यात, मीठे स्वरे बाज री॥२॥

आज रात्रि में चन्द्रमा की शीतल चाँदनी छिटक रही है। सभी सखियाँ अपने प्रियतम के साथ मिलकर खेल रही हैं। उनके आभूषणों से अपार तेज झलकार कर रहा है

और अति मधुर ध्वनि निकल रही है।

जोतां जोत वृन्दावन, अंगे रंग उत्पन।

सामग्री सखी जीवन, नवलो सर्वे साज री॥३॥

वृन्दावन की इस भूमिका में चारों ओर ज्योति ही ज्योति दिखायी दे रही है। सखियों के अंग-अंग में प्रेम ही प्रेम प्रकट हो रहा है। सखियाँ, उनके जीवन के आधार श्री राज जी, एवं नित्य वृन्दावन की सम्पूर्ण सामग्री अति नवीन शोभा से शोभायमान हो रही है।

अंगे सहु अलवेल, करे रे रंगना रेल।

विलास विनोद हाँस खेल, लोपी रमे लाज री॥४॥

सभी सखियों के अंग-अंग अति सुन्दर हैं। वे प्रेम और आनन्द की क्रीड़ा में पूरी तरह से डूब गयी हैं। उन्होंने



बाह्य लज्जा का आवरण भी हटा दिया है और अपने प्राणवल्लभ के साथ आनन्द, विनोद (मजाक या हास-परिहास) के साथ रास की रामतेँ कर रही हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में "सखियों के द्वारा लज्जा के परित्याग" की बात कही गयी है। इससे मन में यह संशय उठता है कि धर्मग्रन्थों में तो कहा गया है – "लज्जा ही नारीणां भूषणं" अर्थात् लज्जा ही नारी का आभूषण है। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को रास क्रीड़ा में लज्जा का परित्याग करने की क्या आवश्यकता थी?

इसका समाधान यह है कि सखियाँ प्रेम के उस स्तर तक पहुँच गयी हैं, जिससे "मैं" और "मेरे" का अस्तित्व नहीं रहता। लज्जा का अनुभव तो तब होता है, जब सामने कोई दूसरा-पराया हो। जब उन्होंने अपना सर्वस्व अपने प्राणेश्वर को सौंप दिया और अपना अस्तित्व ही

मिटा दिया तो लज्जा क्यों करें?

लौकिक दृष्टि से देखा जाये तो जीव सृष्टि की एक सामान्य नारी भी अपने लज्जा गुण को नहीं छोड़ती, तो ऐसी अवस्था में भला ब्रह्मसृष्टि कैसे छोड़ सकती है ? किन्तु यदि परमधाम की ब्रह्मसृष्टि अपने प्राणेश्वर से लज्जा करती है, तो इसका तात्पर्य यह है कि दोनों के बीच में अभी पर्दा है।

वचे वचे वाए वेण, रंग रस खिण खिण।

उपजावे अति घण, पूरवा पूरण काज री॥५॥

प्रियतम बीच-बीच में बाँसुरी बजा रहे हैं और क्षण-क्षण में आनन्द की रसधारा को भी बहुत अधिक बढ़ा रहे हैं। इस प्रकार वे सबकी इच्छाओं को पूर्ण कर रहे हैं।

रमवुं उनमदपणे, वालाजी सूं रंग घणे।

कर कंठ धणी तणे, विलसूं संगे राज री॥६॥

प्रियतम के साथ प्रेम विभोर होकर लीला करने के लिए सखियों ने मन में विचार किया कि अपने प्राणेश्वर के साथ रास का बहुत अधिक आनन्द लेने के लिए उनके गले में बाँहें डालकर हमें रामतें करनी होंगी। इस प्रकार ही हम धाम धनी के साथ वास्तविक आनन्द ले सकेंगी।

वाणी तो बोले मधुर, करसूं ग्रही अधुर।

पिए वालो भरपूर, राखी हैडा मांझ री॥७॥

प्रियतम अमृत से भी मधुर वाणी बोल रहे हैं। वे सखियों की प्रेममयी भावना जानकर उनकी बाँहें पकड़कर उन्हें गले से लगा लेते हैं और उनके अधरामृत का जी भर कर रसपान करते हैं।

**प्रश्न-** उपरोक्त चौपाई के कथन से यह संशय पैदा होता है कि जब प्रेम का सम्बन्ध शरीर से नहीं होता बल्कि आत्मा या परमात्मा से होता है, तो यहाँ स्वयं अक्षरातीत के द्वारा सखियों का आलिंगन और अधरामृत का पान करना क्या अश्लीलता नहीं कही जा सकती?

**उत्तर-** अश्लीलता का सम्बन्ध मन में उत्पन्न होने वाले काम विकार से होता है। गीता ३/३६ में कहा गया है "कामः एष क्रोधः एष रजोगुण समुद्भवः" अर्थात् काम और क्रोध की उत्पत्ति रजोगुण से होती है।

सखियों तथा श्री राज जी का स्वरूप त्रिगुणातीत है और नित्य वृन्दावन भी त्रिगुणातीत है, इसलिये स्वप्न में भी वहाँ काम विकार या अश्लीलता का प्रश्न नहीं है। जब हृदय परम पवित्र प्रेम में डूबा हो, तो वहाँ काम विकार की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। दो युवा भाई -बहन

एकान्त में रहकर हँसी करने पर या आलिंगनबद्ध होने पर भी मनोविकार से ग्रस्त नहीं हो सकते क्योंकि उनकी भावनायें पवित्र होती हैं, और उस पवित्र प्रेम की अग्नि में काम रूपी विकार रुई के फोहे की तरह जलकर राख हो गया होता है, जबकि वही युवा अपनी पत्नी के प्रति निर्विकार नहीं होता। इसका मूल कारण उसके मन के भावों में पवित्र प्रेम का न होना ही होता है।

सामान्य व्यक्ति का मन स्पर्श मात्र से या चिन्तन मात्र से विकारग्रस्त हो सकता है, किन्तु ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त हुए परमहंस का मन रमणियों के बीच रहने पर भी विकारग्रस्त नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी दृष्टि मल-मूत्र से भरे स्थूल शरीर के नश्वर सौंदर्य में जाएगी ही नहीं। वह उन्हें आत्मिक दृष्टि से ही देखेगा।

जिस अक्षरातीत के पल भर के ध्यान मात्र से हृदय

पूर्णतया निर्विकार हो जाता है, स्वयं वही अक्षरातीत क्या स्वप्न में भी काम विकार से ग्रसित हो सकते हैं? ऐसा स्वप्न में भी नहीं सोचा जा सकता। सबको साफ करने वाला साबुन क्या मैल से ग्रसित हो सकता है? यदि नहीं, तो अक्षरातीत की दिव्य प्रेममयी लीला में काम विकार की कल्पना विकृत मानवीय मस्तिष्क की देन कही जा सकती है। हाँ, इतना अवश्य है कि इस लीला की नकल करने का दुस्साहस सामान्य मनुष्यों को नहीं करना चाहिए अन्यथा पतन का होना स्वाभाविक है।

रमती इंद्रावती, घातो घणी ल्यावती।

वालैया मन भावती, मुखमां मरजाद री॥८॥

श्री इंद्रावती जी अपने मुख पर मर्यादा के साथ तरह-तरह की भाव-भंगिमायें लेकर रास खेल रही हैं और

अपने प्राणेश्वर के मन को लुभा रही हैं।

प्रकरण ॥१२॥ चौपाई ॥४३३॥

## राग धना श्री

वालैयो रमाडे रे, अमने नव नवे रंग।

जेम जेम रमिए रे, तेम तेम वाधे रे उमंग॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी ! प्रियतम नये-नये आनन्द देने वाली रामतों के साथ हमें रास खेला रहे हैं। हम जैसे-जैसे खेल में डूबती जाती हैं, वैसे-वैसे हमारा उत्साह भी बढ़ता ही जाता है।

सकल मलियो रे साथ, सोभे वालैया संघात।

जाणिए उदयो प्रभात, तिमर भाजियो रात, सोहे वृन्दा रे वन॥२॥

रास लीला करती हुई सखियों की प्रियतम अक्षरातीत के साथ वैसी ही शोभा हो रही है, जैसे बीतती हुई रात्रि के पश्चात् लालिमा के साथ उगता हुआ सूरज अपनी



किरणों के साथ शोभायमान होता है। इस प्रकार, नित्य वृन्दावन की अनुपम छवि दिखायी दे रही है।

**भूखण झलहलकार, नंग तो तेज अपार।**

जोत तो अति आकार, वस्तर सोहे सिणगार, मोहे वालो रे मन॥३॥

सखियों के आभूषण झलकार कर रहे हैं। उनमें जड़े हुए नगों से अपार तेज निकल रहा है। उनके शरीर में धारण किये गये ज्योर्तिमयी वस्त्रों का श्रृंगार अत्यधिक शोभायमान हो रहा है। इस प्रकार, वे अपनी अनुपम छवि से प्रियतम श्री राज जी के मन को मुग्ध कर रही हैं।

**सिणगार सर्वे सोहे, वालोजी खंत करी जुए।**

जाणिए मूलगां रे होय, तारतम विना नव कोय, जाणें एह रे धन॥४॥

सखियों के सभी श्रृंगार इतने सुन्दर हैं कि स्वयं श्री

राज जी भी अपनी प्रेम भरी चाहत के साथ उन्हें निहार (देख) रहे हैं। उनके वस्त्रों तथा आभूषणों की शोभा ऐसी दिखायी दे रही है कि जैसे मूल से ही इनका शरीर के साथ अखण्ड सम्बन्ध रहा है। बिना तारतम ज्ञान के इस गुह्य रहस्यमयी ज्ञान रूपी धन के विषय में कोई भी नहीं जान सकता।

**भावार्थ—** योगमाया के ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु चेतन एवं अखण्ड है। इस प्रकार, सखियों के वस्त्र एवं आभूषण भी चेतन, प्रकाशमयी, और अखण्ड हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जब से सखियों के शरीर हैं, तभी से वस्त्र और आभूषण भी हैं, अर्थात् इन्हें कालमाया के ब्रह्माण्ड की तरह से पहना नहीं गया है। इसका निष्कर्ष यहीं निकलता है कि इन दोनों (शरीर एवं वस्त्र-आभूषण) का सम्बन्ध शाश्वत है तथा एक-दूसरे में ओत-प्रोत भी हैं।

वालोजी अति उलास, मन मांहेँ रलियात।

पूरवा सुन्दरीनी आस, मरकलडे करे हाँस, उलट उतपन॥५॥

प्राणेश्वर अक्षरातीत अत्यधिक उल्लास में हैं। वे सखियों की भाव-विह्वलता देखकर मन ही मन बहुत प्रसन्न हैं। वे उनकी प्रेम भरी चाहत को पूर्ण करने के लिये मुस्कराते हुए हँसी-मजाक करते हैं। इसके प्रत्युत्तर में सखियाँ भी वैसा ही हास-परिहास करती हैं।

**द्रष्टव्य-** रास लीला के हास-परिहास को मानवीय हँसी नहीं समझना चाहिए, बल्कि यह एक प्रकार का अलौकिक प्रेम है जो आत्माओं तथा परब्रह्म के बीच में प्रवाहित होता है। इसकी मधुर रसधारा का केन्द्र अक्षरातीत का हृदय होता है।

सुख तो वालाजीने संग, अरधांग लिए रे अंग।

जुवती करती जंग, रमे नव नवे रंग, घणूं जसन॥६॥

प्रियतम अक्षरातीत अपनी अंगरूपा सखियों को रास लीला करके सुख दे रहे हैं। रास की क्रीड़ाओं में सखियाँ धाम धनी के कभी आगे होती हैं, तो कभी पीछे होती हैं। ऐसा लगता है कि जैसे प्रेम का कोई युद्ध चल रहा हो। नयी-नयी आनन्दमयी क्रीड़ाओं से सभी रास खेल रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे अनन्त प्रेम और अनन्त आनन्द का समारोह हो रहा हो।

सुन्दरी वल्लभ बंने, करे इछा मन गमे।

रीस तो कोए न खमे, नीच तो भाखे न नमे, बोले बल तन॥७॥

श्री राज जी और सखियाँ अपने मन के अनुसार तरह-तरह की क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। रास की क्रीड़ा में न तो कोई

किसी पर क्रोध करता है और न कोई किसी के लिये रूखी भाषा बोलता है। इसलिये न तो क्रोध को सहन करने का कोई प्रसंग आता है और न रूखी भाषा बोलने के कारण प्रायश्चित के रूप में झुकना पड़ता है, बल्कि सभी प्रेम से भरपूर अपने नूरमयी तन की शक्ति के अनुसार अति मीठी वाणी बोलते हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त दोनों चौपाइयों में प्रयुक्त अर्धांगिनी , युवती, तथा सुन्दरी आदि शब्दों का प्रयोग सामूहिक रूप से श्यामा जी सहित सभी सखियों के लिए किया गया है। यद्यपि बाह्य रूप से देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे यह केवल श्री श्यामा जी के लिये प्रयोग हुआ हो, किन्तु ये तीनों शब्द सखियों के विशेषणात्मक पर्यायवाची शब्द हैं, जो समष्टि (सामूहिक) रूप में एक वचन के रूप में दर्शाये गये हैं।

चालती चतुरा रे चाल, मुख तो अति मछराल।

सोहंती कट लंकाल, चढती जाणे घंटाल, प्रेम काम सिंध॥८॥

दिव्य प्रेम-काम के सागर अक्षरातीत के साथ क्रीड़ा करती हुई सखियाँ बहुत चतुराई भरी चाल से चलती हैं। उनके मुख अति सुन्दर लग रहे हैं। उनकी कृश कटि (पतली कमर) बहुत ही मनोरम लग रही है। उनके लहंगे का घेरा कमर में पतला है तथा नीचे चौड़ा है। इस प्रकार वह एक घण्टे की तरह शोभायमान हो रहा है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में प्रयुक्त "दिव्य प्रेम काम" का तात्पर्य अक्षरातीत के हृदय में प्रवाहित होने वाले उस त्रिगुणातीत एवं निर्विकार प्रेम से है, जो सभी ब्रह्मात्माओं की दिव्य कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। यहाँ "काम" शब्द का आशय वासना-जन्य काम विकार से नहीं है, अपितु आत्मा और प्रियतम के हृदय में एक-

दूसरे को अनन्त गुना चाहने का जो भाव है, उसे ही यहाँ काम कहा गया है, जो शाश्वत, निर्विकार, एवं त्रिगुणातीत है।

**छेलाइए अति छेल, वल्लभ संघाते गेहेल।**

प्रेम तो पूरे भरेल, स्याम संगे रंग रेल, वाले बांहोंडी रे बंध॥९॥

चतुराई भरी सखियाँ रास की रामतें खेलने में बहुत ही निपुण हैं। वे प्रियतम के प्रेम में पूर्णतया बेसुध हो चुकी हैं। उनके हृदय में अपने प्राणेश्वर के लिये अपार प्रेम भरा हुआ है। वे उनके गले में बाहें डालकर आनन्द के अगाध सागर में डूब चुकी हैं।

**भावार्थ—** इस चौपाई में यह संशय होता है कि बारह हजार सखियाँ अकेले श्री कृष्ण जी के साथ बाँहें डालकर कैसे क्रीड़ा कर सकती हैं?

इसका समाधान यह है कि जब इस कालमाया के योगीजन अपने संकल्प के द्वारा एक समय में अनेक तन धारण कर लेते हैं, तो अक्षरातीत की लीला को एक सामान्य मानवीय तराजू पर तौलना अपनी विवेकहीनता का प्रमाण देना है। अक्षरातीत की लीला को सामान्य मानवीय बुद्धि से कभी भी समझा नहीं जा सकता। आगे के प्रकरणों में यह प्रसंग आएगा, जिसमें यह बात दर्शायी गयी है कि अन्तर्धान लीला से पूर्व श्री राज जी ने कई बार अपने को बारह हजार तनों में प्रकट कर बारह हजार सखियों के साथ लीला की है।

यदि यह कहा जाये कि अभी तक तो श्री राज जी के द्वारा बारह हजार तन धारण करने का प्रसंग नहीं आया है, फिर भी सखियों के द्वारा उनके गले में बाँहें डालकर लीला करने का वर्णन क्यों है?



वस्तुतः चौपाई में सभी सखियों के द्वारा गले में बाँहें डालने का प्रसंग नहीं आया है। किंचित् काल के लिये यदि हम यह भी मान लें कि सभी सखियों के द्वारा गले में बाँहें डालकर लीला करने का वर्णन किया गया है, तो इसमें असम्भव नाम की कोई भी बात नहीं है, क्योंकि कालमाया की गणित और लीला के आधार पर योगमाया की गणित, लीला, और समय को नहीं समझा जा सकता।

वाणी तो बोले विसाल, रमती रमतियाल।

कंठ तो झाकझमाल, अंग तो अति रसाल, सोहंती रे सनंध॥१०॥

रास क्रीड़ा में निपुण सखियाँ अति मनोहर और उच्च स्वरों में गा रही हैं तथा खेल रही हैं। उनके कण्ठ से निकलने वाले स्वर बहुत ही आकर्षक हैं। उनके अंग—

अंग की शोभा अति मनमोहक है। इस प्रकार रास लीला में वे शोभायमान हो रही हैं।

गावती सुचंग रंग, आणती अति उमंग।

स्वर एक गाए संग, अलवेली अति अंग, वास्नाओ सुगंध॥११॥

अपने हृदय में अति उमंग भरकर सखियाँ आनन्द देने वाले बहुत ही मनोहर स्वरों में गा रही हैं। वे हमेसा एक स्वरों में ही गाती हैं, अर्थात् उनके गायन में आरोह-अवरोह आदि का विकार नहीं होता। उनके अंग-अंग में अत्यधिक सुन्दरता एवं अलौकिक सुगन्धि विद्यमान है।

वल्लभ कंठ वलाय, लिए रंग धाय धाय।

रामत करे सवाय, पाछी नव राखे काय, ऊभी रहे रे उकंध॥१२॥

अपने हृदय में प्रेम लिये हुये सखियाँ दौड़-दौड़कर

आती हैं और प्राणप्रियतम के गले लग जाती हैं। एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर क्रीड़ायेँ करती हैं। कोई भी खेल में पीछे नहीं रहती। वे रास लीला में दृढ़तापूर्वक खड़ी रहती हैं, अर्थात् पूरे मन से संलग्न रहती हैं।

**इंद्रावती अंगे आप, वालाजीसुं करे विख्यात।**

मुखतो मेले संघात, अमृत पिए अघात, सुख तो लिए रे सुन्दर॥१३॥

अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत से प्रेममयी वार्ता करती हुई श्री इंद्रावती जी आलिंगनबद्ध हो जाती हैं और मुख से मुख लगाकर अर्थात् चुम्बन द्वारा अधरामृत का रसपान करती हैं। इस प्रकार वह इस सुन्दर लीला का अपार सुख लेती हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई में वर्णित "चुम्बन" एवं "अधरामृत पान" को काम विकार की दृष्टि से कभी नहीं

देखना चाहिए। जन्म-जनमान्तरों से विषय-वासनाओं के बन्धन में फँसा हुआ जीव जब शिशु रूप में अपनी माता का स्तनपान करता है, तो उस समय उसके हृदय में जो पवित्रता होती है, उससे करोड़ों गुना पवित्रता सखियों और श्री राज जी के "चुम्बन" एवं "अधरामृत पान" में होती है। इसलिये रास की इस लीला को विकार-ग्रस्त सामान्य मनुष्यों द्वारा की जाने वाले काम लीला से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। वस्तुतः सखियाँ तो उनकी ही अंगरूपा हैं।

काम की उत्पत्ति तो त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड में पराये के स्पर्श, आलिंगन, एवं चुम्बन से होती है। क्या कोई व्यक्ति अपने ही अंगों के स्पर्श से विकार ग्रस्त हो सकता है? जब सखियाँ उनसे अभिन्न हैं और उनकी ही अंगरूपा हैं, तो दोनों के बीच होने वाली पवित्र प्रेममयी लीला में

विकार की आशंका पालना ही महापाप है। यह बात तो वैसे ही कही जा सकती है कि जैसे आँखों पर काला चश्मा चढ़ा लेने पर श्वेत दूध भी काला दिखता है। इसमें दोष चश्मे की दृष्टि का है, दूध का नहीं।

**प्रकरण ॥१३॥ चौपाई ॥४४६॥**

## राग श्री कालेरो

आवोरे सखियो आपण हमची खूंदिए, वालाजीने भेला लीजे रे।  
 रामत करतां गीतज गाइए, हांस विनोद रंगडा कीजे रे॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! आओ, हम सभी धाम धनी के साथ मिलकर उछलते हुए ताली बजाने का खेल खेलें। इस प्रकार का खेल करते हुए हम गीत भी गायें और हाँस-परिहाँस करते हुए आनन्दमग्न रहें।

मारा वालैया ए रामत घणूं रूडी, हमचडी रलियाली रे।  
 कालेरामां कण्ठ चढावी, गीत गाइए पडताली रे॥२॥

मेरे प्राणप्रियतम! यह रामत बहुत ही अच्छी है, हमारी मनपसन्द है और अति सुहावनी है। हम सभी तालियाँ

बजाते हुए राग कालेरो में उच्च स्वर से प्रेम भरे गीत गायें।

हमचडीनो अवसर आव्यो, आगे कह्युं नहीं अमे तमने रे।

एवो समयो अमने क्यांहे न लाधो, हामडी रहीती अमने रे॥३॥

अब हमें अपनी चाहत को पूर्ण करने का अवसर प्राप्त हुआ है। इसके पहले हमने कभी भी अपनी प्रेम की इच्छा को आपके सामने व्यक्त नहीं किया था। इसके अतिरिक्त ऐसा सुनहरा अवसर भी हमें कभी प्राप्त नहीं हुआ था। इस प्रकार हमारी चाहत मन में ही रह गयी थी।

जे रस छे वाला हमचडीमां, ते तो क्यांहे न दीठो रे।

जेम जेम सखियो आवे अधकेरी, तेम तेम दिए रस मीठो रे॥४॥

इस रास में हमें जिस आनन्द की प्राप्ति हो रही है , वैसा आनन्द अब तक कभी प्राप्त नहीं हुआ था। जैसे—

जैसे सखियाँ इस लीला में डूबती जायेंगी, वैसे-वैसे उन्हें  
और अधिक मधुर आनन्द की प्राप्ति होती जाएगी।

**वचन सर्वे गाइए प्रेमना, तेना अर्थ अंगमा समाय।**

**ते ता अर्थ प्रगट पाधरा, हस्तक वाला संग थाय॥५॥**

सखियों! तुम इस धारणा के साथ प्रेम के गीत गाओ कि  
उसका भाव भी हृदय में आत्मसात् हो जाये। उस प्रेम  
भरे गीत का सीधा अर्थ यही है कि हम अपने प्राणेश्वर  
अक्षरातीत का हाथ पकड़कर लीला में डूब जायें।

**अमृत पीजे ने चुमन दीजे, कंठडे वालाने वलाइए।**

**हमचडीमां त्रण रस लीजे, रेहेस रामतडी गाइए॥६॥**

इस खेल में हम तीन प्रकार का आनन्द लें। पहले  
प्रियतम के अधरों का पान करें, उनके सुन्दर मुखारविन्द



पर चुम्बन लें, और प्रेम भरे भावों से उनके गले लग जायें। इसके अतिरिक्त हमें इस खेल में प्रेम के आनन्दमयी गीत भी गाते रहना है।

ए रामतमा विलास जे कीधा, ते केहेवाय नहीं मुख वाणी रे।  
सर्वे सुखडा लई करीने, रह्या रूदयामां जाणी रे॥७॥

इस खेल में प्रेम के जिस आनन्द का हमने अनुभव किया, उसे इस मुख से वाणी के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है। हम सभी ने इस लीला का आनन्द लेकर इसे अपने हृदय में समा लिया है। इसी से इस लीला की महत्ता जानी जा सकती है।

जेटला वचन गाया अमे रमता, ते सर्वेना सुख लीधां।  
कहे इंद्रावती केम कहूं वचने, अनेक सुख वाले दीधां॥८॥

हमने रास की रामतें करते हुए प्रेम के जिन-जिन वचनों को गाया है, श्री इन्द्रावती जी कहती हैं, उन वचनों से सम्बन्धित लीला में हमने प्रत्यक्ष उन प्रेम भरे वचनों के सुख का अनुभव किया है। महत्ता का कैसे वर्णन करूँ? जिनके कारण हमारी इच्छा पूरी करने के लिए धाम धनी ने हमें अनेक प्रकार से आनन्दित किया।

**भावार्थ-** इस चौपाई में इस बात का संकेत किया गया है कि सखियाँ अपने प्रेम की चाहत पूरी करने के लिए जिन भावों से प्रेम के गीत गाती थीं, धाम धनी उन्हीं भावों के अनुसार लीला करके सुख देते थे।

**प्रकरण ॥१४॥ चौपाई ॥४५४॥**

## राग मारु

वाला आपण रमिए आंख मिचामणी, ए सोभा जाय न कही रे।  
 निकुन्जना मंदिर अति सुन्दर, आपण छपिए ते जुजवा थई रे॥१॥

श्री इंद्रावती जी कहती हैं कि हे प्रियतम! अब हम आँख मिचौनी (बन्द करने) की रामत खेलें। इस रामत की शोभा का शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। फूलों के बने हुए गोल आकृति वाले निकुञ्ज के मन्दिर बहुत ही सुन्दर हैं। हम सभी अलग-अलग होकर उसमें छिप जाते हैं।

एवुं सुणीने साथ सहु हरख्यो, ए छे रामतडी सारी।  
 पेहेलो दाव आपणमा कोण देसे, ते तमे कहोने विचारी॥२॥

यह सुनकर सभी सखियाँ बहुत ही हर्षित हो गयीं और कहने लगीं कि यह खेल तो बहुत अच्छा है। किन्तु श्री

इन्द्रावती जी कहती हैं कि तुम सभी सखियाँ आपस में विचार करके यह बात बताओ कि हममें से सबसे पहले कौन दाव अर्थात् बारी देगा?

सहु साथ कहे वालो दाव देसे, पेहेलो ते पिउजीनो वारो।  
जो पेहेलो दाव आपण दऊं, तो ए झलाए नहीं धुतारो॥३॥  
सब सखियाँ कहने लगीं कि सबसे पहले प्रियतम दाव (बारी) देंगे। पहली बारी उनकी ही है। यदि हम सब पहले दाव लगा देंगी, तो यह छलिया प्रियतम किसी भी तरह से हमारे हाथ में आने वाला नहीं है।

आवो रे वाला हूं आंखडी मीचूं, आंखडी ते मीचजो गाढो।  
अमे जईने वनमां छपिए, पछे तमे खोलीने काढो॥४॥  
श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि प्रियतम! आप मेरे पास

आइये। मैं आपकी आँखे बन्द करती हूँ, या यदि आप स्वतः आँखें बन्द करना चाहते हैं, तो अच्छी तरह से बन्द कीजिए। हम सभी वन में जाकर छिप जाती हैं। बाद में आप हमें ढूँढ लीजिए।

**सखियो तमे छाना थई छपजो, भूखण ऊँचा चढाओ।**  
**रखे सखियो कोई आप झलाओ, मारा वालाजी ने खीदडी खुदावो॥५॥**  
 हे सखियों! तुम सभी एकान्त में छिप जाओ। अपने भूषणों को ऊपर करके चलो, जिससे उनकी आवाज प्रियतम को सुनायी न पड़े और उसके आधार पर वे तुम्हें पकड़ न सकें। तुम इतनी सावधानी से छिपना कि कोई भी उनकी पकड़ में न आ सके। इस प्रकार हम अपने धाम धनी की हँसी उड़ाएँगी।

छेलाइए छाना थई छपजो, रखे कोई बोलतूं काई।

ए काने सरुओ छे सबलो, हमणा ते आवसे आंहीं॥६॥

यह ध्यान रखना कि तुम्हें बहुत चतुराई के साथ छिपना होगा। तुममें से कोई भी आपस में बातचीत न करे। इनके कान सुनने में बहुत तेज हैं। ये हमारी बहुत धीमी आवाज भी सुन लेंगे और उसी समय वहाँ आ धमकेंगे।

लपतो छपतो आवे छे, सखियो सावचेत थाइए।

आणीगमां जो आवे वालो, तो इहां थकी उजाइए॥७॥

सखियों! तुम सभी सावचेत हो जाओ। प्रियतम कभी भी लुकते-छिपते आ सकते हैं। यदि वे इधर आते हैं, तो तुम चुपके से भाग जाना।

जो कदाच वालो आवे ओलीगमां, तो आपण पैए जैए।  
 दाव रहे जो वालाजी ऊपर, तो फूली अंग न मैए॥८॥

यदि प्रियतम दूसरी ओर से आयें, तो हम थपकी मारने की जगह पर दौड़कर आ जाएँगी। इस प्रकार, केवल प्रियतम की ही बारी रहेगी और उनको हराने के कारण हमको बहुत आनन्द होगा।

ते माटे सहु आप संभारी, रखे कोई प्रगट थाय रे।  
 जो दाव आपण ऊपर आवसे, तो ए केमे नहीं झलाय रे॥९॥

इसलिए हे सखियों! आप सभी सावधान हो जाओ। कोई उनकी दृष्टि (पकड़) में न आ जाना। यह ध्यान रखना कि यदि दाव हमारे ऊपर आ जाएगा, तो ये किसी भी तरह से हमारी पकड़ में आने वाले नहीं हैं।

अमे निकुंज वनथी निसरया, आवी थवकला खाधां।

वाले वनमां चीमी चीमी, श्री ठकुराणीजी ने लाधां॥१०॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैं निकुञ्ज वन के मन्दिरों से निकली और पाली पर जाकर थपकी लगायी। धाम धनी ने धीरे-धीरे जाकर श्री श्यामा जी को पकड़ लिया।

**भावार्थ-** इस रामत का नियम यह है कि एक निश्चित स्थान पर किसी एक व्यक्ति की आँखें बन्द कर दी जाती हैं और दूसरे सभी लोग अलग-अलग जगहों पर जाकर छिप जाते हैं। जब तक सभी छिप न जायें, तब तक आँखे खोलने का अधिकार नहीं होता। इसके पश्चात् उसे छिपे हुए लोगों को खोजना होता है।

थपकी लगाने के लिए एक स्थान निश्चित कर दिया जाता है। छिपे हुए में से किसी को पकड़ने से पहले, यदि कोई आकर उस निश्चित स्थान पर थपकी लगा देता है



तो उसको अपना पूर्व दाव दोबारा खेलने के लिए विवश होना पड़ता है। वह दाव के बन्धन से तब तक मुक्त नहीं हो जाता, जब तक थपकी लगाने से पूर्व वह किसी को पकड़ नहीं लेता।

**सखियो जाओ तमे छपवा, हूं दऊं दाव स्यामाजी ने साटे।**

**हूं रमी सूं नथी जाणती, तमे स्याने देओ मूं माटे॥११॥**

श्री राज जी कहते हैं कि सखियों! तुम वन में छिपने के लिए चली जाओ। श्री श्यामा जी के बदले मैं दाव दूँगा। यह बात श्री श्यामा जी को स्वीकार नहीं हुई और उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि क्या मैं खेल के विषय में नहीं जानती? आप मेरे लिए क्यों दाव देंगे?

रामतमां मरजाद म करजो, रमजो मोकले मन।

नासी सको तेम नासजो, तमे सुणजो सर्वे जन॥१२॥

श्री श्यामा जी धाम धनी से कहती हैं कि आप खेल में मर्यादा न निभाइये। आप खुले मन से खेलिए। सखियों! तुम सभी मेरी बात सुनो— तुम इस वन में जहाँ तक भागकर छिप सकती हो, भाग जाओ।

**भावार्थ—** उपरोक्त चौपाई के पहले चरण में कहा गया है कि खेल में मर्यादा नहीं करनी चाहिए। इसका आशय यह है कि प्रेम के सागर अक्षरातीत नहीं चाहते कि उनकी अह्लादिनी शक्ति श्री श्यामा जी बारी का दाव खेलने में परेशान हों, किन्तु श्री श्यामा जी को यह बात स्वीकार नहीं है।

उनका कहना है कि खेल के नियम सबके लिए समान होते हैं। मुझसे घनिष्ठ प्रेम के कारण खेल के किसी नियम

में परिवर्तन नहीं होना चाहिए। आपको मेरे प्रेम –बन्धन से बाहर निकलकर, नियम के अनुकूल खेलना चाहिए। इसे ही दूसरे चरण में "खुले मन से खेलना" कहा गया है।

स्यामाजी आंखडली मीचीने ऊभा, सखियो वनमां पसरी।

सहु कडछीने रमे जुजवा, भूखण लीधां ऊंचा धरी॥१३॥

श्री श्यामा जी अपनी आँखे बन्द करके खड़ी रहीं। उधर सब सखियाँ वन में फैलकर छिप गयीं। सब सखियाँ जीतने की प्रबल इच्छा रखकर खेल खेलने लगीं। उन्होंने अपने आभूषणों को भी ऊँचा कर लिया, ताकि उनके स्थान का पता न चले।

आनन्द मांहें सहुए सखियो, पैए जाए उजाणी।

भूखण न दिए बाजवा, एणी चंचलाई जाय न बखाणी॥१४॥

सभी सखियाँ खेल के आनन्द में डूबी हुई हैं। वे पाली (थपकी लगाने के लिए निश्चित किया गया स्थान) की तरफ दौड़कर जाने लगीं। उन्होंने इतनी सावधानी बरती कि अपने आभूषणों को जरा भी नहीं बजने दिया। उनकी इस चतुराई भरी चपलता की महिमा का वर्णन नहीं हो सकता।

उलास दीसे अंगों अंगे, श्री स्यामाजी ने आज।

ठेक दई ठकुराणीजीए, जईने झाल्या श्री राज॥१५॥

आज श्री श्यामा जी के अंग-अंग में अत्यधिक उल्लास दिख रहा है। उन्होंने पैर से ताल देकर छलॉंग लगायी और धाम धनी को पकड़ लिया।

ए रामत घणूं रूडी थई, मारा वालाजीने संग।

कहे इंद्रावती निकुंज वन, घणूं रमतां सोहे रंग॥१६॥

श्री इंद्रावती जी कहती हैं कि निकुञ्ज वन में अपने धाम धनी के साथ बहुत अच्छी प्रकार से यह आनन्दमयी रामत हुई और इसे खेलते हुए सभी ने बहुत अधिक आनन्द लिया।

प्रकरण ॥१५॥ चौपाई ॥४७०॥

## राग अडोल गोरी – चरचरी

सखी वृषभान नंदनी, कंठ कर कृष्ण नी।

जोड एक अंगनी, रमती रंगे रास री॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि वृषभान सुता श्री राधा जी अपने प्रियतम श्री कृष्ण जी के गले में बाहें डालकर रास की रामतें कर रही हैं। ऐसा लगता है कि ये दोनों (युगल स्वरूप) एक ही अंग हैं।

स्याम स्यामाजी जोड सुचंगी, जुओ सकल सुंदरी।

सोभा मुखारविंदनी, करे मांहों मांहें हांस री॥२॥

हे सखियों! श्री श्यामा जी की जोड़ी बहुत ही मनोहर लग रही है। तुम सभी इन युगल स्वरूप के मुखारविन्द की अनुपम शोभा को देखो। आपस में हास-परिहास

करते हुए, ये दोनों कितने सुन्दर लग रहे हैं।

**प्रश्न-** उपरोक्त दोनों चौपाइयों के कथन से तो यह सिद्ध होता है कि राधा-कृष्ण और श्याम-श्यामा एक ही हैं। जब वाणी में सर्वत्र परमधाम में श्याम -श्यामा के विराजमान होने का प्रसंग है, तो वहाँ राधा-कृष्ण को विराजमान क्यों नहीं कहा जा सकता?

**उत्तर-** ऐसा मानना बहुत बड़ी भूल है। जब पहली चौपाई में राधा जी को वृषभान की पुत्री कहा गया है, तो प्रश्न यह होता है कि क्या परमधाम में भी वृषभान और प्रभावती जी हैं? या परमधाम में क्या माता-पिता का सम्बन्ध होता है?

यह सर्वविदित है कि योगमाया और परमधाम में सन्तान उत्पत्ति की प्रक्रिया कदापि सम्भव नहीं है। इसलिये परमधाम में वृषभान -प्रभावती, नन्द-यशोदा, या

वसुदेव-देवकी के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं है। इसी आधार पर न तो वहाँ राधा जी हो सकती हैं और न कृष्ण जी। वस्तुतः ये ब्रज लीला के नाम हैं।

अक्षर की आत्मा के ऊपर विराजमान अक्षरातीत के आवेश ने विष्णु भगवान के द्वारा धारण किए गए जिस तन में प्रवेश किया, उस पञ्चभौतिक तन का नाम श्री कृष्ण है। इसी प्रकार श्री श्यामा जी द्वारा धारण किए गए तन का नाम राधा जी है।

तारतम वाणी का सिद्धान्त यही कहता है कि ब्रह्मसृष्टि कभी गर्भ में नहीं आती। इस प्रकार यह तो मानना ही पड़ेगा कि श्री श्यामा जी के इस तन में आने से पहले राधा जी का जन्म हो चुका था।

उपजत ही मन आसा घनी, कब हम मिलसी अपने धनी।

प्र. हि. ३७/२०



प्रकाश वाणी का यह कथन यही दर्शा रहा है कि श्री श्यामा जी की सुरता ने किशोर स्वरूप वाली राधा के अन्दर प्रवेश किया था। इसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियों ने भी किशोर स्वरूप वाली कन्याओं के अन्दर प्रवेश किया था। तभी किशोर स्वरूप वाली सखियों के मन में, नन्द के घर आए हुए बालक के रूप में, अपने प्राणेश्वर के दर्शन की इच्छा हुई। यदि श्यामा जी की सुरता उस तन में न आती, तो भी उनका नाम राधा तो पड़ ही चुका था क्योंकि वे किशोर अवस्था में थी।

यदि इस सिद्धान्त को न मानकर, श्री कृष्ण और गोपियों की समान उम्र मानी जाए, तो दो दिन की गोपियाँ अपने धाम धनी के दर्शन के लिए कैसे आएँगी?

यदि यह कहा जाए कि दूसरी चौपाई में राधा-कृष्ण को श्याम-श्यामा कहा है। इस आधार पर परमधाम में

विराजमान श्याम-श्यामा को राधा-कृष्ण कह सकते हैं, तो यह कदापि उचित नहीं है। श्याम-श्यामा गुण वाचक नाम है। इसका अर्थ होता है- तपाये हुए कञ्चन वर्ण एवं किशोरावस्था वाले युगल स्वरूप। चाहे वह युगल स्वरूप कालमाया में हों, योगमाया में हों, या परमधाम में हों। ब्रज में राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप को भी श्याम-श्यामा कहा गया है, इसलिए ब्रज के नाम प्रायः रास में प्रयुक्त होते रहे हैं। परमधाम में युगल स्वरूप अति सुन्दर किशोरावस्था वाले हैं, इसलिए उन्हें श्याम-श्यामा कहा जाता है।

यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि श्याम-श्यामा गुणपरक नाम है, जबकि राधा-कृष्ण शरीरपरक नाम है। इन शरीरों को जन्म देने वाले माता-पिता हैं, किन्तु परमधाम वाले श्याम-श्यामा के माता-पिता नहीं हैं।

जिस प्रकार परिक्रमा ग्रन्थ में परमधाम के पशु-पक्षियों की शोभा का वर्णन पढ़कर हम यह नहीं कह सकते कि कालमाया के ये पशु-पक्षी ही परमधाम में हैं, बल्कि परमधाम की लीला को समझने का एक आधार मान सकते हैं। उसी प्रकार ब्रज-रास में उनके अनुपम सौन्दर्य के कारण उन्हें श्याम-श्यामा अवश्य कहा गया है, किन्तु यह कदापि नहीं माना जा सकता कि परमधाम में राधा-कृष्ण हैं।

**भूखण लटके भामनी, कांई तेज करण कामनी।**

**संग जोड स्यामनी, वनमां करे विलास री॥३॥**

श्री श्यामा जी के सुन्दर आभूषण उनके अंग-अंग में लटक रहे हैं, जिनसे चारों ओर तेज फैल रहा है। वे अपने प्रियतम श्री राज जी के साथ वन में तरह-तरह

की आनन्दमयी क्रीड़ायेँ कर रही हैं।

**भावार्थ-** "भामनी" का शुद्ध रूप "भामिनी" और "कामनी" का शुद्ध रूप "कामिनी" होता है। दोनों ही शब्द एकार्थवाची हैं, जिनका तात्पर्य होता है – अति मनोहारिणी प्रियतमा।

पांउं भरे एक भांतसुं, रमती रंगें खांतसुं।

जुओ सखी जोड कान्हसुं, कांई सुन्दरी सकला परी॥४॥

श्री श्यामा जी चलते समय एक विशेष अदा (भंगिमा) के साथ अपने पाँव रखती हैं। वे अपने प्रियतम के विशेष प्रेम की चाहना लेकर आनन्दमयी क्रीड़ायेँ करती हैं। हे सखियों! श्री कृष्ण जी के साथ राधा जी की इस मनोहर जोड़ी को देखिए। वे अन्य सभी सखियों से कुछ अलग ही लगती हैं।

**भावार्थ-** परमधाम के एकत्व (वहदत्त) में श्री श्यामा जी और सभी सखियों की शोभा एक समान है, किन्तु यहाँ युगल स्वरूप की शोभा को विशेष रूप से दर्शाने के लिए श्यामा जी की शोभा को सखियों से कुछ अलग कहा गया है। लेकिन आन्तरिक रूप से सखियाँ और श्री श्यामा जी एक ही स्वरूप हैं।

**फरती रमे फेरसुं, सुन्दरबाई घेरसुं।**

**हजार वार तेरसुं, आवी वालाजी पास री॥५॥**

श्री श्याम श्यामा जी की इस जोड़ी के चारों ओर सुन्दरबाई प्रेममयी भावना के साथ घूमते हुए आनन्दित होती हैं। उन सहित बारह हजार सखियाँ भी प्रियतम के पास आकर ऐसी ही लीला करती हैं।

वल्लभे लीधी हाथसूं, सुन्दरबाई बाथसूं।

रामत करे निघातसूं, जोरे मुकावे हाथ री॥६॥

श्री राज जी ने सुन्दरबाई को हाथ से पकड़कर आलिंगित कर लिया। श्री राज जी अति प्रेमपूर्वक रामतें कर रहे हैं, किन्तु सुन्दरबाई संकोचवश अपनी शक्ति लगाकर उनसे अपना हाथ छुड़ाने लगती हैं।

बेहूगमां बे भामनी, वचे कान्ह कंठे कामनी।

कंठ बांहोंडी बंने स्यामनी, एम फरत प्राणनाथ री॥७॥

श्री कृष्ण जी के दोनों ओर दो सखियाँ सुन्दरबाई और श्री श्यामा जी हैं। बीच में विद्यमान श्री कृष्ण जी ने दोनों के गले में अपनी बाहें डाल रखी हैं। उन दोनों ने भी प्रियतम के गले में बाहें डाल रखी हैं। इस प्रकार प्रियतम प्राणनाथ जी तरह-तरह की लीलायें कर रहे हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई के दूसरे चरण में रास करने वाले स्वरूप के लिए ब्रज का नाम कन्हैया (श्री कृष्ण और श्याम) प्रयुक्त किया गया है। उसी प्रकार चौथे चरण में गुणवाचक भावात्मक नाम "प्राणनाथ" भी प्रयुक्त किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मूल स्वरूप अक्षरातीत को ही श्री प्राणनाथ कहते हैं।

उनके आवेश स्वरूप ने जिस-जिस तन में लीला की, उसे श्री प्राणनाथ कहलाने की शोभा मिली। चाहे वह ब्रज में श्री कृष्ण जी का तन हो, या रास का तन, या इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री देवचन्द्र जी, या श्री मिहिरराज जी का तन हो। इसे तारतम वाणी की इन चौपाइयों से समझा जा सकता है-

मांगा किया राधाबाई का, पर ब्याहे नहीं प्राणनाथ।

क. हि. १९/३१

तब श्री मुख वचन कहे प्राणनाथ, ढूँढ काढ़नो आपनो साथ।

प्र. हि. ३७/८२

श्री प्राणनाथ के चरण पर, छत्ता बलि बलि जाय।

बी.सा. ६०/५५

श्री राज जी के द्वारा श्री इन्द्रावती के तन से जो रास का वर्णन हो रहा है, उसमें यही भाव दर्शाया जा रहा है कि साक्षात् श्री राज जी ही लीला कर रहे हैं। इसलिए जहाँ ब्रज का नाम "कन्हैया" प्रयोग हुआ है, वहीं "श्याम" और "प्राणनाथ" शब्द भी प्रयोग हुआ है। लीला करने वाले उन तनों में अब न श्री राज जी का आवेश है और न परमधाम की सुरतायें हैं, इसलिए रास बिहारी को अब श्री प्राणनाथ नहीं कहा जा सकता। लीला का वर्णन वर्तमान काल में होने से अवश्य इस चौपाई में श्री प्राणनाथ कहा गया है, किन्तु हमारे प्राणनाथ तो वही हो



सकते हैं जिनमें अक्षरातीत का आवेश विराजमान हो।

आखल पाखल सुन्दरी, केटलीक कंठे बांह धरी।

एक ठेकती फरती भमरी, एम रमत सकल साथ री॥८॥

आस-पास वे सखियाँ गले में बाहें डालकर रास क्रीड़ा कर रही हैं। कोई पैर से ताल देकर कूदती हैं, तो कोई गोलाई में घूमती हैं। इस प्रकार सभी सखियाँ तरह-तरह की क्रीड़ायेँ कर रही हैं।

झणके झण झांझरी, घूंघरी घमके मांझ री।

कडला बाजे मांहे कांबी री, बिछुडा स्वर मिलाप री॥९॥

पैरों के आभूषण झांझरी से झन-झन की मधुर ध्वनि निकल रही है। तो घुंघरियों से घम-घम की। इसी प्रकार कांबी और कड़ला से भी अति मधुर ध्वनि निकल रही

है। इन्हीं स्वरों से मिलता हुआ बिछुआ भी अति आकर्षक ध्वनि प्रस्तुत कर रहा है।

**धमके पांउं धारूणी, रमती रास तारूणी।**

**फरती जोड फेरनी, न चढे कोणे स्वांस री॥१०॥**

रास करती हुयी सखियाँ धरती पर जोर से अपने पाँव को मारती हैं (ठेक देती हैं), तेजी से गोलाई में घूमती हैं, फिर भी किसी की स्वाँस नहीं फूलती।

**चंद चाल मंद थई, जोई सनंधे थकत रही।**

**गत मत भूली गई, देखी थयो उदास री॥११॥**

इतनी मधुर रास क्रीड़ा को देखने में चन्द्रमा इतना तल्लीन हो गया है कि उसकी भी गति मन्द हो गयी है। रास की माधुर्यता ने उसमें चलने के प्रति उपेक्षा भावना

भर दिया है, जिससे वह थका सा लग रहा है। युगल स्वरूप एवं सखियों के सौन्दर्य को देखकर वह बेसुध हो गया है। वह अपने भाग्य को लेकर उदास हो गया है और सोच रहा है कि कदाचित मैं सखी होता, तो मैं भी इसी तरह स्वयं को प्रेम और आनन्द के सागर में डुबो लेता।

**भावार्थ-** योगमाया की प्रत्येक वस्तु चेतन है, इसलिए प्रत्येक चेतन पदार्थ को वैसी ही अनुभूति होती है जैसी सखियों को। चन्द्रमा को एक अति सुन्दर पदार्थ माना जाता है। इसी भावना के साथ रास के वर्णन में भी चन्द्रमा का प्रसंग दिया गया है।

**आनंद घणो इंद्रावती, बांहोंड़ी कंठ मिलावती।**

**लटकती चाले आवती, वालाजी जोडे जास री॥१२॥**

श्री इन्द्रावती जी मोहिनी चाल से अपने प्राणेश्वर

अक्षरातीत के पास जाती हैं और उनके गले में बाहें डालकर रास लीला के अपार आनन्द का रसपान करती हैं।

प्रकरण ॥१६॥ चौपाई ॥४८२॥

## राग सिधूडो

इस प्रकरण में फूँदड़ी की रामत का वर्णन किया गया है।

ओरो आव वाला आपण फूँदडी फरिए, फरिए ते फेर अपार।

फरतां फरतां जो फेर आवे, तो बांहोंडी म मूकसो आधार॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं— मेरे जीवन के आधार श्री राज जी! आप मेरे पास आइए। हम दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर गोलाई में तेजी से घूमें। हम बहुत लम्बे समय तक यह लीला करें। गोलाई में घूमते-घूमते, यदि आपको चक्कर आ जाये तो भी मेरी बाहें मत छोड़िएगा।

बांहोंडी मूकसो तो अडवडसूं, त्यारे हांसी करसे सहु साथ।

ते माटे बल करीने रमजो, फरतां न मूकवो हाथ॥२॥

यदि आप मेरा हाथ छोड़ देंगे तो मैं गिर जाऊँगी। इसका परिणाम यह होगा कि सब सखियाँ मुझे गिरी हुयी देखकर मेरी हँसी उड़ाएँगी। इसलिए आप गोलाई में घूमते समय मेरे हाथों को न छोड़िए तथा अपनी पूरी शक्ति लगाकर यह रामत खेलिए, जिससे हाथ छूटने की आशंका न रहे।

**भावार्थ—** समर्पण के साथ अपनी प्रेम भरी चतुराई से अपने प्रेम का अधिकार कैसे लिया जाता है, यह श्री इन्द्रावती जी ने इस प्रकरण में दर्शा दिया है।

तमे तो वालाजी फूँदडी फरो छो, पण फरो छो आप अंग राखी।  
 ए रामत करतां मारा वालैया, फरिए पाछां अंग नाखी॥३॥  
 मेरे प्रियतम ! जब आप इस फूँदड़ी की रामत में घूमते हैं, तो अपने अंगों को सिकोड़ लेते हैं, किन्तु इस रामत

को खेलते समय आप को अपने अंगों को ढीला छोड़कर ही घूमना चाहिए।

जुओ रे सखियो तमे आ जोड फरतां, रामत करे घणे बल।  
 इंद्रावतीना तमे अंगडा जो जो, मारा वालाजीसूं फरे केवे बल॥४॥  
 हे सखियों! मेरी और श्री राज जी की इस जोड़ी को गोलाई में घूमते हुए देखो। हमारी यह जोड़ी बहुत अधिक बल के साथ गोलाई में घूम रही है। तुम सभी मेरे अंग – अंग को देखो कि मैं अपने धाम धनी के साथ कितनी शक्ति से गोलाई में घूम रही हूँ।

जुओ रे सखियो एम गातां फरतां, वालाजीने दऊं चुमन।  
 भंग न करूं फेर फूंदडी केरो, तो देजो स्याबासी सहु जन॥५॥  
 हे सखियों! देखो, यदि मैं गोलाई में घूमते – घूमते और

गाते-गाते प्रियतम को चुम्बन दे दूँ और फूँदड़ी (गोलाई में घूमने) की इस रामत को भंग भी न होने दूँ, तो तुम सभी मिलकर मुझे शाबासी देना अर्थात् वाह-वाह करना।

फरतां फूँदड़ी लीधी कंठ बांहोंडी, वली फरे छे तेमनां तेम।

दर्ई चुमन ने थया जुजवा, वली फरे ते फरतां जेम॥६॥

फूँदड़ी की रामत करते-करते श्री इन्द्रावती जी अपने प्रियतम के गले में बाहें डाल देती हैं और पुनः वैसे ही घूमती भी रहती हैं। वे उनके मुख पर चुम्बन देकर अलग भी हो जाती हैं तथा वैसे ही घूमने लगती हैं जैसे पहले घूम रही थीं।



एम अंग वालीने रमजो रे सखियो, तो कहूं तमने स्याबास।

एम लटके रंग लेजो वचमां, तो हूं तमारडी दास॥७॥

श्री इन्द्रावती जी अन्य सखियों को चुनौती देते हुए कहती हैं कि यदि तुम सभी मेरी तरह अपने अंगों को लचक देकर फूँदड़ी की इस रामत को खेल सको, तो मैं तुम्हें शाबासी दूँगी। और यदि तुम मेरी तरह लटककर (शरीर को ढीला छोड़कर) फूँदड़ी देते हुए श्री राज जी को चुम्बन देने का आनन्द ले लेती हो, तो मैं तुम्हारी दासी कहलाने के लिए भी तैयार हूँ।

हूं तो साचूं कहूं रे सखियो, तमने तो काईक मरजाद।

सांचू कहे अने प्रगट रमे, इन्द्रावती न राखे लाज॥८॥

हे सखियों! मैं पूर्णतया सच कह रही हूँ। प्रियतम के साथ खेलने में तुम्हें मर्यादावश कुछ लज्जा का अनुभव

होता है, इसलिए तुम पूरा आनन्द नहीं ले पा रही हो। किन्तु यह बात मैं पूरी तरह से सच कह रही हूँ कि अपने प्राणेश्वर के साथ रास क्रीड़ा करते समय मुझे जरा भी लज्जा नहीं लगती।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह भाव दर्शाया गया है कि अपने आराध्य, सर्वस्व, प्राण-प्रियतम अक्षरातीत के प्रति सर्वस्व समर्पण की स्थिति में किसी भी तरह का भेद (पर्दा) नहीं रह जाता। इस लक्ष्य तक श्री इन्द्रावती जी पहुँची और इस जागनी लीला में हमें भी अध्यात्म के इस शिखर तक पहुँचने का पूर्ण प्रयास करना चाहिए।

**प्रकरण ॥१७॥ चौपाई ॥४९०॥**

## राग केदारो

भूलवणीनी रामत कीजे, वाला तमे अम आगल थाओ रे।

दोडी सको तेम दोडजो, जोइए अम आगल केम जाओ रे॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे धाम धनी! आप हमारे साथ भुलवनी की रामत खेलिए। इस खेल में आप हमारे आगे हो जाइए। आप जितनी तेजी से दौड़ सकते हैं, उतना दौड़िए। मैं देखती हूँ कि आप मुझसे आगे कितनी तेजी से भागते हैं।

भुलवणीमां भूलवजो, देजो वलाका अपार।

भूलवी तमारी हूं नव भूलूं, तो हूं इन्द्रावती नार॥२॥

भुलवनी की इस रामत में अनेक चक्र देकर आप मुझे भुला दीजिए। किन्तु मैं इन्द्रावती सखी तभी कहला

सकती हूँ, जब आपके द्वारा भुलाने का प्रयास करने पर भी मैं आपको भूल न सकूँ।

जुओ रे सखियो वाले भूलवी मूने, पण हूं केमे नव टली।  
अनेक वलाका दीधां मारे वाले, तो हूं मलीने मली॥३॥  
हे सखियों! देखो प्रियतम मुझे भुलाने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु मैंने किसी भी तरह से उनका पीछा नहीं छोड़ा है। मेरे प्रियतम ने मुझे भुलाने के लिए अनेक चक्कर दिए, किन्तु मैं उनके साथ ही रही हूँ।

रहो रहो रे वाला मारे वांसे थाओ, हूं तम आगल थाऊं रे।  
सांची तो जो भूलवुं तमने, मारा साथ सहुने हसावूं रे॥४॥  
श्री इन्द्रावती जी कहती हैं— प्राणेश्वर! अब मैं आपसे आगे हो जाती हूँ। अब आप मेरे पीछे से आइए। मैं सच्ची

सखी तभी हूँ, यदि मैं आपको चक्करों के जाल में  
फँसाकर भुलवा दूँ।

सखियो तमे सावचेत थाजो, रखे कोई मूकतां हाथ रे।  
हमणा हरावुं मारा वालाजीने, जो जो तमे सहु साथ रे॥५॥  
हे सखियों! तुम सावधान हो जाओ। कोई किसी का  
हाथ नहीं छोड़ना। आप सब मिलकर देखना, अभी इस  
रामत में मैं अपने प्रियतम को हरा देती हूँ।

भूलीस मारे वचिखिण वाला, आवी मारे वांसे वलगो।  
अनेक वलाका जो हूँ दऊं, पण तूं म थाइस अलगो॥६॥  
मेरे प्रियतम! आप मेरे पीछे-पीछे आइए। यद्यपि आप  
बहुत ही चतुर हैं, किन्तु आपके लिए चुनौती है कि  
आपको भूलना नहीं है। भले ही मैं कितने चक्कर क्यों न

दूँ, किन्तु आप मुझसे अलग मत होइएगा।

एक वलाका मांहें रे सखियो, वालो भूल्या ते प्रथम मूल।  
 दिए सखी ताली पडिआलोटे, हँसी हँसी आवे पेट सूल॥७॥  
 हे सखियों! मेरे एक ही चक्कर के प्रथम चरण में ही  
 प्रियतम भूल गए। इस जीत से सखियाँ इतनी प्रसन्न हुई  
 कि धरती पर लोटने लगीं और वे इतनी हँसी कि हँसते –  
 हँसते उनके पेट में दर्द होने लगा।

**भावार्थ-** श्री इन्द्रावती जी श्री श्यामा जी के पैरों के  
 नीचे से निकल गईं। श्री राज जी को वहीं खड़ा रहना  
 पड़ा, क्योंकि वे श्री श्यामा जी के पैरों के नीचे से कैसे  
 निकलें? ऐसी अवस्था में उन्हें श्री इन्द्रावती जी से हार  
 खानी पड़ी।

पेट में दर्द होना लीला रूप में ही सम्भव है। यथार्थतः

योगमाया में दर्द नाम की कोई चीज नहीं होती।

सहु साथ मलीने साबत कीधुं, इंद्रावती विविध विसेक।

घणी थई रामत ने वली थासे, पिउ भूलवतां राखी रेख॥८॥

इस प्रकार रास की अनेक रामतें हुई और भविष्य में भी होंगी, किन्तु श्री इन्द्रावती जी ने सब सखियों के सम्मुख यह सिद्ध कर दिया कि वह इन रामतों को खेलने में विशिष्ट योग्यता रखती हैं और उसने अपने प्राण प्रियतम को चक्कर देकर भुला दिया तथा सखियों की लाज रख ली अर्थात् उनकी विजय करा दी।

प्रकरण ॥१८॥ चौपाई ॥४९८॥

## राग कल्याण चरचरी

आज राज पूरण काज, मन मनोरथ सुन्दरी।

मन मनोरथ सुन्दरी, सखी मन मनोरथ सुन्दरी॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि आज हमारे प्राणेश्वर अक्षरातीत हमारे मन की सभी इच्छाओं को अवश्य पूर्ण करेंगे, अवश्य पूर्ण करेंगे।

विध विधना विलास, मगन सकल साथ।

मरकलडे करे हाँस, रहेस रामत विस्तरी॥२॥

अनेक प्रकार की आनन्दमयी क्रीड़ाओं में सभी सखियाँ मग्न हैं। वे मुस्कराती हैं और मधुर हँसी के साथ हँसती हैं। इस प्रकार प्रेममयी लीला का पल-पल विस्तार होता जाता है।



कह्यो न जाय आनन्द, अंग न माय उमंग।

विकसियां अमारा मन, रहियो सर्वे हरवरी॥३॥

इस समय रास क्रीड़ा से जो आनन्द हो रहा है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। सबके हृदय में अपार उमंग छायी हुई है। हमारा मन अत्यधिक उल्लसित हो रहा है। सभी सखियाँ प्रतिद्वन्दिता की भावना से रास खेल रही हैं।

आ समेनो वृन्दावन, जुओ रे आ सोभा चन्द।

फूलडे अनेक रंग, रमे साथ परवरी॥४॥

हे सखियों! इस समय वृन्दावन में जगमगाते हुए चन्द्रमा की अलौकिक शोभा को देखिए। अनेक रंगों के फूल खिल रहे हैं और सुन्दरसाथ चारों ओर फैलकर तरह-तरह की रामतें कर रहे हैं।

काबर कोयल स्वर, कपोत घूमे चकोर।

मृगला वांदर मोर, नाचत फेरी फरी॥५॥

मैना और कोयल के अति मीठे स्वर गूँज रहे हैं। कबूतर और चकोर पक्षी अपनी सुन्दर क्रीड़ाओं के साथ घूम रहे हैं। मृग, बन्दर, तथा मोर चारों ओर उछल-उछल कर घूम रहे हैं और नाच रहे हैं।

स्यामना उलासी अंग, उलट अमारे संग।

मांहों-मांहें मकरन्द, व्यापियो विविध पेरी॥६॥

श्री राज जी के हृदय में रास के लिए अत्यधिक उल्लास है। वही उल्लास हमारे हृदय में भी स्थानान्तरित हो गया है। सब सखियों के हृदय में प्रियतम का प्रेम पाने की प्रबल प्यास है, जो अनेक रूपों में रामतों के द्वारा दृष्टिगोचर होती है।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण में "मकरन्द" शब्द से आशय काम विकार से नहीं लेना चाहिए। एक मात्र प्रियतम की चाहना ही वह पवित्र प्रेम है , जिसे "दिव्यकाम" या "मकरन्द" कहते हैं।

**रामत करे कामनी, विलसतां वाधी जामनी।**

**सखी सखी प्रते स्याम घन, दिए सुख दया करी॥७॥**

सखियाँ बहुत ही सुन्दर ढंग से रास की रामतें खेल रही हैं। इस अपार आनन्द में रात्रि भी बन्ध सी गयी है , अर्थात् स्थिर हो गयी है। आनन्दघन श्री राज जी ने अपनी अंगनाओं पर कृपा करके एक-एक सखी के साथ अपना एक-एक रूप प्रकट कर लिया है और उनको अनन्त सुख दे रहे हैं।

रमतां दिए चुमन, एक रस जुवती जन।

करी जुगत नौतन, चितडा लीधा हरी॥८॥

रामतें करते समय प्रियतम सखियों को प्रेम भरा चुम्बन देते हैं। सभी सखियां प्रेम में एकरस हो गयी हैं। प्रियतम ने प्रेम की नयी-नयी युक्तियों (रामतों) से सखियों के चित्त को वश में कर लिया है।

कंठ बाहों वली वली, अनेक विधे रंग रली।

लिए अमृत मुख मेली, पिए रस भरी भरी॥९॥

श्री राज जी सखियों के गले में बार-बार बाहें डालते हैं तथा अनेक प्रकार से आनन्दमयी क्रीड़ाये करते हैं। वे उनके मुख से मुख मिलाकर अधरामृत का रसपान करते हैं।

**भावार्थ-** बाह्य दृष्टि से देखने पर रास की ये क्रीड़ाये

सामान्य मानवीय प्रणय लीला की तरह प्रतीत होती हैं, किन्तु यथार्थतः ऐसा नहीं है। यह दिव्य प्रेम की लीला है, जिसमें आलिंगन, चुम्बन, और अधरामृत का पान तो अवश्य है, किन्तु नाम मात्र का भी काम विकार नहीं है। प्रायः वात्सल्य स्नेह में भी काम विकार नहीं होता, तो आत्मा और परब्रह्म के प्रेम में काम विकार कहाँ से आएगा?

एक पिता के द्वारा अपनी किशोरावस्था वाली पुत्री के माथे पर चुम्बन देना, या एक शिशु के द्वारा अपनी माता के स्तनपान में क्या काम विकार की कल्पना की जा सकती है? इन सम्बन्धों में जितनी पवित्रता होती है, उससे करोड़ों गुना ज्यादा पवित्रता आत्मा और परब्रह्म के सम्बन्ध में होती है। बीस वर्ष का युवक अपनी माँ के चरण तो छू सकता है, किन्तु बचपन की तरह स्तनपान

करने में उसे लज्जा का अनुभव होता है क्योंकि इस अवस्था तक उसे अपने पुरुषत्व का बोध हो चुका होता है। सखियाँ प्रेम और निर्विकारिता की मूर्ति हैं। वे अपने प्राणेश्वर के प्रेम में इतनी डूब चुकी हैं कि उन्हें अपने शरीर का आभास ही नहीं है। उनके शरीर भी त्रिगुणातीत हैं। इसलिए रास की किसी भी लीला में काम विकार की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती।

**रस घणो उपजावती, सखी मीठड़े स्वर गावती।**

**नव नवा रंग ल्यावती, इंद्रावती अंग धरी धरी॥१०॥**

सखियाँ अति मीठे स्वरों में गीत गा रही हैं , जिससे सबके हृदय में अपार आनन्द छा रहा है। श्री इन्द्रावती जी अपने हृदय में प्रियतम के प्रति अपार प्रेम लेकर रास की नयी-नयी क्रीड़ाओं से अत्यधिक आनन्द प्रकट कर

रही हैं।

प्रकरण ॥१९॥ चौपाई ॥५०८॥

## राग पंचम मारु

इस प्रकरण में गढ़ (किले) को आधार मानकर खेली जाने वाली गढ़े की रामत का वर्णन है।

रामत गढ़ तणी रे, हाथ मांहे हाथ दीजे।

बल करीने सहु ग्रहजो बांहोड़ी, तो ए रामत रस लीजे॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों ! अब हम किले वाली रामत खेलेंगी। इसके लिए सभी एक-दूसरे के हाथ में अपना हाथ पकड़ाओ। इस रामत का आनन्द तुम्हें तभी प्राप्त हो सकेगा , जब तुम अपनी पूरी शक्ति लगाकर एक दूसरे की बाहें पकड़ी रहोगी।

प्रथम पाधरु कहूं रे सखियो, ए रामत छे मदमाती।

दोड़ी न सके तेणी बांहोंड़ी न छूटे, ते आवसे पाछल घसलाती॥२॥



हे सखियों! सबसे पहले मैं तुम सबसे यह बात स्पष्ट रूप से कह देना चाहती हूँ कि यह रामत आनन्द में डुबो देने वाली है। जो तेजी से दौड़ नहीं सकेगी, उसका हाथ तो दूसरों से नहीं छूटेगा, किन्तु गिरकर पीछे-पीछे घिसटती हुई आएगी।

ते माटे बंध बांहों खरो ग्रही, करजो जोरमां जोर।  
 पछे दोड़सो त्यारे नहीं रे केहेवाए, थासे अति घणो सोर।।३।।  
 इसलिए एक-दूसरे की बांहों को दृढ़तापूर्वक पकड़े रहना और उसमें अपनी पूरी शक्ति लगाए रखना। बाद में जब तुम दौड़ोगी, तो उस समय कुछ भी कहना सम्भव नहीं हो पाएगा, क्योंकि उस समय बहुत अधिक शोर होगा।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई में हाथ को जोर से पकड़ने के

लिए इसलिए कहा गया है कि दौड़ते समय यदि हाथ छूट जाए, तो कोलाहल में पुकारना निरर्थक हो सकता है, जिससे खेल में बाधा पड़ेगी।

**पेहेली चाल चालो कीडीनी, हलवे पगलां भरजो।**

**पछे वली काईक अधकेरां, वधतां वधतां वधजो॥४॥**

पहले तुम्हें चींटी की चाल से चलना होगा। उसके पश्चात् धीरे-धीरे अपनी चाल को तेज बढ़ाना होगा। इसके पश्चात् पुनः अपनी चाल को और बढ़ाते-बढ़ाते वहाँ तक बढ़ जाना।

**वली काईक वृध पामतां, मचकासूं म हालजो।**

**हजी लगे आकला म थाजो, लडसडती चाल चालजो॥५॥**

इसके पश्चात् और अधिक गति बढ़ने पर मटकते हुए

चलना। यहाँ तक अधिक जल्दबाजी नहीं करनी है।  
ढीली-ढाली मस्ती भरी चाल से चलना है।

हवे काँईक पग भरजो प्रगट, सावचेत सहु थाजो।  
साथ सकल तमे आप संभाली, मुखडे पुकारी ने गाजो॥६॥  
हे सखियों! अब तुम सभी सावधान हो जाओ और कुछ  
कदम धीरे-धीरे रखो। इसके पश्चात् तुम सभी अपने को  
सम्भालकर मुख से उच्च स्वरों में गीत गाओ।

लटके चटके छटके दोडजो, रखे पग पाछां देतां।  
हाँसी छे घणी ए रामतमां, दोड तणो रस लेतां॥७॥  
हे सखियों! तुम लटकती-मटकती चाल से, अत्यधिक  
स्फूर्ति से, और छिटकने की मुद्रा में दौड़ना। दौड़ते  
समय अपने कदम पीछे नहीं रखना। इस रामत में बहुत

अधिक हँसी की लीला है। तुम दौड़ने का आनन्द अवश्य लेना।

**भावार्थ-** लटकती-मटकती चाल का तात्पर्य है कि नृत्य की मुद्रा का पुट लिए हुए आनन्दमयी ढंग से चलना। छिटक कर चलने का आशय यह है कि सखियाँ अपने शरीरों के बीच में कुछ दूरी बनाकर रखें, जिससे टकराकर गिरने का भय न रहे।

कहे इंद्रावती ए रामतडी, मारा वालाजी थई अति सारी।  
दोड़ करता तमे पाछूं नव जोयुं, अमे बांहोंडी न मूकी तमारी॥८॥  
श्री इंद्रावती जी कहती हैं- हे मेरे प्रियतम! गढ़े की यह रामत बहुत अच्छी हुई है। दौड़ते समय न तो आपने पीछे देखा और न ही मैंने अपकी बाहें छोड़ीं।

**भावार्थ-** तारतम वाणी से अक्षरातीत की पहचान के

प्रारम्भिक चरणों में कहा जाता है कि "गुण धनी के यादकर, पकड़ पिऊ के पाय" (प्र. हि.)। किन्तु रास की यह रामत यही संकेत दे रही है कि प्रियतम की पहचान होने के बाद हमें धनी की बाहों को दृढ़ता से पकड़े रहना चाहिए, अर्थात् हमारा प्रेम और समर्पण अटूट होना चाहिए।

प्रकरण ॥२०॥ चौपाई ॥५१६॥

## राग श्री काफी

इस प्रकरण में हाथ से ताली बजाने की रामत का वर्णन किया गया है।

रामत करतालीनी रे, एमा छे वलाका विसमा।

बेसवूं उठवूं फरवूं रमवूं, ताली लेवा साम सामा॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं— हाथ से ताली बजाकर रामत करने का दाँव—पेंच कठिन है, क्योंकि इसमें कभी बैठना पड़ता है, तो कभी उठना पड़ता है। कभी घूमना पड़ता है, तो कभी खेलना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कभी आमने—सामने आकर हाथ से ताली भी बजानी पड़ती है।

तम सामी अमे ऊभा रहीने, हाथ ताली एम लेसूं।

बेसंता उठता फरता, सामी ताली देसूं॥२॥

हे प्रियतम! आपके सामने खड़ी होकर मैं आपके हाथ की ताली लूँगी, तथा बैठकर, उठकर, घूमकर, और पुनः सामने आकर आपके हाथ में ताली दूँगी।

बेसंता ताली दर्इने बेसिए, उठंता लीजे ताली।

फरता ताली दर्इ करीने, वचे रामत कीजे रसाली॥३॥

इस रामत में बैठते समय ताली देकर बैठना है और उठते समय ताली लेकर उठना है। घूमते समय ताली देकर घूमना है। हे सखियों, तुम इस प्रकार रामत का आनन्द लो।

रामत करता अंग सहु वालिए, सकोमल जोड सोभंत।

अंग वाली वचे रंग रस लीजे, भंग न कीजे रामत॥४॥

हे सखियों! इस रामत में युगल स्वरूप अति सुन्दर शोभा से युक्त दिखायी दे रहे हैं। उनके साथ रामत करते हुए, तुम सभी, अपने अंगों को विशेष मुद्रा में मोड़ो। अपने अंगों को मोड़ते समय इस प्रेममयी लीला का आनन्द लो। किन्तु यह भी ध्यान रखो कि इस रामत में कोई व्यवधान (रुकावट) न आए।

ए रामतडी जोई करीने, सहु साथने वाध्यो उमंग।

सहु कोई कहे अमे एणी पेरे, रमसूं वालाजीने संग॥५॥

इस खेल की मनोहारिता को देखकर सब सखियों के मन में खेलने की उमंग बढ़ गयी है। सभी सखियाँ आपस में कहने लगीं कि इस प्रकार हम भी प्रियतम के साथ



इस रामत को खेलेंगी।

साथ कहे वाला रमो अमसूं, ए रामत सहु मन भावी।

सहुना मनोरथ पूरण करवा, सखी सखी प्रते लेओ रंग आवी॥६॥

सब सखियाँ कहने लगीं— प्राणेश्वर! आप हमारे साथ भी खेलिए। यह रामत सबके मन को बहुत अधिक भा गयी है। इसलिए हम सबकी इच्छा को पूर्ण करने के लिए एक-एक सखी के साथ लीला कीजिए और हमें आनन्द देकर स्वयं भी आनन्द लीजिए।

हाथ ताली रमे छे वालो, सघलीसूं सनेह।

रंगे रमाडे रासमां, वालो धरी ते जुजवा देह॥७॥

प्रियतम! हाथ की ताली वाली इस रामत को सभी सखियों के साथ अति प्रेमपूर्वक खेल रहे हैं। रास की इस

रामत को आनन्दपूर्वक खेलने के लिए प्रियतम ने प्रत्येक सखी के लिए अलग-अलग (बारह हजार) रूप धारण कर लिया और सबकी इच्छा पूरी की।

कहे इंद्रावती ए रामतडी, मारा वालाजी थई अति सारी।  
सघली संगे रमिया रंगे, एक पिउ एक नारी॥८॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्रियतम अक्षरातीत के साथ सखियों की यह रामत बहुत अच्छी तरह से पूर्ण हुई। श्री राज जी ने अपने बारह हजार (१२०००) रूप धारण कर, एक-एक सखी के साथ आनन्दपूर्वक लीला की और सभी सखियों की इच्छा पूरी की।

प्रकरण ॥२१॥ चौपाई ॥५२४॥

## राग केदारो – चरचरी

इस प्रकरण में नित्य वृन्दावन की शोभा का दिग्दर्शन कराया गया है।

उमंग उदयो साथ, रंगे तो रमवा रास।

रासमां करुं विलास, सखियो सुख लेत री॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! रास की इन क्रीड़ाओं से तुम सभी के अन्दर प्रियतम के साथ लीला करने के लिए अत्यधिक उमंग पैदा हो गयी है। मेरी यही चाहना है कि मैं इस रास क्रीड़ा में प्रियतम के साथ अत्यधिक आनन्द का रसपान करूँ। अब तक मैंने हर क्रीड़ा का सुख लिया ही है।

भोमनी किरण भली, आकासे जईने मली।

चांदलो न जाए टली, उजलीसी रेत री॥२॥

इस वृन्दावन की तेजोमयी धरती से उठने वाली किरणें आकाश में सर्वत्र छायी हुई हैं। अति उज्ज्वल रेत जगमगा रही है। चन्द्रमा भी इस लीला को देखने में इतना निमग्न हो गया है कि लगता है जैसे वह रुक गया है।

रुत निस नवो सस, दीसे सहु एक रस।

प्रकासियो दसो दिस, न केहेवाय संकेत री॥३॥

यह शरद ऋतु, मनोहर रात्रि, तथा उसमें उगा हुआ पूर्णमासी का नवीन चन्द्रमा, सभी प्रेम में डूबे हुए दिखायी दे रहे हैं। चन्द्रमा के शीतल प्रकाश से दसों दिशायें प्रकाशमान हो रही हैं। प्रियतम के प्रेममयी संकेतों के आकर्षण का वर्णन कर पाना किसी भी तरह से

सम्भव नहीं है।

**भावार्थ-** प्रेममयी लीला में प्रियतम के द्वारा नेत्र आदि अंगों से प्रेम के जो संकेत दिए जाते हैं, वे रास खेलने वाली सखियों के लिए अति मूल्यवान उपहार के समान हैं।

सूं कहूं वननी जोत, पत्र फूल झलहलोत।

वृन्दावन उदयोत, सामग्री समेत री॥४॥

मैं नित्य वृन्दावन की इस अलौकिक ज्योति का वर्णन कैसे करूँ? पत्ते, फल, फूल, सभी नूरी ज्योति से जगमगा रहे हैं। रास की सम्पूर्ण सामग्री (यमुना जी, पशु-पक्षी, आदि) के साथ सम्पूर्ण वृन्दावन अनुपम प्रकाश की आभा में झलकार कर रहा है।

पसु पंखी अनेक नाम, तेना विचित्र चित्राम।

निरखतां न भाजे हाम, जुजवी जुगत री॥५॥

इस वृन्दावन में असंख्य नामों वाले पशु-पक्षी विचरण कर रहे हैं। इनके ऊपर अद्भुत प्रकार की चित्रकारी आयी है। अलग-अलग प्रकार की आकृति वाले ये पशु-पक्षी इतने सुन्दर हैं कि इनको देखने पर भी इच्छा पूरी नहीं होती, अर्थात् निरन्तर देखते रहने की इच्छा बनी रहती है।

रमतां भूखण किरण, ब्रह्मांड लाग्यो फिरण।

सखियो उलासी तन, कमल विकसेत री॥६॥

रास क्रीड़ा करते समय युगल स्वरूप तथा सखियों के आभूषणों से उठने वाली किरणें इस प्रकार शोभायमान हो रही हैं, जैसे वे पूरे योगमाया के ब्रह्माण्ड (केवल ब्रह्म)

में घूम रही हैं। जिस प्रकार प्रातःकाल का खिला हुआ कमल शोभायमान होता है, उसी प्रकार सखियों का तन भी अत्यधिक उल्लसित (नूतन शोभा एवं प्रसन्नता से युक्त) दिखायी दे रहा है।

एणी पेरे करुं रामत, मनडा थया महामत।

खंत खरी लागी चित, वालाजीसूं हेत री॥७॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरा मन प्रेम की महानतम भावदशा को प्राप्त हो गया है। मेरे चित्त में प्रियतम से अत्यधिक प्रेम करने की अपार चाहना पैदा हो गयी है। अब मैं यही चाहती हूँ कि उनके साथ निरन्तर रामतेँ करती रहूँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण में "महामत" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका तात्पर्य है "प्रेम की महानतम

भावदशा को प्राप्त करने वाला व्यक्ति।" अपने आराध्य के भावों में डूबकर अपने अस्तित्व को विलीन कर देना भावदशा को प्राप्त होना कहा जाता है। श्री राधा जी एवं गोपियों के अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु तथा राम कृष्ण परमहंस आदि इसी भावदशा को प्राप्त हो जाया करते थे।

"महामत" का शाब्दिक अर्थ महाभावदशा को प्राप्त होना है। उपरोक्त चौपाई में मन के द्वारा महाभावदशा (महामत) को प्राप्त हो जाना कहा है। इसलिये तारतम्य वाणी में अन्य स्थानों पर आए हुए, पाँच शक्तियों से युक्त श्री इन्द्रावती जी की शोभा के नाम, "महामति" से इसका सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिए।

प्रेमना प्रघल पूर, सूरु मांहेँ अति सूर।

पिए रस मेली अधुर, सघली सुचेत री॥८॥



सखियों के हृदय में प्रेम रूपी सागर का तीक्ष्ण प्रवाह बह रहा है। वे प्रेम के युद्ध में अत्यधिक शूरवीर हैं। सभी सखियाँ अपने प्रेम धर्म के प्रति सावचेत हैं और श्री राज जी के होंठों से अपने होंठ मिलाकर अधरामृत का पान कर रही हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण में सखियों को शूरों में शूर (वीरों में वीर) कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रेम के क्षेत्र में रास क्रीड़ा करने वाली इन ब्रह्मसृष्टियों से श्रेष्ठ और कोई भी नहीं हो सकता। इन्होंने बाँसुरी की आवाज को सुनते ही अपने तन को छोड़ दिया और योगमाया में अपने प्रियतम से मिलकर उनके प्रेम में स्वयं को समर्पित कर दिया।

इंद्रावती करे रंग, रामत न करे भंग।

रमती फरती वाला संग, छबके चुमन देत री॥९॥

श्री इन्द्रावती जी अपने प्राणेश्वर के साथ रास की आनन्दमयी क्रीड़ायेँ कर रही हैं, घूम रही हैं, और आनन्दमग्न होकर उनको चुम्बन दे रही हैं। इस प्रकार वे रास की रामतों को कभी भंग नहीं होने देती हैं।

प्रकरण ॥२२॥ चौपाई ॥५३३॥

## राग सिंधूडो

इस प्रकरण में घूमने की रामत का वर्णन किया गया है।

ओरो आव वाला आपण घूमडले घूमिए, वाणी विविध पेरे गाऊं।

अनेक रंगे रस उपजावीने, मारा वालैया तूने वालेरी थाऊं॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राण प्रियतम! मेरे साथ आइए, हम घूमने की रामत खेलते हैं। इस रामत में, मैं घूमते हुए आपको तरह-तरह के गीत सुनाऊँगी। इस प्रकार आपके लिए प्रेम रस से भरी हुई अनेक प्रकार की आनन्दमयी क्रीड़ाएँ करके आपकी अति प्यारी बन जाऊँगी।

घोघरे घाटडे स्वर बोलाविए, बीजा अनेक स्वर छे रसाल।

झीण झीणा झीणा झीण झीनेरडा, मीठा मधुरा वली रसाल॥२॥

यद्यपि दूसरे अनेकों प्रकार के आनन्द देने वाले स्वर हैं, किन्तु पहले हम पुरुषों के मोटे स्वरों में गायेंगे। तत्पश्चात् नारियों के सूक्ष्म (बारीक) स्वर, उसके पश्चात् अधिक मधुर स्वर, तत्पश्चात् अति प्रेम भरे सर्वोपरि मधुर स्वरों में गीत गायेंगे।

**घूमडलो घूमवानो रे वालैया, मूने छे अति घणो कोड।**

**साम सामा आपण थईने घूमिए, मारा वालैया आपण बांधीने होड॥३॥**

मेरे प्रियतम! आपके साथ हाथ पकड़कर घूमने की रामत (चक्कर लगाने के खेल) के लिए मेरे हृदय में बहुत अधिक उत्साह है। इसका आनन्द लेने के लिए आवश्यक है कि हम आपस में शर्त लगाकर और एक – दूसरे के आमने-सामने होकर गोलाई में घूमें।

ए रामत अमे रब्दीने रमसूं, साथ सकल तमे रेहेजो रे जोई।  
 हूं हारूं तो मोपर हंसजो, मारो वालोजी हारे तो हंसजो मा कोई॥४॥  
 घूमने की इस रामत को हम बाजी लगाकर खेलेंगे। हे  
 सखियों! इसे देखने के लिए तुम खड़े रहना। यदि मैं हार  
 जाती हूँ तो मेरी हँसी उड़ा लेना, किन्तु यदि मेरे श्री राज  
 जी हार जाते हैं तो उनके ऊपर कोई भी हँसी न करे।

घूमडलो वालो मोसूं घूमे छे, वचन मीठडा रे गाय।  
 अंग वस्तर भूखण मीठडां लागे, वचे वचे कंठडे रे वलाय॥५॥  
 मेरे प्रियतम! घूमने की इस रामत में मेरा हाथ पकड़कर  
 मेरे पास घूम रहे हैं। इसके साथ ही साथ अति मीठे  
 स्वरों में वे गाते भी जाते हैं। उनके अंग-अंग में सुशोभित  
 वस्त्र और आभूषण बड़े ही प्यारे लगते हैं। बीच-बीच में  
 वे श्री इन्द्रावती जी को गले भी लगा लेते हैं।

पिउ हारया हारया कहे स्वरमां, हाँसी हरखे रे उपजावे।

हूं जीती जीती कहे घोघरे, साथ सहुने हँसावे॥६॥

अति मीठे स्वरों में श्री इन्द्रावती जी "श्री राज जी हार गए, श्री राज जी हार गए" ऐसा कहकर सब सखियों के हृदय में हँसी एवं उल्लास पैदा करती हैं। इसके अतिरिक्त वे गम्भीर स्वरों में "मैं जीत गई, मैं जीत गई" ऐसा कहकर सब सखियों को हँसाती हैं।

ए रे घूमडले हाँसी रे साथने, रहे नहीं केमे झाली।

लडथडे पडे भोम आलोटे, हँसी हँसी पेट आवे रे खाली॥७॥

घूमने की इस रामत में सखियाँ इतनी हँसती हैं कि उनकी हँसी रोके भी नहीं रूक पा रही है। वे धरती पर गिरकर लोट-पोट हो रही हैं। हँसते-हँसते उनके पेट अन्दर की तरफ धँस जाते हैं।

**भावार्थ-** हँसने की अवस्था में पेट की माँसपेशियाँ अन्दर की तरफ धँस जाती हैं। इसी को पेट का खाली होना कहते हैं।

ए रामतडी जोई कहे सखियो, इंद्रावती ए राखी रेख।  
 साथ सहुने वाली घणूं लागी, मारा वालाजीने वली वसेख॥८॥  
 इस आनन्दमयी खेल को देखकर सखियाँ आपस में कहती हैं कि श्री इन्द्रावती जी ने हमारी लाज रख ली है। सब सुन्दरसाथ को श्री इन्द्रावती जी बहुत मन भार्यी, और श्री राज जी को और अधिक प्यारी लगीं।

**प्रकरण ॥२३॥ चौपाई ॥५४९॥**

## राग वसंत

इस प्रकरण में हाथों की कोहनी के द्वारा खेली जाने वाली रामत का वर्णन किया गया है, इसलिए इसे "कोहनी की रामत" कहते हैं।

**कोणियां रमिए रे मारा वाला, गाइए वचन सनेह।**

**मनसा वाचा करी करमना, सीखो तमने सीखवुं एह॥१॥**

मेरे प्रियतम! प्रेम के गीत गाते हुए आप मेरे साथ कोहनी की रामत खेलिए। अब श्री इन्द्रावती जी सखियों को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि हे सखियों! तुम मन, वाणी, और कर्म से इस खेल को सीखो। मैं तुम्हें इसे खेलने का ढंग सिखाती हूँ।

**भावार्थ—** अक्षरातीत सर्वज्ञ हैं, इसलिए उनको रामत सिखाने की बात अटपटी सी लगती है। अब तक के



सभी प्रसंगों में श्री इन्द्रावती जी ने सखियों को ही सिखाया है, श्री राज जी को नहीं। इसलिए उपरोक्त चौपाई में भी श्री इन्द्रावती जी के द्वारा सखियों को रामत सिखाने का प्रसंग है, श्री राज जी को नहीं।

**ए रामतडी जोरावर रे, दीजे ठेक अंग वाली।**

**रमतां सोभा अनेक धरिए, गाइए वचन कर चाली॥२॥**

हे सखियों! यह रामत बहुत ही प्रभावशाली है। इसमें अंगों को मरोड़कर पैरों से ताल देना है और कूदना है। इस खेल को खेलते समय तुम्हारी शोभा बहुत ही अनुपम हो जानी है। तुम्हें हाथों को चलाते हुए मधुर गीत भी गाने हैं।

करे रमिए कोणियां रमिए, चरण रामतडी कीजे।

वली रामतमां विलास विलसी, प्रेम तणां सुख लीजे॥३॥

इस रामत में तुम्हें हाथों को विशेष मुद्रा में हिलाना है और कोहनियों से संकेत देना है। चरणों से ताल देते हुए कूदना है। इस प्रकार इस खेल की आनन्दमयी क्रीड़ाओं से प्रेम का सुख लेना है।

जुओ रे सखियो वालो कोणियां रमतां, भांत भांत अंग वाले।

सखियो रामत बीजी करी नव सके, उभली जोड निहाले॥४॥

हे सखियों! प्रियतम को कोहनी का यह खेल खेलते हुए देखो। वे अपने अंगों को तरह-तरह से मोड़ रहे हैं। अन्य सखियाँ श्री इन्द्रावती जी और श्री राज जी की जोड़ी को खेलते हुए देखकर इतनी मग्न हो गयी हैं कि वे रामत कर ही नहीं पा रही हैं (स्वयं रामत करने की तरफ उनका

ध्यान ही नहीं है)।

कर मेलीने कोणियां रमिए, कोणी मेलीने करे।

अंगडा वाले नेंणा चाले, मनडां सकलनां हरे॥५॥

इस रामत में हाथों को छोड़कर कोहनियों से खेला जाता है। पुनः कोहनियों को छोड़कर खेला जाता है। अंगों को मोड़ते हुए, नेत्रों के प्रेम भरे संकेतों से, सबके मन को हर लिया जाता है।

ए रामतना रस कहूं केटला, थाय निरतना रंग।

हस्त चरणनां भूखण सर्वे, बोले बंनेना एक बंग॥६॥

इस रामत के अपार आनन्द का मैं कितना वर्णन करूँ। ऐसा लगता है कि जैसे इसमें नृत्य का ही आनन्द बरस रहा हो। इस खेल में हाथों और पैरों के सभी आभूषण

एक ही स्वर में बोला करते हैं।

लटके गाए ने लटके नाचे, लटके मोडे अंग।

लटके रामत रहेस लटके, लटके सांई लिए संग॥७॥

इस रामत में श्री इन्द्रावती जी अपने प्रियतम के साथ लटकते हुए ही गा रही हैं, तथा नाच रही हैं, तथा अपने अंगों को लचकाते हुए ही मोड़ रही हैं। इस खेल की सभी आनन्दमयी क्रीड़ाएँ वे अपने अंगों को लचकाते हुए ही कर रही हैं।

**भावार्थ**— कमर के ऊपर के भागों (हाथ, सिर, गर्दन, सीना, आदि) को नृत्य की एक विशेष मुद्रा में झुकाना, "लटकाना" या "लचकाना" कहलाता है।

मारा वालाजीमां एक गुण दीसे, जाणे रामत सीख्या सहु पेहेली।

इंद्रावतीमां बे गुण दीसे, एक चतुर ने रमता गेहेली॥८॥

मेरे प्रियतम श्री राज जी में एक गुण विशेष दिखायी देता है कि वे सबसे पहले रामत सीखकर खेलने लगते हैं। श्री इन्द्रावती जी में दो गुण दिखायी देते हैं, एक तो वह रामत खेलने में चतुर हैं, दूसरा प्रेम में बेसुध (दीवानी) होकर खेलती हैं।

**भावार्थ-** वैसे तो अक्षरातीत में अनन्त गुण हैं, किन्तु लीला रूप में यहाँ श्री राज जी के एक और श्री इन्द्रावती जी के दो गुण कहे गए हैं। इसका विशेष कारण यह है कि सागर की लीला लहरों के द्वारा ही सम्पादित होती है, अर्थात् लहराती हुई लहरों को देखकर ही कहा जाता है कि सागर उमड़ रहा है। इसी प्रकार, श्री इन्द्रावती जी अक्षरातीत श्री राज जी की आह्लादिनी शक्ति (लहर रूप)

हैं। इसलिए उनको प्रेममयी रास लीला की दीवानी होकर खेलते हुए ही दर्शाया गया है। अक्षरातीत को कोई भी लीला सीखनी नहीं होती, बल्कि लीला रूप में ही यह सब कहा जा रहा है कि वे रामत को सबसे पहले सीख जाते हैं।

प्रकरण ॥२४॥ चौपाई ॥५४९॥

## राग कालेरो

आवो वाला रामत रासनी कीजे,

आपण कंठडे बांहोंडी कां न लीजे रे॥टेक॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे प्रियतम! आइए, हम एक-दूसरे के गले में बाहें डालकर रास की रामते खेलें।

आ वेख केम करी ल्याव्या रे वालैया, अमने थयो अति मोह रे।

खिण एक अमथी अलगां म थाजो, अमे नहीं खमाय विछोह रे॥२॥

प्राणेश्वर! आपने इतना मनमोहक भेष कैसे धारण कर लिया है? आपकी इस मनमोहिनी छवि को देखकर हम बहुत अधिक मुग्ध हो गयी हैं। आप हमसे एक क्षण के लिए भी अलग मत होइए, क्योंकि हम आपका किसी भी स्थिति में वियोग सहन नहीं कर सकती हैं।

आ वेख अमने वालो घणु लागे, वेख रसाल अति रंग।

दृष्ट थकी अलगां म थाजो, दीठडे ठरे सर्वा अंग॥३॥

आपका यह दोष अत्यधिक प्रेम और आनन्द के रस से ओत-प्रोत है। यह हमें बहुत ही प्यारा लग रहा है। आपकी इस मनमोहिनी छवि को देखकर हमारे सभी अंग तृप्त हुए जा रहे हैं। इसलिए हमारी दृष्टि से एक पल के लिए भी अलग मत होइएगा।

आ वेख अमने गमे रे वालैया, लीधो कोई मोहन वेल रे।

नेंणे पल न आवे रे वालैया, रूप दीसे रंग रेल रे॥४॥

आपका यह भेष हमें बहुत ही अच्छा लग रहा है, क्योंकि आपने सबको मोहित करने वाली मोहन बेल (लता) के समान अति अनुपम रूप धारण किया है। आपका यह रूप इतना आनन्दमयी दिख रहा है कि पल



भर के लिए भी हमारे नेत्रों की पलकें झपकती नहीं हैं।

रामत करतां रंग सहु कीजे, खिण खिण आलिंघण लीजे रे।

अधुर तणो जो रस तमे पीओ, तो अमारा मन रीझे रे॥५॥

प्राण प्रियतम! आप रास की रामतें करते समय सभी प्रकार की आनन्दमयी लीला कीजिए तथा क्षण-क्षण में हमारा आलिंघन लीजिए। यदि आप हमारे अधरों का रसपान करते हैं, तो हमारे मन में बहुत अधिक प्रसन्नता होगी।

उलट अंग न माय रे वालैया, कीजे रंग रसाल रे।

पल एक अमथी म थाओ जुआ, रखे कंठ बांहोंडी टाल रे॥६॥

हे प्रियतम! आपके साथ क्रीड़ा करने के लिए हमारे मन में इतनी अथाह उमंग है कि वह समा नहीं पा रही है।

आप हमारे साथ प्रेम और आनन्द की रसभरी क्रीड़ायेँ कीजिए। हमसे एक पल के लिए भी अलग न होइए और न हमारे गले से अपनी बाँहों को हटाइए।

तम सामूं अमें ज्यारे जोइए, त्यारे जोर करे मकरंद रे।

बाथो बथिया लीजे रे वालैया, एम थाय आनंद रे॥७॥

हे प्रियतम! जब मैं आपकी ओर देखती हूँ, तब मेरे हृदय में आपके प्रति प्रेम की चाहत बहुत अधिक बढ़ जाती है। आप मेरा आलिंगन कीजिए, जिससे मुझे बहुत अधिक आनन्द हो।

**भावार्थ—** "मकरन्द" शब्द का बाह्य अर्थ काम होता है, किन्तु यहाँ "काम" या "मकरन्द" का तात्पर्य विकारजन्य काम से नहीं है, बल्कि पवित्र चाहत से है। गीता ३/३६ में कहा गया है—

"कामः एष क्रोधः एष रजोगुण समुद्भवः।"

अर्थात् काम और क्रोध की उत्पत्ति रजोगुण से होती है। अखण्ड महारास केवल ब्रह्म के उस त्रिगुणातीत-चेतन ब्रह्माण्ड में हुई थी, जहाँ सत्व, रज, और तम ही नहीं है। अतः वहाँ वासना जनित काम की उत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती। सखियों और परब्रह्म में प्रेम के विलास की दिव्य लीला हुई थी, जिसमें विकारों से युक्त काम के होने का प्रश्न ही नहीं है। रास की वाणी में जहाँ भी काम शब्द आया है, उसका तात्पर्य प्रेम की तीव्र चाहना से है, लौकिक काम से नहीं, जो पञ्चभूतात्मक तन से होता है। जहाँ प्रेम है, वहाँ वासना स्वप्न में भी नहीं हो सकती।

रामत करतां आलिङ्घण लीजे, ए पण मोटो रंग रे।

साथ देखतां अमृत पीजे, एम थाय उछरंग रे॥८॥

प्रियतम! आप मेरे साथ रामतें करते हुए मेरा आलिंगन कीजिए। सब सखियों के सामने यदि आप मेरे होठों का अमृत रस पीते हैं, तो मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता होगी।

आलिंघण लेता अमृत पीतां, विनोद कीधां घणां हाँस रे।

कठण भीडाभीड न कीजे रे वालैया, मुंझाय अमारा स्वांस रे॥९॥

मेरे प्रियतम! आप हमारा आलिंगन करते हुए अधरों का अमृत रस पीजिए तथा माधुर्य भाव में हमारे साथ बहुत अधिक हँसी-मजाक भी कीजिए, किन्तु आलिंगन के समय हमें जोर से न दबाइए क्योंकि इससे हमारी स्वाँस रुकने लगती है।

**भावार्थ—** वैसे तो किसी को जोर से आलिंगन करने पर स्वाँस रुकने जैसी बात केवल कालमाया के ब्रह्माण्ड में ही हो सकती है, योगमाया के ब्रह्माण्ड में कदापि नहीं।

किन्तु इस प्रकार की उक्ति प्रेम की माधुर्य भावना में कही जाती है कि जब आप मुझे गले लगाते हैं, तो मेरी स्वाँस रुकने लगती है। यथार्थतः व्यवहार में ऐसा नहीं होता।

**प्रकरण ॥२५॥ चौपाई ॥५५८॥**

## छंदनी चाल

सखी एक भांत रे, मारो वालो जी करे छे वात रे।

लई गले बाथ रे, आंणी अंग पासरे, चुमन दिए चितसूं॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखी! प्रियतम प्रेम के एक निराले ही ढंग से बात करते हैं। वे मेरे अति पास आ जाते हैं, गलें लिपट जाते हैं, हृदय में प्रेम लेकर चुम्बन देते हैं।

मारा वाला मांहें कल रे, अंगे अति बल रे।

रमे घणे बल, रंग अविचल, वल्लभ अति वितसूं॥२॥

प्रियतम के हृदय में असीम शान्ति है। अंग –अंग में अपार बल है। वे बहुत शक्ति के साथ रास की क्रीड़ा करते हैं। उनमें प्रेम का अखण्ड रंग विद्यमान है। इस

प्रकार वे गुणों के भण्डार हैं।

आ जुओ तमे स्याम, करे केवा काम।

भाजे भूसी हाम, राखे नहीं माम, हरवे घणे हितसूं॥३॥

वे हमारी मायावी इच्छाओं को समाप्त कर देते हैं। हे सखियों! तुम प्राण प्रियतम को देखो, किस प्रकार प्रेममयी लीला करते हैं और हृदय में किसी तरह की माया नहीं रहने देते। हमारे परम कल्याण की भावना से माया का पूर्ण रूप से हरण कर देते हैं।

मारा वालासुं विलास, स्यामा करे हाँस।

सूधो रंग पास, करी विस्वास, जुओ जोपे खंतसूं॥४॥

श्री श्यामा जी मेरे प्रियतम के साथ हँसी की आनन्दमयी लीलायें कर रही हैं और अति निश्छल

(भोले) भावों से पूर्ण समर्पण के साथ उन्हें आनन्दित करती हैं। हे सखियों! तुम प्रेम की चाहना के साथ उनकी इस लीला को अच्छी तरह से देखो।

स्यामा स्याम जोड, करतां कलोल।

रमे रंग रोल, थाय झकझोल, बंने एक मतसूं॥५॥

श्री राज श्यामा जी की जोड़ी रास की आनन्दमयी क्रीड़ाओं में संलग्न है। दोनों प्रेम की एक ही भावना से युक्त हैं और आलिंगनबद्ध होकर आनन्द में निमग्न हैं।

बेहू सरखा सरूप, मेली मुख कूप।

पिए रस घूंट, अमृतनी लूट, लिए रे अनितसूं॥६॥

दोनों का स्वरूप एक ही है। दोनों ही अपने मुख से मुख सटाकर प्रेमरूपी रस को घूँट-घूँट कर पी रहे हैं। इस



प्रकार वे अपने हृदय के प्रेमोचित बल से अमृत रूपी आनन्द को आत्मसात कर रहे हैं।

आलिङ्घन लिए, रंग रस पिए।

बंने सुख लिए, लथबथ थिए, आ भीनी स्यामा पतसूं॥७॥

दोनों ही आलिङ्गनबद्ध होकर प्रेम और आनन्द का रसपान कर रहे हैं। दोनों ही एक-दूसरे से लिपटकर प्रेम का सुख ले रहे हैं। इस प्रकार श्री श्यामा जी अपने प्रियतम के आनन्द में डूबी हुई हैं।

इन्द्रावती वात, सुणो तमे साथ।

जुओ अख्यात, बंने रलियात, रमतां इजतसूं॥८॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! तुम सभी मेरी बात सुनो। प्रेम की अदभुत लीला में मग्न रहने वाले

दोनों स्वरूपों (श्याम श्यामा) को देखो। ये दोनों किस प्रकार मर्यादाबद्ध होकर प्रेममयी क्रीड़ा कर रहे हैं।

**भावार्थ**— मर्यादा (इज्जत) के साथ प्रेममयी क्रीड़ा करने का आशय है— धर्मानुकूल लज्जा की चादर ओढ़कर प्रेममयी क्रीड़ा करना। "लज्जा ही नारीणां भूषणं।" धर्म लज्जाविहीन प्रेम की स्वीकृति नहीं देता। धर्मग्रन्थों में अक्षर ब्रह्म को "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तै. उ.), अर्थात् सत्य स्वरूप कहा गया है। जो सत्य है, वही धर्म है। ऐसी स्थिति में सत्य के भी प्रियतम परम सत्य अक्षरातीत से धर्म की मर्यादा-पालन की अवहेलना की सम्भावना कैसे की जा सकती है?

**प्रकरण ॥२६॥ चौपाई ॥५६६॥**

## राग सामेरी

इस प्रकरण में "आम की रामत" का विवेचन किया गया है।

रामत आंबानी कीजे मारा वालैया, आवी ऊभा रहो लगतां रे।  
 सखियो ज्यारे बल करे, त्यारे रखे कांई तमे डगतां रे॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्रियतम ! आप मेरे पास आकर खड़े रहिए। अब हम आम की रामत खेलते हैं। सखियाँ कितनी भी शक्ति लगाएँ, तब भी आप हिलना नहीं।

तमे आंबला ना थड थाओ, अमे चरण झालीने बेसूं।  
 मारो आंबो दहिए दूधे सीचूं, एम केहेसूं प्रदखिणा देसूं॥२॥

आप आम के वृक्ष का तना बन जाइए। हम सखियाँ आपके चरण पकड़कर बैठ जाएँगी। हम ऐसा मानेंगी कि हम अपने आम के वृक्ष को दूध और दही से सींच रही हैं। ऐसा कहकर हम उसकी प्रदक्षिणा देंगी।

केटलीक सखियो आंबलो सींचे, अमे चरण तमारे वलगां।  
 दृढ करीने अमे चरण ग्रह्या, जोइए कोण करे अमने अलगां॥३॥  
 कुछ सखियाँ आम को सींच रही हैं और हम आपके चरणों से लिपटी हुई हैं। हमने आपके चरण कमलों को बहुत ही दृढ़तापूर्वक पकड़ रखा है। हम देखती हैं कि अब हमें कौन आपके चरणों से अलग कर सकती है?

बल करीने तमे ऊभा रेहेजो, खससो तो हंससे तम पर।  
 जो अमे चरण ग्रही नव सकूं, तो सहु कोई हंससे अम पर॥४॥

हे प्रियतम! आपको पूरी शक्ति लगाकर यहीं खड़े रहना है। यदि आप थोड़ा सा भी खिसक जाएँगे तो आपकी हँसी होगी, और यदि हम आपके चरणों को पकड़े नहीं रह सकी तो प्रत्येक सखी हमारे ऊपर हँसी करेगी।

ते माटे रखे चरण चाचरो, थिर थई ऊभा रहेजो।  
जो जोर घणुं आवे तमने, त्यारे तमे अमने केहेजो॥५॥

इसलिए आप अपने चरणों को हटने नहीं देना और स्थिर होकर खड़े रहिएगा। यदि बहुत शक्ति लगाकर चरण खींचने से आपको कष्ट होता है, तो आप हमको अवश्य कहिए।

अनेक सखियो चरणे वलगी, खसवा नहीं दीजे रे।  
वालो सखियो सहु थाजो सावचेत, ओलियो ऊपर सामी हांसी कीजे॥६॥

बहुत सी सखियाँ श्री राज जी के चरणों से लिपट गयीं हैं और किसी भी तरह से हिलने नहीं दे रही हैं। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे प्रियतम! हे सखियों! सभी सावचेत हो जाँएँ। हारने वाले की हँसी तो होनी ही है।

जे सखी सांची थई ने वलगी, ते ता वछोडतां नव छूटे रे।

ओलियो सखियो बल करी करी थाकी, ते ता उठाडता नव उठे रे॥७॥

जो सखियाँ सच्चे हृदय से चरणों में लिपटी रहीं , वे छुड़ाने पर भी चरणों को नहीं छोड़ती हैं। खींचने वाली सखियाँ अपनी सारी शक्ति लगा-लगाकर थक जाती हैं, फिर भी चरणों में लिपटी हुई सखियों को बार -बार खींचने पर भी उठा नहीं पाती हैं।

**भावार्थ-** रास की इस रामत के द्वारा परोक्ष रूप में हमें यह संकेत दिया जा रहा है कि इस जागनी लीला में

किसी भी स्थिति में हमें धनी के चरणों को नहीं छोड़ना है, क्योंकि धनी के चरण कमल ही हमारे जीवन के आधार हैं।

जे सखी चरणे रही नव सकी, ते पर हांसी थई अति जोर रे।  
 इंद्रावती वालो ने सखियो, दिए ताली हांसी करे सोर रे॥८॥  
 जो सखियाँ धनी के चरणों को पकड़े नहीं रह सकी,  
 उन पर बहुत अधिक हँसी हुई। प्रियतम अक्षरातीत, श्री  
 इन्द्रावती जी, एवं अन्य सखियों ने तालियाँ बजा –  
 बजाकर उन हारी हुई सखियों की हँसी की। इस प्रकार  
 इस प्रेममयी लीला से वहाँ कोलाहल – सा होने लगा।

**भावार्थ-** रास लीला की इस रामत को किसी लौकिक  
 क्रीड़ा के साथ नहीं जोड़ना चाहिए। सम्भवतः कुछ  
 बुद्धिजीवी वर्ग इन लीलाओं के प्रति अपने मन में यह

संशय कर सकता है कि अक्षर से भी परे सच्चिदानन्द अक्षरातीत क्या बच्चों की तरह से इस प्रकार की लीलायें कर सकते हैं?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि इस तरह के संशय ज्ञान के धरातल पर ही हुआ करते हैं। माया के इस ब्रह्माण्ड में परब्रह्म की खोज में ज्ञान का आधार लिया जाता है। जहाँ ज्ञान है, वही विधि और निषेध (नियम और उसका उल्लंघन) है। इसी जगत में धर्म और अधर्म की व्याख्या होती है। किन्तु प्रेम शब्दातीत, त्रिगुणातीत, और इस जगत से सर्वथा परे है। वह इस परिधि में नहीं आता कि उसे बालक, युवा, या वृद्ध के कार्यों के आधार पर बाँटा जा सके।

अक्षर ब्रह्म को विधि और निषेध के अन्तर्गत आने वाली सारी लीलायें तो मालूम ही हैं। वे असुरों के भोगमय



जीवन से लेकर देवों के तपोमय मार्ग, तथा ईश्वरी के बेहद मार्ग को भली-भांति जानते हैं। किन्तु एकमात्र प्रेम मार्ग को ही नहीं जानते, जिस की इच्छा उन्होंने अक्षरातीत से की थी, इसलिए उन्हें दिखाने के लिए रास लीला की जा रही है। ऐसी अवस्था में रास की इन रामतों पर संशय का प्रश्न नहीं उठ सकता।

**प्रकरण ॥२७॥ चौपाई ॥५७४॥**

## राग आसावरी

इस प्रकरण में "उड़न खटोले की रामत" का वर्णन किया गया है।

रामत उड़न खाटलीनी, मारा वालाजी आपण कीजे रे।  
रेत रूडी छे आणी भोमे, ठेक मृग जेम दीजे रे॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे मेरे प्रियतम! अब हम उड़न खटोले की रामत खेलें। यहाँ की धरती पर रेत बहुत ही सुन्दर है। इस पर हम हिरन की तरह लम्बी छलाँग लगाते हुए खेलें।

सखियो मनमां आनंदियो, ए रामतमां अति सुख रे।  
साथ सहु रब्दीने रमसुं, मारा वालाजी सनमुख रे॥२॥

यह सुनकर सब सखियाँ आनन्दित हो गयीं कि इस रामत में बहुत अधिक सुख है। अब मेरे प्रियतम के सम्मुख सब सखियाँ प्रतिद्वन्दी बनकर (होड़ बाँधकर) इस रामत को खेलेंगी।

पहेलो ठेक दीधो मारे वाले, पछे जो जो ठेक अमारो रे।  
तो मारा वचन मानजो सखियो, जो दऊं ठेक वालाजीथी सारो रे॥३॥  
सबसे पहले मेरे धाम धनी ने छलाँग लगायी है। इसके पश्चात् हे सखियों! मेरी छलाँग को देखो। यदि मैं अपने प्राणेश्वर से अधिक अच्छी छलाँग लगा दूँ, तो तुम मेरे वचनों की महत्ता मान लेना।

जुओ रे सखियो तमे वालोजी ठेकतां, दीधी फाल अति सारी रे।  
निसंक अंग संकोडीने ठेक्या, जाऊं ते हूं वलिहारी रे॥४॥

हे सखियों! तुम वालाजी को छलाँग लगाते हुए देखो। उन्होंने यह बहुत अच्छी छलाँग लगायी है। निश्चित रूप से उन्होंने अपने अंगों को सिकोड़कर ऊँची छलाँग लगायी। मैं उनकी इस लीला पर न्योछावर होती हूँ।

हांऊ हांऊ रे सखियो तमे ठेक वखाण्यो, ए तो दीधो लडसडतां रे।  
 एवा तो ठेक अमे सहु कोई देतां, सेहेजे रामत करतां रे॥५॥  
 ठहरो, ठहरो सखियों! तुम प्रियतम की छलाँग की इतनी महिमा गा रही हो। इन्होंने तो ढीली-ढाली छलाँग लगायी है। इस तरह की छलाँग तो हम सखियाँ बहुत ही सरलता से खेलते-खेलते लगा लेती हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई में श्री इन्द्रावती जी के कथन का आशय श्री राज जी की छलाँग को छोटा करके आँकना नहीं है, बल्कि यह प्रेम भरे भावों की मधुर

अभिव्यक्ति है। प्रेम के हास-परिहास में इसी तरह की बात कही जाती है।

रहो रहो रे सखियो तमे ठेक वखाण्यो, हवे जो जो अमारो ठेक रे।  
 एवी तो फाल साथे केटलीक दीधी, तूं तो मोही उडाडतां रेत रे॥६॥  
 हे सखियों! ठहरो, तुमने श्री राज जी की छलाँग की बहुत अधिक प्रशंसा कर दी है। अब जरा मेरी छलाँग तो देखो। इनकी छलाँग जैसी छलाँग तो कई सखियों ने लगा दी है। इन्होंने तो केवल रेत उड़ाई है, और तुम इसी को बहुत बड़ी छलाँग मानकर मुग्ध हो रही हो, तथा प्रशंसा के पुल बाँध रही हो।

**भावार्थ-** समर्पण, एकनिष्ठ प्रेम, और मधुर हास-परिहास के साँचे में ढली हुई प्रेम की यह अभिव्यक्ति, इस मायावी जगत में कहीं विरला ही सुनने को मिलती

है।

कोणे हँसिए कोणे वखाणिए, ए रामत थई अति रंग रे।

एणी विधे दीधां अमे ठेक, मारा वालाजीने संग रे॥७॥

किसकी छलाँग की हँसी उड़ाएँ और किसकी महिमा गाएँ? उड़न खटोले की यह रामत बहुत आनन्दमयी है। इस रामत में मैंने अपने प्राणेश्वर के साथ आनन्द देने वाली छलाँग लगायी।

ए रामतडी जोई करीने, हवे निरतनी रामत कीजे रे।

रूडी रामत इन्द्रावती केरी, जेमां साथ वालो मन रीझे रे॥८॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! उड़न खटोले की इस रामत को देखने के पश्चात्, अब हम नृत्य की रामत करें। जिसमें मेरी (श्री इन्द्रावती जी की) रामत को

अच्छी तरह से देखकर सब सखियों तथा श्री राज जी का मन रीझ जाये।

प्रकरण ॥२८॥ चौपाई ॥५८२॥

## राग कल्याण

इस प्रकरण में नृत्य की रामत का वर्णन किया गया है।

वाला तमे निरत करो मारा नाहोजी रे, अमने जोयानी खांत।

साथ जोई आनंदियो रे, कांई वेख देखी एक भांत॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राणवल्लभ ! आप नृत्य करें। हमें आपका नृत्य देखने की बहुत अधिक चाहना है। आपका यह अति सुन्दर भेष देखकर सब सखियाँ बहुत ही आनन्दित हो गयी हैं।

तमे निरत करो रे भामनी, निरत रूडी थाय नार।

तमे वचन गाओ प्रेमना, पासे स्वर पूरूं रसाल॥२॥

यह सुनकर श्री राज जी कहते हैं कि हे सखियों! पहले



तुम नृत्य करो, क्योंकि स्त्रियों का नृत्य अधिक अच्छा होता है। तुम प्रेम के गीत गाओ। उसका अनुसरण करते हुए मैं भी पीछे से मधुर स्वर में गाऊँगा।

सुणो सुन्दर वल्लभजी मारा, निरत केणी पेरे थाय।

अमने देखाडो आयत करी, कांई उलट अंग न माय॥३॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं— अति सुन्दर, मेरे प्राणवल्लभ! मेरी बात सुनिये, हम यह जानना चाहती हैं कि नृत्य कैसे होता है? पहले आप करके बताइए। हमें आपका नृत्य देखने की इच्छा है। हमारे मन में आपका नृत्य देखने की इतनी उमंग है कि वह समा नहीं पा रही है (अपार उमंग है)।

जेणी सनंधे पांउं भरो, अने अंग वालो नरम।

भमरी फरो जेणी भांतसुं, अमे नाचूं फरूं तेम॥४॥

आप जिस तरह से नृत्य में अपने कदम रखेंगे, और अपने कोमल अंगों को मोड़ेंगे, तथा गोलाई में घूमेंगे, हम भी उसी तरह से नाचेंगी तथा अंगों को मोड़ते हुए गोलाई में घूमेंगी।

हस्त करी देखाडिए, अने ठमके दीजे पाय।

वचन गाइए प्रेमनां, कांई तेना अरथज थाय॥५॥

आप नृत्य की मुद्रा में अपने हाथों को चलाकर दिखाइए और पैरों से ठुमका लगाइए। प्रेम के भावों वाले ऐसे गीत गाइए, जिसका कुछ अर्थ निकलता हो।

कंठ करीने राग अलापिए, कांई स्वर पूरे सकल साथ।

वेण वेणा रबाबसों, कांई ताल बाजे पखाज॥६॥

अपने सुन्दर गले से मधुर राग का अलाप कीजिए (गाइए)। हम सब सखियाँ आपके साथ स्वर मिलाएँगी। इसके साथ ही बाँसुरी, वीणा, सारंगी, झाँझ, तथा पखावज आदि के बाजे भी बजाए जायेंगे।

करताल मां बाजे झरमरी, कांई श्रीमंडल हाथ।

चंग तंबूरे रंग मले, वालो नाचे सकल साथ॥७॥

करताल में जड़ी हुई छोटी-छोटी झाँझें भी बजायी जायेंगी। सखियाँ अपने हाथों से श्रीमण्डल भी बजाएँगी। इसके अतिरिक्त चंग (खजड़ी जैसा एक बाजा) और तम्बूरे के साथ अति आनन्दमयी संगीत की रसधारा फूटेगी। इस अवस्था में आपके साथ हम सब सखियाँ

नृत्य करेंगी।

भूखण बाजे भली भांतसूं, धरती करे धमकार।

सब्द उठे सोहांमणा, उछरंग वाध्यो अपार॥८॥

नृत्य करते समय सखियों तथा युगल स्वरूप के आभूषणों से वाद्यों की तरह बहुत ही मधुर ध्वनि निकल रही है। पैरों की ताल से धरती से धम-धम की ध्वनि हो रही है। प्रेम भरे गीतों में अति मधुर शब्दों का संचार हो रहा है। सबके अन्दर अपार उत्साह छाया हुआ है।

निरत करी नरम अंगसूं, कांई फेरी फर्या एक पाय।

छेक वाले छेलाईसूं, तत्ता थेई थेई थाय॥९॥

प्रियतम ने अपने कोमल अंगों से नृत्य किया। उन्होंने एक पैर पर घूमते हुए नृत्य किया। जब वे बहुत चतुराई से

पैरों से ताली देने लगे, तो चारों ओर तत्ताथई-तत्ताथई की मधुर आवाज गूँजने लगी।

एक पोहोर आनंद भरी, कांई रंग भर रमिया एह।

साथ सकलमां वालेजी ए, रमतां कीधां सनेह॥१०॥

एक प्रहर तक आनन्द भरी यह रामत चलती रही। सभी ने आनन्द में भरकर मधुर नृत्य किया। सब सखियों के मध्य श्री राज जी ने नृत्य किया और उनसे बहुत अधिक प्रेम किया।

आनंद घणो इंद्रावती, वालाजीने लागे पाए।

अवसर छे कांई अति घणो, वाला रासनी रामत मांहे॥११॥

श्री इन्द्रावती जी प्रियतम श्री राज जी के चरणों में प्रणाम करके कहती हैं कि हे धाम धनी! रास की इस

रामत में हमें बहुत अधिक आनन्द की अनुभूति हुई है।  
आपका प्रेम और आनन्द पाने का यह बहुत ही अच्छा  
अवसर है।

ते सर्वे चित धरी, अमसूं रमो अति रंग।

कहे इंद्रावती साथने, रमवानी घणी उमंग॥१२॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे प्रियतम ! इन सारी  
बातों को ध्यान में रखकर , आप हमारे साथ अति  
आनन्द में भरकर नृत्य कीजिए। हम सब सखियों के मन  
में आपके साथ नृत्य करने के लिए बहुत ही अधिक उमंग  
है।

प्रकरण ॥२९॥ चौपाई ॥५९४॥

## चरचरी छंद

इस प्रकरण में नृत्य की मनोहर लीला का विवेचन किया गया है।

मृदंग चंग, तंबूर रंग, अति उमंग,

गावती सखी स्वर करी॥१॥

मृदंग, चंग, तथा तानपुरे की आनन्दमयी धुनों के साथ सखियाँ अत्यधिक उमंग में भरकर मधुर स्वरों में गायन कर रही हैं।

करताल ताल, बाजे विसाल, वेण रसाल,

रमत रास सुन्दरी॥२॥

इस समय करताल, झाँझ, तथा अन्य बड़े-बड़े बाजे बज रहे हैं। बाँसुरी से मधुर स्वर लहरी फूट रही है। सब सखियाँ अपने प्रियतम के साथ रास की क्रीड़ा में संलग्न

हैं।

नार सिणगार, भूखण सार, संग आधार,

निरत करे सनंधरी॥३॥

अत्यधिक सुन्दर आभूषणों से सखियों का श्रृंगार सजा हुआ है और वे अपने प्राणाधार अक्षरातीत के साथ अति मनोहर ढंग से नृत्य कर रही हैं।

घम झणाझण, जोड रणारण, बिछुडा ठणाठण,

छेक वाले फेरी फरी॥४॥

जब सखियाँ अति चातुर्यतापूर्वक बारम्बार गोलाई में घूमकर नृत्य करती हैं, तो उनके पैरों की ताल से धरती से घम-घम की गम्भीर और मोहक ध्वनि निकलती है। झांझरी और घूंघरी झन-झन की मधुर ध्वनि देती हैं, तो



कांबी और कड़ला की जोड़ी से रणकार उठती है,  
अर्थात् रन-झन, रन-झन की मोहक ध्वनि आती है।  
और बिछुए से ठन-ठन का स्वर गूँजता है।

वचन गाए, हस्तक थाए, भाव संधाए,  
देखाडे वालो खंत करी॥५॥

सखियाँ प्रेम भरे गीत गाती हैं और अपने हाथों की  
तरह-तरह की भाव-भंगिमाओं से हृदय के प्रेम भाव को  
व्यक्त करती हैं। वे प्रियतम अक्षरातीत को नृत्य के द्वारा  
अपने हृदय का प्रेम दर्शाती हैं।

हांस विलास, सकल साथ, लेत बाथ,  
मध्य रामत हेत करी॥६॥

सभी सखियाँ नृत्य में हँसी का आनन्द लेती हैं और

नृत्य के बीच में अत्यधिक प्रेमपूर्वक अपने प्राणेश्वर के गले लग जाती हैं।

वेख वसेख, राखी रेख, सुख लेत,

वाहंत मुखे वांसरी॥७॥

श्री इन्द्रावती जी की वेश-भूषा बहुत ही मनमोहक है। उन्होंने रामतों में सखियों की लाज बचाई है। वे अपने मुख से बाँसुरी बजाकर अपार आनन्द ले रही हैं।

**भावार्थ-** यद्यपि अक्षरातीत अपनी ही अंगरूपा सखियों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं, इसलिए उसमें हारने, जीतने, या लाज बचाने जैसी कोई बात नहीं होती। फिर भी खेल में होड़ (प्रतिद्वन्द्विता) तो होती ही है, जिसमें प्रिया-प्रियतम (माशूक-आशिक) एक होते हुए भी हारना नहीं चाहते। इसी सन्दर्भ में उपरोक्त चौपाई में लाज बचाने का

कथन किया गया है।

धमके धारुणी, गाजती गारुणी, चांदनी रैणी,  
जोत करे जामंत री॥८॥

नृत्य में पैरों के ताल देने से धरती से धम-धम की ध्वनि उठ रही है, जिसकी प्रतिध्वनि चारों ओर गूँज रही है। चन्द्रमा अपनी शीतल ज्योति से चारों ओर प्रकाश कर रहा है, जिससे इस चाँदनी रात की शोभा अनुपम दिखायी दे रही है।

रंग वनमां, सोभित जमुना, पसु पंखीना,  
सब्द रंगे थंत री॥९॥

इस नित्य वृन्दावन में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द की वर्षा हो रही है। यमुना जी का किनारा बहुत ही सुन्दर लग

रहा है। चारों ओर पशु-पक्षियों के आनन्द देने वाले अति मीठे शब्द गूँज रहे हैं।

पसु पंखी, जुए जंखी, मिले न अंखी,  
सुख देखी रामत री॥१०॥

अपार सुख देने वाली नृत्य की इस रामत को पशु-पक्षी भी अत्यधिक मुग्ध होकर देख रहे हैं और उनकी आँखों की पलकें भी नहीं झपक रही हैं।

निरत करे, खंत खरे, फेरी फरे,  
इंद्रावती एक भांत री॥११॥

श्री इंद्रावती जी हृदय के शुद्ध प्रेम के साथ नृत्य कर रही हैं। वे गोलाई में घूमते हुए तरह-तरह के हाव-भावों से विशेष प्रकार का नृत्य कर रही हैं।

वालती छेक, अंग वसेक, रंग लेत,  
छबके चुमन देत री॥१२॥

श्री इन्द्रावती जी नृत्य की इस लीला में तिरछे मुड़कर उछलती हैं तथा अपने कोमल अंगों को विशेष प्रकार से मोड़ती हैं। वे प्रेम भरी चतुराई के साथ प्रियतम को चुम्बन देती हैं और नृत्य का आनन्द लेती हैं।

प्रकरण ॥३०॥ चौपाई ॥६०६॥

## राग कालेरो

इस प्रकरण में सखियों के अन्दर मान उत्पन्न होने का प्रसंग है।

हमचडी सखी संग रे।

आपण रमसुं नवले रंग, सखी रे हमचडी॥टेक॥

रामतडी छे अति घणी, करसुं सघली सार रे।

विविध पेरे सुख दऊं रे सखियो, जेम तमे पामो करार॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! प्रियतम के साथ लीला करने की हमारे मन में बहुत अधिक उमंग है। इसलिए अब हम नई-नई आनन्दमयी क्रीड़ाओं के द्वारा लीला करेंगे।

यह सुनकर श्री राज जी कहते हैं— हे सखियों! यद्यपि अब तक का खेल बहुत ही सुन्दर रहा है, किन्तु अब मैं

सबसे श्रेष्ठ लीला करूँगा। मैं तुम्हें अनेक प्रकार की लीलाओं द्वारा सुख दूँगा, जिससे तुम्हारे हृदय को परम शान्ति मिले।

**भावार्थ-** सखियों को सुख देने वाले श्री राज जी ही हैं, इसलिए यहाँ श्री राज जी का कथन माना जाएगा, श्री इन्द्रावती जी का नहीं। प्रथम दो पंक्तियों में श्री इन्द्रावती जी का कथन आ चुका है।

अमने वेण वजाडी देखाडो, जेवो पेहेलो वायो रसाल रे।  
वेण सांभलतां ततखिण वालैया, अमे जीव नाख्या तत्काल॥२॥

यह सुनकर श्री इन्द्रावती जी कहती हैं- हे धाम धनी! आपने पहले जिस प्रकार मधुर बाँसुरी बजाई थी, उसी प्रकार हमें बजाकर दिखाइए। उस समय की बाँसुरी की आवाज इतनी मधुर थी कि हमने उसे सुनते ही उसी

समय अपना शरीर छोड़ दिया था।

जुओ रे सखियो वालो वेण वजाडे, अधुर धरी अति रंग।  
 वेण सांभलतां ततखिण तमने, काम वाध्यो सर्वा अंग रे॥३॥  
 हे सखियों! देखो, प्रियतम इस समय अपने होठों पर  
 बाँसुरी रखकर बहुत अधिक आनन्दमयी स्वरों में बजा  
 रहे हैं। यह वही बाँसुरी की ध्वनि है, जिसको सुनने पर  
 तुम्हारे अंग-अंग में अलौकिक प्रेम पैदा हो गया था।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण में "काम" शब्द  
 का तात्पर्य, विकारजनित वासनामय शारीरिक काम से  
 नहीं है। वस्तुतः यह दिव्य काम है, जो त्रिगुणातीत एवं  
 पूर्णतया निर्विकार होता है। इसमें सांसारिक वासनाजन्य  
 विकारों एवं क्रियाओं का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। जहाँ  
 प्रेम (दिव्य काम) है, वहाँ वासना के संस्कार भी नहीं रह



सकते। इस सम्बन्ध में तारतम वाणी में कहा गया है—

वचने कामस धोई काढ़िए, राखिए नहीं रज मात्र।

जोगवाई सरवे जीतिए, त्यारे थैए प्रेम ना पात्र॥

किरन्तन

अर्थात् जब तक हमारे हृदय में रंचमात्र भी विकार है , तब तक हमारे अन्दर प्रेम की पात्रता आ ही नहीं सकती। स्पष्ट है कि अक्षरातीत एवं सखियों की जिस अद्वैत लीला में "काम" शब्द का प्रयोग हुआ है, उसका आशय अस्थि, चर्म, माँस, रक्त, और मल-मूत्र के पिण्ड के वासनात्मक सम्बन्धों से नहीं है, अपितु यह अन्तरात्मा की पवित्र चाहत है, जो अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के लिए होती है।

सुणो रे सखियो हूं वेण वजाडूं, वेण तणी सुणो वाणी।

खिण एक पासेथी अलगा न करूं, राखूं हैडामां आणी॥४॥

श्री राज जी कहते हैं— हे सखियों! मेरी यह बात सुनो। मैं बाँसुरी बजाता हूँ, इसकी मनमोहिनी ध्वनि को सुनो। मैं तुम्हें एक क्षण के लिए भी अलग नहीं कर सकता। मैंने तो तुम्हें अपने हृदय मन्दिर में बसा रखा है।

**भावार्थ—** उपरोक्त चौपाई को पढ़कर सुन्दरसाथ को आत्ममन्थन करना चाहिए कि वे जीव सृष्टि की नकल करके नवधा भक्ति और कर्मकाण्डों के जाल को ही सर्वोपरि क्यों मान रहे हैं? उन्हें तो तारतम वाणी का वह पुनीत मार्ग अपनाना चाहिए, जिसमें प्रिया—प्रियतम (माशूक—आशिक) एक—दूसरे के हृदय में समाये होते हैं।

उलट तमने अति घणो वाध्यो, वली रंग उपजावुं निरधार।

जेटली रामत कहो रे सखियो, ते रमाडूँ आवार॥५॥

तुम्हारे अन्दर रास क्रीड़ा के लिए बहुत अधिक उमंग बढ़ गयी है। इसलिए अब मैं तुम्हारे अन्दर पुनः बहुत अधिक आनन्द उत्पन्न करूँगा। हे सखियों! तुम जितनी भी रामतें कहो, अब मैं उतनी ही अधिक रामतें खेलाकर तुम्हें आनन्दित करूँगा।

मान घणो मानवंतियो ने, तामसियो झुंझार।

प्रेम घणो अंग आ संगे, एणे विरह नहीं लगार॥६॥

मान का भाव रखने वाली मानवन्ती तामसी सखियों में मान एवं अहम् की प्रवृत्ति अधिक हो गयी। उन्होंने अपने हृदय में मात्र धनी के अथाह प्रेम का ही अनुभव किया था। इन्हें विरह की जरा भी अनुभूति नहीं थी।

**भावार्थ-** "मान करने" का तात्पर्य है, अपने प्रियतम से मान (सम्मान) की अपेक्षा रखना। स्वयं का कुछ अस्तित्व मानने पर ही अपने प्रियतम से सम्मानित होते रहने की इच्छा होती है। जिसने प्रेम की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है, वह भला किसके लिये सम्मान चाहेगा?

"मान" की भावना तामस के अंश के कारण होती है। तामसी सखियों से तात्पर्य काम-क्रोध से युक्त तमोगुणी सखियाँ नहीं, बल्कि तमोगुण का वह सूक्ष्माति सूक्ष्म अंश, जिसके कारण प्रेम में समर्पण की भावना तो रहती है, किन्तु अपना स्वाभिमान एवं सम्मान पाने की भावना भी बनी रहती है। इन्हें ही मानवन्ती या तामसी सखियाँ कहते हैं।

यद्यपि योगमाया का ब्रह्माण्ड त्रिगुणातीत है और वहाँ

सत्व, रज, तम की कोई लीला नहीं हो सकती, किन्तु ब्रज लीला में मान की प्रवृत्ति रखने वाली जिन गोपियों के तन में ब्रह्मसृष्टियों की सुरता आई थी, उन्हें तामसी सखियाँ कहते हैं। गोपियों के ये जीव ब्रज के संस्कारों को अपने साथ योगमाया में भी ले गए थे, जिसके कारण इन्हें वहाँ भी "मान" ने आ घेरा।

यदि यह कहा जाये कि योगमाया के त्रिगुणातीत ब्रह्माण्ड में कालमाया के त्रिगुणात्मक संस्कारों का प्रभाव कैसे हो सकता है, तो इसके समाधान में यही कहा जाएगा कि बिना विरह की अग्नि में जले वे संस्कार मिट नहीं सकते। यह बात तो जागनी लीला के सन्दर्भ में भी कही जाती है—

पिया के विरह सों निरमल किए, पीछे अखंड सुख सबों को दिए।

प्र. हि. ३७/११२

जब परमधाम का ज्ञान अवतरित होने के पश्चात् भी कालमाया के जीवों को निर्मल होने के लिए विरह की भट्टी में जलना पड़ता है, तो मान की भावना रखने वाली सखियों को विरह में जलाना अनिवार्य था। तभी उन्हें प्रेम का वास्तविक आनन्द मिल सकता था। आत्मा तो मात्र द्रष्टा है। न वह राजसी है, न सात्विकी (स्वांतसी), और न तामसी।

**तामस मांहे तामसियो, एणी वातडी कही न जाय।**

**कहे इंद्रावती सुणो रे साथजी, वाले एम कीधां अंतराय॥७॥**

तामसी सखियों के अन्दर स्वाभिमान की प्रवृत्ति इस प्रकार बढ़ गई कि उसे व्यक्त किया ही नहीं जा सकता। श्री इंद्रावती जी कहती हैं— हे सखियों! मेरी बात सुनो! हमारा अहं दूर करने के लिए श्री राज जी हमसे अलग हो

गए।

**भावार्थ-** इस चौपाई के पहले चरण में तामसी सखियों को तामस से युक्त बताया गया है। उसका अर्थ यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि वे बहुत अधिक अहंकारी हो गयी थीं। जिस प्रकार सफेद चादर पर एक छोटा सा काला धब्बा सबको नजर आ जाता है, उसी प्रकार तामसी सखियों ने भी मन में यह ले लिया कि श्री राज जी तो पूर्णतया हमारे वश में आ गए हैं। इतनी छोटी सी भूल के कारण उन्हें तामस भाव में आ जाना कहा है। अन्तर्धान के और भी कई कारण थे, जो इस प्रकार हैं-

(१) केवल-ब्रह्म नौ रसों (श्रृंगार, वियोग, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अदभुत, तथा शान्त रस) की भूमिका है। इसमें एक रस वियोग (विप्रलम्भ) भी है। इस भूमिका में अति अल्प समय के लिए वियोग होता ही

है।

(२) अक्षर ब्रह्म यह समझने लगे थे कि वे साक्षात् परमधाम में ही यह लीला देख रहे हैं। उन्हें वास्तविकता का बोध कराने के लिए भी वियोग अति आवश्यक था।

**प्रकरण ॥३१॥ चौपाई ॥६१३॥**



## रामत अंतरध्याननी

इस प्रकरण में श्री राज जी के अन्तर्धान होने का प्रसंग दर्शाया गया है।

वृन्दावनमां रामत करतां, जुजवो थयो सर्व साथ।

वली आवी ततखिण एक ठामे, नव दीसे ते प्राणनो नाथ॥

मारो जीव जीवनजी, लई गया हो स्याम॥१॥

वृन्दावन में रास की रामतें करते-करते सभी सखियाँ अलग-अलग हो गयीं। पुनः उसी क्षण जब एक स्थान पर एकत्रित हुयीं, तो उन्हें अपने प्रियतम अक्षरातीत (श्री प्राणनाथ) का दर्शन नहीं हुआ। विरह की इस अवस्था में वे कातर (दुःख से व्याकुल) स्वरों में कहने लगीं कि हे प्रियतम! आपके अदृश्य हो जाने से यही लग रहा है कि हमारे जीवन का आधार (सर्वस्व) ही चला गया है।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई में रास की लीला करने वाले आवेश स्वरूप को श्री प्राणनाथ कहा गया है, जो यह सिद्ध करता है कि श्री प्राणनाथ आत्मा के प्रियतम को कहते हैं। वे ही मूल-मिलावे में विराजमान हैं, तथा उन्होंने व्रज-रास में श्री कृष्ण जी के तन में लीला की, और इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री देवचन्द्र जी और श्री मिहिरराज जी के तन में लीला की है।

अक्षरातीत के लिए भावपरक नाम ही महत्वपूर्ण है, शरीरपरक नहीं, क्योंकि शरीरपरक नाम आवेश शक्ति के विराजमान होने से पहले भी रखे जाते हैं और ये हमेशा बदलते रहते हैं, जैसे- श्री कृष्ण जी, श्री देवचन्द्र जी, एवं श्री मिहिरराज जी। भावपरक नाम शाश्वत् रहता है, जैसे- श्री प्राणनाथ, श्री राज, एवं श्री जी। व्रज और रास में श्री देवचन्द्र जी या श्री मिहिरराज जी का

अस्तित्व नहीं है, लेकिन श्री प्राणनाथ या श्री राज नाम का अस्तित्व सबमें (ब्रज, रास, एवं जागनी) रहा है।

श्री कृष्ण जी को श्री देवचन्द्र जी या श्री मिहिरराज जी नहीं कह सकते हैं और न ही श्री मिहिरराज जी को श्री कृष्ण जी या श्री देवचन्द्र जी कह सकते हैं। लेकिन इनके अन्दर लीला करने वाला स्वरूप एक अक्षरातीत का ही है, जिसे श्री प्राणनाथ कहें, श्री राज कहें, या श्री जी कहें।

काया केम चाले तेह रे, कालजडूं कापे जेह रे।

ऊभी केम रहे देह, बांध्या जे मूल सनेह॥

त्राटकडे दीधा छेह, मारो जीव जीवनजी लई गया हो स्याम॥२॥

प्रियतम के विरह में हमारा यह शरीर भला अब कैसे जीवित रह सकता है? विरह के दुःख से हमारा कलेजा

काँप रहा है। प्रियतम के मूल सम्बन्ध के प्रेम से बँधा हुआ यह शरीर भला अब कैसे जीवित रह सकता है? इस वियोग ने तो हमारे प्रेम और आनन्द रूपी महल के टुकड़े-टुकड़े कर दिए हैं। हे प्रियतम! आपके अदृश्य हो जाने से तो हमारे जीवन का आधार ही समाप्त हो गया है।

सखियो मलीने विचारज कीधो, पूछिए स्यामाजी किहांछे स्याम।

रामतनों रंग हमणां वाध्यो, मन मांहें हुती मोटी हाम॥३॥

सखियों ने आपस में मिलकर विचार किया कि हम सभी मिलकर श्री श्यामा जी से पूछें कि श्री राज जी कहाँ हैं? रास की रामतों का आनन्द तो अभी बढ़ा ही था कि प्रियतम अन्तर्धान हो गए। हमारे हृदय में तो प्रियतम से प्रेम करने की बड़ी-बड़ी इच्छाएँ भरी थी।

साथ मांहों मांहें खोलतां, नव दीसे स्यामाजी त्यांहें।

त्यारे जुजवी दोडी जोवा वनमां, ए बंने सिधाव्यां क्यांहें॥४॥

सब सखियों ने आपस में श्री श्यामा जी को बहुत खोजा, किन्तु वे कहीं भी दिखाई नहीं दीं। तब सभी वन में अलग-अलग होकर खोज करने दौड़ीं कि ये दोनों (श्री राज श्यामा जी) कहाँ चले गए हैं?

जोवंता जुजवा वनमां, स्यामाजी लाध्या एक ठाम।

स्यामाजी स्याम किहां छे, मारुं अंग पीडे अति काम॥५॥

वन में अलग-अलग दिशाओं में खोजने पर श्री श्यामा जी एक स्थान पर मूर्च्छित अवस्था में मिलीं। सब सखियाँ उनसे पूछने लगीं कि हे श्यामा जी! श्री राज जी कहाँ हैं? उनसे मिलने की तड़प हमें बहुत व्याकुल कर रही है।

साथ स्यामा जी ने देखी करी, मनडां थया अति भंग।

स्यामाजी तिहां बोली न सके, जेमां एवडो हुतो उछरंग॥६॥

सखियों ने जब श्यामा जी की अवस्था देखी, तो उनके मन का धैर्य बहुत ही टूट गया। जिस श्यामा जी में रास खेलने का इतना अधिक उत्साह था, वे सखियों के पूछने पर कुछ भी बोल नहीं सकी।

घडी एक रहीने स्यामाजी बोल्या, आपणने मूक्यां निरधार।

दोष दीठो जो आपणो, तो वनमां मूक्यां आधार॥७॥

लगभग एक घड़ी (साढ़े बाइस मिनट) के पश्चात् श्यामा जी ने कहा— निश्चित रूप से प्रियतम हमें छोड़कर चले गये हैं। उन्होंने हमारे अन्दर कोई दोष देखा है, तभी तो हमें छोड़ दिया है।

वचन सांभलतां श्यामाजी केरा, खिण नव लागी वार।

जे जेम आवी दोडती, ते ता पाछी पडियो तत्काल॥८॥

श्यामा जी की इस बात को सुनते ही एक क्षण की भी देर किये बिना सखियाँ वहाँ आने लगीं। वे जैसे-जैसे दौड़ती हुई आती थीं, वहाँ की स्थिति को देख कर वैसे-वैसे गिरती जाती थीं।

**भावार्थ-** सखियों के वहाँ बेहोश होकर गिरने का कारण यह था कि उन्होंने श्यामा जी को बहुत दुःखी अवस्था में देखा था। इसके अतिरिक्त श्री राज जी के वहाँ न होने की स्थिति में वे किसी अनहोनी दुःख भरी घटना की आशंका से बहुत व्यथित हो गयीं और मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं।

तेमां केटलीक सखियो ऊभी रही, उठाडे सर्वे साथ।

आपणने केम मूकसे, मारा प्राणतणो जे नाथ॥९॥

उनमें कुछ सखियां धैर्यपूर्वक खड़ी रहीं। उन्होंने बेहोश पड़ी सखियों को यह कहते हुए उठाया कि उठो! हमारे प्राणवल्लभ भला हमें कैसे छोड़ सकते हैं?

सखियो वृन्दावन आपण खोलिए, इहांज होसे आधार।

जीवतणो जीवन छे, ते ता नहीं रे मूके निरधार॥१०॥

हे सखियों! हम उन्हें वृन्दावन में खोजें, अवश्य ही हमारे प्रियतम यहीं पर होंगे। वे ही हमारे जीव के जीवन (अस्तित्व) के आधार हैं। वे निश्चित रूप से हमें नहीं छोड़ेंगे।



सखी ए रे आपणने मूकी गयो, एणे दया नहीं रे लगार।  
 हवे आंहीं थकी केम उठिए, मारा जीवन विना आधार॥११॥

गिरी हुई सखियाँ कहती हैं कि प्रियतम के मन में हमारे लिये नाम मात्र की भी दया नहीं है, इसलिये तो वे हमें छोड़कर चले गये हैं। जब हमारे जीवन के आधार प्रियतम ही यहाँ नहीं हैं, तो हम कैसे उठें?

सखी केही रे सनंधे चालिए, मारा लई गयो ए प्राण।  
 सखियो अमने सूं रे कहो छो, अमे नहीं रे अवाय निरवाण॥१२॥

हे सखियों! तुम्हीं बताओ, जब प्रियतम हमारे प्राण ही लेकर चले गये हैं, तो अब हम कैसे चलें? हमें चलने के लिये तुम क्यों कह रही हो? हम तो तुम्हारे साथ चलने (आने) में पूर्णतया असमर्थ हैं?

**भावार्थ—** श्री राज जी ही सखियों के जीवन के आधार

हैं। उनके अदृश्य हो जाने पर सखियों का मनोबल इतना टूट गया कि उनमें कुछ भी करने की इच्छा समाप्त हो गयी। इसे ही प्राणों को ले जाना कहा गया है।

मारो जीव कलकले आकलो, अने काया थरके अंग।

कहो जी अवगुण अमतणां, जे कीधां रंगमां भंग॥१३॥

मेरा जीव व्याकुल होकर बिलख रहा है और हृदय सहित मेरा सम्पूर्ण शरीर काँप रहा है। जरा, हमारे दोष तो बताओ? प्रियतम ने विरह की यह लीला करके हमारे आनन्द को क्यों छीन लिया?

सखी दोष हसे जो आपणो, तो वाले कीधूं एम।

चित ऊपर जो चालतां, आपण केहेता करतो तेम॥१४॥

खड़ी हुई सखियाँ उत्तर देती हैं कि हे सखियों! तुम इस

तरह से शोक न करो। कहीं न कहीं हमसे भूल अवश्य हुई है, तभी प्रियतम ने हमारे साथ ऐसा व्यवहार किया है। यदि हम उनकी इच्छानुसार चलतीं, तो हम जैसा कहतीं, वे वैसा ही करते।

**भावार्थ-** चित्त के अनुकूल न चलने का तात्पर्य है , अहम् की ग्रन्थि से ग्रसित होना (बँध जाना)। महारास की लीला में सखियों के अन्दर यह भाव आना , कि प्रियतम हमारे वश में हो गये हैं, ही अहम् की ग्रन्थि है। इसे लौकिक अहंकार नहीं मानना चाहिये। इस मायावी जगत में जो अहंकार होता है, वह तमोगुण के कारण होता है। केवल ब्रह्म त्रिगुणातीत है। वहाँ स्वप्न में भी लौकिक (धन, सौन्दर्य, विद्या, सम्मान, आदि का) अहंकार नहीं हो सकता, किन्तु प्रेम के शुद्ध धरातल पर यह सोचना भी अपराध बन जाता है कि प्रियतम हमारे

वश में हो गये हैं। क्या अद्वैत लीला में इस प्रकार की भावना अपराध नहीं है?

हाय हाय रे दैव तें सूं करयूं, केम रहे रे कायामां प्राण।

जीवनजी मूकी गया, नव कीधूं ते अमने जाण॥१५॥

हाय! हाय! रे दैव, यह तूने क्या कर दिया? अभी तक हमारे शरीर में ये प्राण क्यों ठहरे हुए हैं? प्रियतम हमें छोड़कर चले गये, किन्तु तुमने हमें इसकी जरा भी भनक (सूचना) नहीं लगने दी।

**भावार्थ—** इस प्रकरण की चौपाई संख्या १५, १६, १७ एवं १८ के चिन्तन से ये प्रश्न उत्पन्न होते हैं—

(१) दैव का अर्थ क्या है?

(२) यदि इसका अर्थ भाग्य होता है, तो वह जड़ है या चेतन? यदि भाग्य कोई चेतन सत्ता नहीं है, तो उसे

गाली देने की आवश्यकता क्यों पड़ी?

(३) पौराणिक मान्यता में विधाता का अर्थ ब्रह्मा जी होता है, किन्तु वैदिक मान्यता में विधाता का तात्पर्य सबको विशेष रूप से धारण करने वाला ब्रह्म होता है। प्रश्न यह होता है कि यहाँ पर सखियों एवं श्री राज जी के मध्य भाग्य का निर्माण करने वाला ब्रह्मा या अक्षर ब्रह्म का अस्तित्व कहाँ से आ गया? ऐसी अवस्था में, जबकि रास प्रकरण ९ की अनेक चौपाइयों में सखियों ने श्री कृष्ण जी को अपना प्रियतम मान लिया है—

पति तो वालैया अमतणो, अमे ओलखियो निरधार।

रास ९/३२

चरणे तमारे वालैया, काँई अमारा छे मूल जी।

रास ९/४०

उपरोक्त प्रश्नों का समाधान आगे किया जायेगा।

हाय हाय रे विधाता पापनी, तें कां रे लख्यां एवां करम।  
 दैवतणी तूने बीक नहीं, जे तें एवडो कीधो अधरम॥१६॥

हाय! हाय! रे पापी विधाता! तूने हमारे कर्मों का इतना बुरा भाग्य क्यों लिख दिया? क्या तुझे जरा भी दैव का भय नहीं रहा है, जो तूने इस प्रकार हमें विरह भोगने का कष्ट दिया?

हाय हाय रे दैव तूने सूं कहूं, तें वारी नहीं विधाता।

एणी पापनिए एम केम लख्यूं, वालो मूकसे कलकलतां॥१७॥

हाय! हाय! रे दैव! मैं तुम्हें क्या कहूँ? तुमने विधाता को ऐसा करने से रोका क्यों नहीं? इस पापी विधाता ने हमारे भाग्य में ऐसा क्यों लिख दिया कि प्रियतम हमें बिलखते हुए छोड़ जायेंगे?

सखी गाल दऊं हूं दैवने, के दऊं विधाता पापिष्ट।

एणे लेख अमारा एम केम लख्या, एणे दया नहीं ए दुष्ट॥१८॥

हे सखियों! अब तुम्हीं बताओ कि मैं दैव को गाली दूँ या पापी विधाता को? उस दुष्ट ने हमारे भाग्य में इस प्रकार दुःखमयी स्थिति होने की घटना क्यों लिखी? ऐसा करते हुए उसे जरा भी दया नहीं आयी।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाइयों से ये निष्कर्ष निकलते हैं-

(१) "दैव" शब्द के अनेक अर्थ होते हैं- जैसे- भाग्य, परमात्मा, देवता, सम्बन्धी, दिव्य, इत्यादि। यद्यपि "दैव निहत्य कुरु पौरुषमात्म शक्त्यां" (पंचतन्त्र १/३६१) के अनुसार "दैव" शब्द का आशय यहाँ भाग्य से है, किन्तु रास ग्रन्थ के इस प्रकरण की चौपाइयों में कथित "दैव" शब्द परमात्मा के लिये प्रयुक्त हुआ है।

किन्तु "दैव" शब्द का अर्थ परमात्मा करने पर ये प्रश्न

उपस्थित होते हैं—

(क) क्या सखियों ने श्री कृष्ण जी को परमात्मा के रूप में और स्वयं को आत्मा के रूप में नहीं जाना था , जो उन्होंने श्री कृष्ण से भिन्न किसी अन्य को परमात्मा मान लिया?

(ख) जिस केवल-ब्रह्म को उपनिषदों में "रसो वै सः" कहा जाता है तथा जिसे शिव जी आदि ईश्वरी सृष्टियों एवं शंकराचार्य जी जैसे मनीषियों ने सच्चिदानन्द परब्रह्म माना हो, उनके धाम में पहुँचने पर भी सखियों के हृदय से लौकिक भाव क्यों नहीं गया और वे अपने मुख से गाली देने जैसी अशुभ बातें क्यों सोचने लगीं?

इसका समाधान इस प्रकार है—

(क) जिस प्रकार, न्याय दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान होते हुए भी चैतन्य महाप्रभु प्रेम में डूबकर नाचने लगते थे



तथा उन्हें अपनी कुछ भी सुधि नहीं रहती थी , उसी प्रकार सखियाँ भी प्रेम के नशे में इस प्रकार डूबी पड़ी थीं कि उनके लिये आत्मा और परमात्मा के दार्शनिक तथ्यों पर विचार करना सम्भव ही नहीं था। उन्हें केवल इतना ही विदित था कि हम अपने प्राणेश्वर श्री कृष्ण के बिना नहीं रह सकतीं।

(ख) केवल ब्रह्म ९ रसों (हास्य, करुण, वीभत्स, रौद्र, वियोग, आदि) की भूमिका है। सखियों के द्वारा कटु शब्दों का कथन वियोग लीला का एक अंग है। इसे लौकिक कटु शब्द (गाली) की दृष्टि से कदापि नहीं देखना चाहिए। विरह की असह्य पीड़ा में सखियों के द्वारा इस प्रकार की अभिव्यक्ति स्वाभाविक ही थी।

ब्रज मण्डल में सखियों के जीवों में षड् विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या) के अस्तित्व की तो

मान्यता हो सकती है, किन्तु केवल-ब्रह्म की भूमिका में पहुँचने पर इन षड् विकारों का लेश मात्र भी अस्तित्व नहीं रह सकता। इसलिये रास के प्रसंग में सखियों के द्वारा जहाँ भी वैवादित-कटु शब्दों के सम्बोधन या अहंकार की झलक का आभास होता है, उसे नव रसों में सम्पादित होने वाली प्रेम की दिव्य लीला का अंग मानना चाहिये, न कि त्रिगुणात्मक मायावी विकार।

(२) सौभाग्य या दुर्भाग्य वस्तुतः भाव मूलक शब्द हैं। इन्हें किसी द्रव्य के अन्तर्गत नहीं माना जाता, इसलिये इनके जड़ या चेतन होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। इतना अवश्य है कि कल्पना (भाव) लोक में सौभाग्य को एक चेतन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसी सन्दर्भ में यह बात कही जाती है, जैसे- आज मेरा भाग्य मुझ से रूठ गया है।

(३) वैदिक दृष्टि से सम्पूर्ण सृष्टि को अपनी सत्ता से धारण करने वाला (विधाता) ही परमात्मा है, जबकि पौराणिक मान्यताओं में ब्रह्मा जी को विधाता कहा गया है, जो कर्मों के अनुसार सबका भाग्य लिखा करते हैं। जन सामान्य में यह धारणा आज भी प्रबल रूप में व्याप्त है, जो आज से ३०० वर्ष पूर्व और अधिक रही होगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्री मिहिरराज जी के जीव के चित्त में इस नश्वर जगत के जिन-जिन संस्कारों का प्रभाव था, उसी के अनुसार त्रिगुणातीत रास लीला का वर्णन हुआ, जिससे जन सामान्य उसे सरलतापूर्वक ग्रहण कर सके। उदाहरणार्थ, रास के श्रृंगार में गुजराती एवं राजस्थानी श्रृंगार की प्रचुरता यही सिद्ध करती है कि श्री मिहिरराज जी के चित्त के संस्कारों के अनुसार ही धाम धनी ने अपने रास के श्रृंगार का वर्णन कराया है।

इसी प्रकार, विधाता के सम्बन्ध में भी मानना उचित होगा। श्री मिहिरराज जी के चित्त में श्रीमद्भागवत् आदि पौराणिक ग्रन्थों एवं जन सामान्य में प्रचलित "विधाता" की परिभाषा के जो संस्कार थे, उसी के अनुसार रास की अन्तर्धान लीला में सखियों के द्वारा संवाद कहलाये गये। इसका मुख्य उद्देश्य जन सामान्य के द्वारा उस अलौकिक प्रेममयी लीला को अपने स्तर से ग्रहण करना था, न कि दार्शनिक झिंक-झिंक में पड़े रहना।

"कछु नींद कछु जाग्रत भये, जोगमाया के सिनगार जो कहे" (प्र.हि. ३७/३९) के कथनानुसार प्रेम के अविरल प्रवाह में बहने के कारण सखियाँ प्रियतम को अपना सर्वस्व तो मानती थीं, किन्तु उन्होंने श्री राज जी को प्रारम्भ में अक्षर से परे अक्षरातीत नहीं माना। जैसे-जैसे रास की गहराई बढ़ती गयी, वैसे-वैसे उनकी पहचान

गहराती गयी। अन्तर्धान लीला के पश्चात् होने वाली भजनानन्द लीला में उन्हें यह पूर्ण पहचान हो गयी कि हमारे प्रियतम श्री राज जी से परे अन्य कोई भी नहीं है। इसी को हम दूसरे शब्दों में परब्रह्म कहते हैं। किन्तु प्रारम्भ में इस प्रकार की पूर्ण पहचान न होने से, कुछ नींद तथा कुछ जाग्रत अवस्था की बात कही गयी है।

**सखी दैव विधाता सूं करे, एम रे थैयो तमे कांए।**

**दोष दीजे कांई आपणो, जे चूक्या सेवा मांहें॥१९॥**

प्रत्युत्तर में अन्य सखियाँ कहती हैं कि हे सखियों! तुम्हें यह क्या हो गया है, जो ऐसा कह रही हो? भला परमात्मा या विधाता क्या करें? हमें स्वयं को ही दोषी मानना चाहिये, क्योंकि हमसे प्रियतम की प्रेममयी सेवा में कोई न कोई चूक हो गयी है।

सखी सेवा चूक्या हसूं आपण, पण वालो करे एम केम।

आपणने एम रोवंतां, वालो मूकी गया छे जेम॥२०॥

यह सुनकर गिरी हुई सखियाँ कहती हैं— सखियों! हम यह मानती हैं कि हमसे सेवा में चूक हुई है , किन्तु प्रियतम को ऐसा तो नहीं करना चाहिए कि हमें रोते हुए छोड़कर ही चले जायें (अदृश्य हो जायें)।

सखी चूक्या हसूं घणूं आपण, हवे लागी कालजडे झाल।

फिट फिट भूंडा पापिया, तूं हजिए न आव्यो काल॥२१॥

हे सखियों! अवश्य ही हमसे बहुत बड़ी भूल हुई होगी, तभी तो अब हमें यह घड़ी देखनी पड़ी है। अब तो मेरे हृदय से प्रायश्चित एवं विरह भरे दुःख की लपटें निकल रही हैं। हे पापी मूर्ख काल! तुझे धिक्कार है, जो हमें लेने के लिये अभी तक नहीं आया।

एम रे सखियो तमे कां करो, बेहेनी द्रढ करो कां न मन।

आपणने मूके नहीं, जेहेनूं नाम श्रीकृष्ण॥२२॥

यह सुनकर खड़ी हुई सखियाँ कहती हैं— बहनों! तुम ऐसा क्यों कहती हो? तुम अपने मन को दृढ़ क्यों नहीं करती हो। जिनका नाम श्री कृष्ण है, वह हमें कभी भी नहीं छोड़ सकते।

सखी जोइए आपण वनमां, एम रे थैयो तमे कांए।

जेनूं नाम श्रीकृष्णजी, ते बेठा छे आपण मांहें॥२३॥

सखियों! चलो, हम सभी मिलकर उन्हें वन में खोजें। भला, तुम इतनी अधिक निराश क्यों हो गयी हो? जिनका नाम श्री कृष्ण है, वे अवश्य ही हमारे मध्य में कहीं छिपे हुए विराजमान हैं।

**प्रश्न—** क्या उपरोक्त दोनों चौपाइयाँ यह सिद्ध नहीं

करती हैं कि श्री कृष्ण जी ही अक्षरातीत हैं?

**उत्तर-** नहीं! श्री कृष्ण ब्रज का शरीरपरक नाम है, भावपरक नहीं, क्योंकि मथुराधीश तथा द्वारिकाधीश भी श्री कृष्ण ही कहलाते हैं। कलश हिन्दुस्तानी में स्पष्ट कहा गया है-

बेहद को सब्द न पोंहोचहीं, तो क्यों पोहोंचे दरबार।

लुगा न पोहोंच्या रास लों, इन पार के भी पार॥

क. हि. २४/४९

जब इस संसार का एक अक्षर भी रास मण्डल में नहीं जा सकता, तो यह कैसे सम्भव है कि परमधाम में श्री कृष्ण जी को विराजमान किया जा सके। रास में श्री कृष्ण का नाम तो लीला को शब्दों में व्यक्त करने के लिये किया गया है।

ब्रज में अक्षरातीत के आवेश द्वारा धारण किये गये तन



को श्री कृष्ण नाम से सम्बोधित किया गया। यदि उस तन में धाम धनी का आवेश न होता, तब भी उसका नाम श्री कृष्ण ही रखा जाता, क्योंकि मथुराधीश को भी श्री कृष्ण ही कहते हैं।

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि नामकरण केवल बाह्य तन का ही होता है, जीव, आत्मा, या आवेश स्वरूप का नहीं। एक ही जीव के अनेक जन्मों में अलग –अलग अनेक नाम होते हैं।

इससे स्पष्ट है कि बाह्य कलेवर का नाम श्री कृष्ण हैं, ना कि आन्तरिक स्वरूप (आवेश) का नाम। यदि आवेश का नाम कृष्ण होता तो जागनी ब्रह्माण्ड में भी भावमूलक नाम श्री राज या श्री प्राणनाथ न होकर श्री कृष्ण ही होता। इससे सिद्ध होता है कि श्री कृष्ण, श्री देवचन्द्र, और श्री मिहिरराज बाह्य तनों के नाम हैं, जिनमें

विराजमान होकर अक्षरातीत श्री प्राणनाथ (श्री राज जी) ने लीला की है।

सुंदरबाई कहे साथने, सखी एम रे थैयो तमे कांए।

केड बांधो तमे कामिनी, आपण जोइए वृन्दावन मांहे॥२४॥

सुन्दर बाई सखियों से कहती हैं कि हे सखियों ! तुम इतनी निराश क्यों हो गयी हो? तुम सभी उन्हें खोजने के लिये पूरी तरह से तैयार हो जाओ। हम सभी मिलकर उन्हें वृन्दावन में प्रत्येक स्थान पर खोजेंगे।

**भावार्थ-** "केड़ बाँधना" एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ है, कमर बाँधना अर्थात् दृढ़ संकल्प के साथ किसी कार्य के लिये तैयार हो जाना।

वन वन करीने खोलिए, वालो बेठा हसे जाहें।

आपणने मूकी करी, जीवनजी ते जासे क्याहें॥२५॥

हमें वृन्दावन में सर्वत्र जाकर उनकी खोज करनी होगी। प्रियतम अवश्य कहीं बैठे होंगे। भला, जो प्रियतम हमारे जीवन के आधार हैं, वे हमें छोड़कर जा ही कहाँ सकते हैं?

एक पडे एक लडथडे, एक आंसूडां ढाले अपार।

केम चाले काया बापडी, मारा जीवन विना आधार॥२६॥

कोई सखी बेसुध पड़ी है, तो कोई तड़प रही है। किसी के नेत्रों से आँसुओं की अविरल धारा प्रवाहित हो रही है। वह बिलखते हुए कहती है कि मेरे जीवन के आधार प्रियतम के बिना यह शरीर बेचारा अब कैसे रह सकता है।

कठण वेला मूने जाय रे बेहेनी, जेम रे निसरतां प्राण।

काया एम थरहरे, अमें नहीं रे गोताय निरवाण॥२७॥

हे बहन! प्रियतम के वियोग में, मेरे लिये कष्ट की यह बहुत ही कठिन वेला (घड़ी, समय) है। मेरी स्थिति वही है, जो शरीर से प्राण निकलने के समय होती है। मेरा शरीर दुःख से काँप रहा है। मैं उन्हें खोजने के लिये जाने में पूर्णतया असमर्थ हूँ।

एम रे सखियो तमे कां करो, ए छे आपणो आधार।

नेहेचे आपणने नहीं रे मूके, तमे जीवसूं करो रे करार॥२८॥

यह सुनकर अन्य सखियाँ समझाते हुए कहती हैं— हे सखियों! तुम ऐसा क्यों कह रही हो? प्रियतम हमारे जीवन के आधार हैं। तुम अपने जीव को धैर्य तो बँधाओ। यह तो निश्चित है कि प्रियतम हमें किसी भी अवस्था में

नहीं छोड़ सकते हैं।

विकल थई पूछे वेलडीने, सखी क्याहें रे दीठा तमे स्याम।

जीव अमारा लई गया, मननी न पोहोंती हाम॥२९॥

अपने प्राणेश्वर की खोज में सखियाँ वृन्दावन के कोने-कोने में घूम रही हैं। वे व्याकुल होकर लताओं से पूछ रही हैं- सखी (लता)! क्या तुमने हमारे श्याम को कहीं देखा है? उनके अदृश्य हो जाने से हमें ऐसा लगता है कि हमारे शरीर में अब जीव है ही नहीं। अभी तो प्रेम की हमारी चाहना पूर्ण ही नहीं हुई थी।

**भावार्थ-** विरह की यह बहुत ही गहन स्थिति है, जिसमें सखियों को लतायें भी अपने ही समान (सखी रूप में) लग रही हैं।

ए हँसे छे आपण ऊपर, जो न देखे आपणमां सनेह।

जुओ वीटी रही छे वरने, अधखिण न मूके एह॥३०॥

सखियाँ विरह की पीड़ा को सहन करते हुए आपस में कहती हैं— सखियों! देखो! यह लता भी आज हमारा उपहास उड़ा रही है कि यदि हमारे अन्दर अपने प्राणवल्लभ के लिये पूर्ण प्रेम होता, तो वे हमसे ओझल ही नहीं होते। देखो तो, यह किस प्रकार अपने प्रियतम वृक्ष से लिपटी हुई है तथा आधे क्षण के लिये भी उसे छोड़ नहीं रही है, जबकि एक हम हैं, जो अपने प्रियतम को देखने के लिये भी तरस रही हैं तथा इस वृन्दावन में मारी-मारी फिर रही हैं।

जुओ रे वलाका एहना, अंगोअंग वाल्या छे बंध।

तो हँसे छे आपण ऊपर, आपण कीधी न एह सनंध॥३१॥

जरा इस बेल की वृक्ष के प्रति आलिंगनबद्धता (लपेट) को तो देखो। इसने अपने अंग-अंग के द्वारा वृक्ष को बन्धन में बाँध रखा है। इसीलिये तो यह हमारे ऊपर हँसी कर रही है कि हमने (सखियों ने) भी ऐसा क्यों नहीं कर लिया?

**आ वचन बोले वेलडी, सखी मांहों मांहें करे विचार।**

**ए खबर न दिए कोणे कामनी, पोते राची रही भरतार॥३२॥**

सखियों ने आपस में विचार किया कि अपने प्रियतम वृक्ष से आलिंगित हुई यह लता मौन रहकर भी हमसे इस प्रकार के उपहासपूर्ण वचन कह रही है। अपने प्रेम की बात यह किसी से भी नहीं कहती है और अपने प्रियतम वृक्ष के साथ सदा ही आनन्द में मग्न रहा करती है।

वन गेहेवर अमें जोइयूं, आगल तो दीसे अंधार।

हवे ते किहां अमे जोइए, मूने सुध नहीं अंग सार॥३३॥

हमने गहन वन में अपने प्राणेश्वर को सर्वत्र खोजा है , किन्तु वे कहीं भी नहीं मिले। इसमें आने –जाने पर तो चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार नजर आ रहा है। हमारे मन में यह बात समझ ही नहीं आ रही कि अपने प्रियतम को खोजने के लिये अब हम कहाँ जायें?

**भावार्थ-** इस कथन का आशय यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि सखियाँ केवल –ब्रह्म के नित्य वृन्दावन में अपने धनी को खोजते-खोजते अव्याकृत तक आ गयी थीं और उसके आगे चारों ओर निराकार मण्डल का घना अन्धकार था।

वास्तविकता यह है कि सखियाँ केवल –ब्रह्म से बाहर (सबलिक या अव्याकृत में) नहीं गयी थीं।



केवल-ब्रह्म का विस्तार इतना अधिक है कि उसमें कालमाया की असंख्यों निहारिकायें (गैलैक्सीज़) समा जायें। केवल-ब्रह्म की भूमिका में ही नित्य वृन्दावन के चारों ओर घना अन्धकार था, किन्तु यह अन्धकार कालमाया के ब्रह्माण्ड के अन्धकार जैसा नहीं था, अपितु प्रकाशमयी अन्धकार था। इसे इस उदाहरण से समझा जा सकता है कि किसी कक्ष में यदि ५०० वाट के १० ऐसे बल्ब लगा दिये जायें, जिनसे काला प्रकाश निकल रहा हो, तो सारा कक्ष काला ही दिखायी देगा।

सखी पगलां जुए प्रीतम तणां, साथ खोले वृन्दावन।

नेहेचे आपणने मूकी गयो, हजी पिंडडा न थाय पतन॥३४॥

सखियाँ प्रियतम श्री राज जी के पैरों के चिह्न (निशान) देख-देख कर सम्पूर्ण वृन्दावन में खोज रही हैं। उन्हें

बार-बार यही बात कचोटती (प्रायश्चित रूपी पीड़ा का अनुभव) रहती है कि प्रियतम हमें छोड़कर अदृश्य हो गये, किन्तु अभी भी हम जीवित कैसे हैं?

**सखी नेहेचल नेहडा आपणां, त्रूटे नहीं केमे तेह।**

**आणे अंगे मलसूं प्रीतम, सखी आस न छूटे एह॥३५॥**

इस प्रकार विरह-व्यथा में छटपटाती हुई वे आपस में बातें भी करती हैं कि हे सखियों! प्रियतम के प्रति हमारा प्रेम अखण्ड है। वह किसी भी प्रकार से टूट नहीं सकता। इसलिये हमारे मन में यह आशा सदा बनी हुई है कि इसी शरीर से हमारा मिलन प्रियतम से अवश्य ही होगा।

**हाय हाय रे बेहेनी हूं सूं करूं, मूने भोम न दिए विहार।**

**संधान सर्वे जुआ थया, ए रेहेसे केम आकार॥३६॥**

एक सखी कहती है, हाय-हाय रे बहनों! अब मैं क्या करूँ? मुझे यह धरती भी अपने अन्दर क्यों नहीं समा लेती? विरह की ज्वालाओं में जलने के कारण मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरे शरीर के सभी जोड़ (अंग-अंग के बन्ध) अलग-अलग हो गये हैं। ऐसी अवस्था में मेरा यह शरीर अब कैसे जीवित रह सकता है?

**भावार्थ-** इस प्रकार की स्थिति मात्र कालमाया के ब्रह्माण्ड में ही सम्भव है, योगमाया में नहीं। किन्तु इस तरह का मार्मिक वर्णन करने का उद्देश्य है, विरह की एक झलक दिखाना, जिससे यह अनुभव किया जा सके कि रास मण्डल में सखियों ने विरह की पीड़ा को कैसे सहन किया था?

कलकले मांहें कालजू, चाली न सके देह।

प्राण जीवनजी लई गया, जे बांध्या मूल सनेह॥३७॥

प्रियतम के वियोग में मेरा हृदय विलख रहा है, इसलिये इस समय चलने में मेरा शरीर पूर्णतया असमर्थ है। धनी के प्रेम के मूल सम्बन्ध से ही मेरे शरीर के प्राण थे, किन्तु उनके अदृश्य हो जाने से ऐसा लगता है कि मेरे प्राण ही अब चले गये हैं।

**भावार्थ-** शरीर से प्राण चले जाने का आशय है, शरीर का इतना निढाल (शिथिल) हो जाना कि वह निर्जीव सा प्रतीत होने लगे।

तेमां केटलीक सखियो ऊभी रही, मांहों मांहें करे विचार।

कलकलतां केम मूकसे, कांई आपणने आधार॥३८॥

उनमें कुछ सखियाँ धैर्यपूर्वक खड़ी रहीं तथा आपस में

विचार करने लगीं कि हमारे प्राणवल्लभ हमें इस प्रकार विलखते हुए क्यों छोड़ेंगे?

आंझो आवे मूने धणी तणो, एम वालोजी करसे केम।

वली रामतडी कीजिए, आपण पेहेली करतां जेम॥३९॥

एक सखी कहती है— मुझे अपने प्राणेश्वर पर पूरा विश्वास है। वे किसी भी स्थिति में हमें छोड़ नहीं सकते। इसलिये पहले ब्रज में हम जिस प्रकार खेला करती थीं, उसी प्रकार के खेल करने चाहिएँ।

केम रे रामतडी कीजिए, काया केम रे चाले विना जिउ।

रामतडी केम थाएसे, उठाय नहीं विना पिउ॥४०॥

कुछ सखियाँ प्रतिरोध के स्वरो में कहती हैं— जब तक हमें प्रियतम का मधुर दर्शन नहीं हो जाता, तब तक

हमारा शरीर चलने में पूर्णतया असमर्थ है। ऐसी अवस्था में हम कोई भी खेल कैसे कर सकती हैं? जब धाम धनी के सम्मुख आये बिना हमसे उठ पाना भी सम्भव नहीं हो पा रहा है, तो हमसे कोई भी खेल कैसे खेला जा सकेगा?

**एम रे सखियो तमे कां करो, ए छे आपणो आधार।**

**मूल रामतडी कीजिए, ए नहीं रे मूके निरधार॥४१॥**

श्री इन्द्रावती आदि अन्य धैर्यशालिनी सखियाँ उन्हें समझाते हुए कहती हैं— सखियों! तुम इस प्रकार निराशावादी वचन क्यों कह रही हो? प्रियतम तो हमारे जीवन के आधार हैं। वे किसी भी स्थिति में हमें छोड़ नहीं सकते हैं। इसलिये, हमें ब्रज की लीला अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि वह उन्हें बहुत ही प्रिय है।

साथ कहे छे अमने रे बेहेनी, इंद्रावती कहो छो सूं।

आणे नेंणे न देखूं वालैयो, तिहां लगे केम करी उठूं॥४२॥

यह सुनकर असहाय अवस्था में पड़ी हुई सखियाँ कहती हैं— हे बहन इन्द्रावती! तुम हमसे क्या करने के लिये कह रही हो? जब तक हम अपने प्राणेश्वर को नेत्रों से देख नहीं लेंगी, तब तक हमसे उठ पाना सम्भव नहीं है।

एणे समे इंद्रावतीबाई ए, तामसियो भेली करी।

पड़े राजसियो स्वांतसियो, करे ऊभियो अंक भरी॥४३॥

इस समय श्री इन्द्रावती जी ने सभी तामसी सखियों को लीला करने के लिये एकत्रित किया तथा असहाय अवस्था में पड़ी हुई राजसी एवं सात्विकी सखियों को गले लगा-लगाकर धैर्य बँधाते हुए उठाया।

**विशेष-** इसी प्रकार जागनी लीला में सभी सखियों को जाग्रत (एकत्रित) करने का उत्तरदायित्व श्री इन्द्रावती जी को ही है।

आंझो आणो तमे धणी तणो, हाकली चित करो ठाम।

रामत करतां आवसे, सुंदरबाई झाले बांहेँ॥४४॥

श्री इन्द्रावती जी राजसी और सात्विकी सखियों से कहती हैं कि अपने प्राणवल्लभ पर विश्वास रखो और अपने व्याकुल चित्त को शान्त करो। सुन्दर बाई उनकी बाँहेँ पकड़कर समझाती हैं कि जब हम ब्रज लीला का नाटक करेंगी, तो प्रियतम को हमारे सम्मुख अवश्य ही आना होगा।



मांहों मांहें विनोद घणो, उठो रामत कीजे रंग।

तरत वालोजी आवसे, आपण जेना अंग॥४५॥

हे सखियों! तुम धैर्य रख कर उठो। हम सभी आपस में मिलकर प्रसन्नतापूर्वक ब्रज की अत्याधिक आनन्दमयी लीलाओं का अभिनय करें। हम उनकी अंगरूपा हैं, इसलिये लीला में वे अवश्य आयेंगे।

**भावार्थ-** सखियों का आशय यह है कि प्रिया-प्रियतम (माशूक-आशिक) मिलकर ही प्रेम की लीला करते हैं। इसलिये जब हम ब्रज लीला का अभिनय करेंगी तो विवश होकर प्रियतम को प्रकट होना ही पड़ेगा।

लीला कीधी जे वालैए, आपण लीजे तेहेना वेख।

अग्यारे वरस लगे जे रम्या, कांई रामत एह वसेख॥४६॥

प्रियतम ने ब्रज मण्डल में ११ वर्षों तक जो प्रेममयी

लीला की है, वह बहुत ही विशेष महत्व की है। इसलिये हमें भी उसका अभिनय करने के लिये लीला के भिन्न-भिन्न पात्रों के अनुसार उनका भेष धारण करना चाहिए।

**प्रकरण ॥३२॥ चौपाई ॥६५९॥**

## राग सामेरी

इस प्रकरण में सखियों के द्वारा ब्रज लीला का अभिनय करने का वर्णन है।

आनंदे रोतां रमिए एम, जेने कहिए ते लछण प्रेम।

तेना उडी गया सर्वे नेम, रमतां कीधां कई चेहेन॥१॥

अपने प्राणेश्वर के विरह में रोते हुए भी उनकी लीलाओं के अभिनय में आनन्दपूर्वक मग्न रहना ही प्रेम का वास्तविक लक्षण है। सखियों के द्वारा प्रेम की इस अवस्था को प्राप्त कर लेने से सभी प्रकार के नियम (लोक रीति, खेल, एवं कर्मकाण्ड के) टूट गये तथा उन्होंने ब्रज लीला के अनेक प्रसंगों का विधिवत अभिनय किया।

**भावार्थ—** सखियों के हृदय में विरह की इतनी प्रचण्ड

ज्वाला धधक रही है कि रोते-रोते उनके आँसू बाह्य रूप से सूख चुके हैं। उनकी यह कैसी विचित्र अवस्था है कि अभिनय के लिये उन्हें बाह्य रूप से हँसना और मुस्कराना भी पड़ रहा है, किन्तु उनके हृदय में आन्तरिक रूप से आँसुओं की ऐसी अविरल धारा बह रही है, जो आँखों से प्रकट नहीं हो पा रही है।

प्रियतम के प्रेम भरे मधुर दर्शन के लिये, उन्हें अभिनय के साथ-साथ स्वयं को सामञ्जस्यता के मार्ग पर चलाना पड़ रहा है। यही प्रेम की कसौटी है, जिस पर खरा सिद्ध होने वाला प्रेम युद्ध में विजय का अधिकारी बनता है। इस अवस्था में न तो कर्मकाण्ड का कोई बन्धन रह जाता है और न लौकिक मर्यादाओं का आवरण ओढ़े रहने की आवश्यकता रह जाती है। बल्कि एक ही लक्ष्य रह जाता है— अर्जुन के द्वारा मछली के नेत्र बींधने की

तरह- प्रियतम को पा लेना।

सखी प्रेम ध्वजा केहेवाय, जेनूं प्रगट नाम कुली मांहे।

ए तो प्रेम तणां जे पात्र, आपणथी अलगो न थाय खिण मात्र॥२॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि परमधाम की हम सखियाँ ही प्रेम की ध्वजा अर्थात् गरिमा हैं। हमारा ही स्वरूप इस कलियुग में प्रकट हुआ है। वस्तुतः प्रेम की पात्र अर्थात् प्रेम के स्वरूप को धारण करने वाली हम आत्मायें ही हैं, और हम से प्रियतम एक क्षण के लिये भी न तो कभी अलग हुए हैं और न ही कभी होंगे।

**भावार्थ-** किसी रथ या मन्दिर के ऊपर लहराने वाली ध्वजा को रथी (रथ पर विराजमान स्वरूप) या मन्दिर में विद्यमान स्वरूप की गरिमा का द्योतक माना जाता है। ब्रह्मसृष्टियों में ही प्रेम का यथार्थ स्वरूप विद्यमान होता

है, जिससे इन्हें ही प्रेम की ध्वजा अर्थात् गरिमा का प्रतीक स्वरूप माना जाता है। दूसरे शब्दों में, इस जगत में ब्रह्मसृष्टियों को जाग्रत करने के लिये आये हुए , अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी के प्रेम-रथ की ध्वजा ब्रह्मसृष्टियों को कहा जा सकता है।

ए अलगो थाय केम, आपण कहूं करे वालो तेम।

अमे आतम सखियो एक, रमतां दीसे अनेक॥३॥

भला ये प्रियतम हमसे अलग कैसे हो सकते हैं? हम सखियाँ जो भी कहेंगी, धाम धनी को वही करना पड़ेगा, क्योंकि हम उनकी अंगरूपा हैं। हमारे प्राणेश्वर तथा हम सब सखियों की आत्मा एक ही है, भले ही क्रीड़ा करते समय हमारे रूप अलग-अलग क्यों न दिखायी पड़ रहे हों?

**भावार्थ-** अक्षरातीत तथा सभी सखियों की आत्मा को एक ही कहने का आशय यह है कि सभी स्वरूपों में श्री राज जी ही विद्यमान होकर लीला कर रहे हैं। इसे ही स्वलीला अद्वैत कहा जाता है।

**अमे परसपर कीधां परियाण, सखियो ते सर्वे सुजाण।**

**आपण लीधा वेख अनेक, जे कीधां वालैए वसेक॥४॥**

हम सब सखियों ने आपस में विचार किया कि श्री कृष्ण जी ने ब्रज में जो-जो विशेष लीलायें की हैं, उन्हें तो हम अच्छी तरह से जानती ही हैं। इसलिये, उस लीला की अनेक घटनाओं में भाग लेने वाले पात्रों की वेशभूषा धारण कर, हम उसका अभिनय करें।

आपणमां थई वेख एक स्याम, जेंणे निरखे पोहोंचे मन काम।

वली थई वेख एक नंद, ते कान्हजी लडावे उछरंग॥५॥

हम में से एक सखी (श्री इन्द्रावती जी) ने श्री कृष्ण जी का भेष धारण किया। उन की सुन्दरता को देखकर मन आनन्दमग्न हो गया। पुनः एक सखी नन्द बन गयी। वह श्री कृष्ण जी से अत्यधिक प्रेम करने लगी।

**भावार्थ—** मन प्रसन्नता चाहता है, इसलिये वह प्राकृतिक पदार्थों के पीछे भागता रहता है। जब उसे परब्रह्म के अलौकिक सौन्दर्य का रसपान करने का अवसर प्राप्त हो जाता है, तो वह पूर्णतया शान्त और आनन्दित हो जाता है। इसे ही, उपरोक्त चौपाई के दूसरे चरण में, मन की कामनाओं का पूर्ण हो जाना कहा गया है।



सखी वेख पूतना नार, भर जोवन आवी सिणगार।

विख भरयां तेना अस्थन, आवी धवरावे कपटे मन॥६॥

एक सखी पूतना राक्षसी की वेशभूषा धारण करती है। वह युवावस्था की सुन्दरता से युक्त है और मनोहर श्रृंगार धारण कर अपने स्तनों में विष भर लेती है। श्री कृष्ण जी को मारने की इच्छा से वह अपने मन में कपट रखते हुए उन्हें दूध पिलाने लगती है।

चेहेन कीधां ने पामी मृत, विख वालाने थयूं अमृत।

सोसी लीधी पूतना नार, गोकुलमां ते जय जयकार॥७॥

किन्तु उसका विष श्री कृष्ण जी के लिये अमृत हो जाता है। इस नाटक लीला में पूतना मर जाती है, क्योंकि श्री कृष्ण जी दूध के साथ-साथ उसके प्राणों को भी हर लेते हैं और सम्पूर्ण गोकुल में उनकी जय -

जयकार होती है।

वेख लीधां सखियो विचारी, दैत लीधां ते सहु संघारी।

अंग आडो दीधो कै वार, वृज लोक ते सकल करार॥८॥

कुछ सखियों ने लीला करने के विचार से शकटासुर, तृणावर्त, आदि राक्षसों का वेश धारण किया। श्री कृष्ण जी उन सभी असुरों का संहार कर देते हैं। असुरों के प्रहारों से ब्रज मण्डल की रक्षा करने के लिये, वे अनेकों बार स्वयं आगे आ जाते हैं और ढाल की तरह सबकी रक्षा करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण ब्रज में शान्ति छायी रहती है।

एक जाणे जसोदा होय, कान्हजी माखण मांगे रोय।

उहां दूध चूल्हे उभराय, मातानूं मन कलपाय॥९॥

एक सखी यशोदा बन जाती है और एक कृष्ण। कृष्ण जी रो-रोकर माता यशोदा से मक्खन माँगने लगते हैं। इसी बीच यशोदा जी की दृष्टि चूल्हे पर गर्म हो रहे दूध की ओर जाती है, जिसमें उफान आ रहा होता है। दूध के बर्तन से गिरने की आशंका से माता यशोदा का मन व्यथित हो जाता है।

**कान्हें छेडो ग्रह्यो उजातां, जसोदाजी थयां रीसे रातां।**

**कान्ह कहे माखण आपो पेहेलूं, त्यारे जाणे लाग्युं माताने गेहेलूं॥१०॥**

दूध के पास जाती हुई यशोदा की साड़ी के पल्ले को श्री कृष्ण जी पकड़ लेते हैं। इससे माता यशोदा को क्रोध आ जाता है। कन्हैया कहते हैं कि माँ! पहले मुझे मक्खन दो, तब तुम कहीं और जाना। तब माता यशोदा को ऐसा लगता है कि कन्हैया मक्खन की इच्छा में बहुत हठी हो

गया है।

जोरे छेडो लीधो तत्काल, नसो चढावी निलाट।

जसोदाजी गया उजाई, आगल दूध गयूं उभराई॥११॥

यशोदा जी के ललाट में बल पड़ जाते हैं, अर्थात् वह क्रोधित हो जाती हैं और बलपूर्वक तुरन्त ही श्री कृष्ण जी के हाथ से अपनी साड़ी का पल्ला छुड़ा लेती हैं। माता यशोदा जब तक दौड़कर चुल्हे के पास जाती है, तब तक दूध उफनकर गिर चुका होता है।

कान्हजीने रीस अति थई, पेहेलूं माखण दई न गई।

ते ता झाली न रही रीस, घोलीना कीधां कटका वीस॥१२॥

इधर श्री कृष्ण जी को बहुत ही क्रोध आता है कि माँ ने पहले मुझे मक्खन क्यों नहीं दिया? वे अपने क्रोध को

सहन नहीं कर पाते और मक्खन के मटके के बीसों टुकड़े कर देते हैं।

**विशेष-** इस प्रसंग को पढ़कर यह कभी भी नहीं मान लेना चाहिए कि जब परब्रह्म के स्वरूप को क्रोध आता है तो हमारे क्रोधित होने में क्या दोष है? वस्तुतः यह बाल लीला है, जिसमें क्रोध के परदे में प्रेम लीला की मधुर अभिव्यक्ति है। इसे मनुष्य की सांसारिक लीला के साथ जोड़कर नहीं देखना चाहिए।

**तिहां दोडीने आवी मात, देखी कान्हूडानो उतपात।**

**दामणूं लीधूं जसोदाए, कान्हजी पाखल पलाए॥१३॥**

श्री कृष्ण जी की इस शरारत को देखकर माता यशोदा वहाँ दौड़ती हुई आती हैं। कन्हैया को पकड़ कर बाँधने के लिये हाथ में रस्सी लेकर पीछे-पीछे भागती हैं।

आगल कान्हजी उजाय, जसोदाजी ते वांसे धाय।

माताने श्रम अति थयो, तिहां कान्हजी ऊभो थई रह्यो॥१४॥

आगे-आगे श्री कृष्ण जी भागे जा रहे हैं तथा उनके पीछे-पीछे माता यशोदा भी भाग रही हैं। जब यशोदा जी बहुत थक जाने के बाद भी कन्हैया को पकड़ नहीं पाती हैं, तो वे स्वयं ही खड़े हो जाते हैं।

कट दामणिए न बंधाय, तसू चार ते ओछूं थाय।

वली दामणूं बीजूं लिए, गांठों अनेक विधे दिए॥१५॥

वे श्री कृष्ण जी को पकड़कर उनकी कमर में रस्सी बाँधना चाहती हैं, किन्तु वह चार अँगुल छोटी पड़ जाती है। पुनः यशोदा जी दूसरी रस्सी लेकर आती हैं तथा दोनों रस्सियों को मिलकर अनेक प्रकार से गाँठें लगाती हैं, जिससे किसी भी प्रकार से कन्हैया को बाँधा जा

सके।

एम लीधां दामणां अपार, तसू घटे ते चारना चार।

वली देखी मातानूं श्रम, कान्हें मूक्या दामणां नरम॥१६॥

फिर भी वे बन्ध नहीं पा रहे हैं। यशोदा जी बहुत सी रस्सियाँ लाती हैं, किन्तु वे सभी चार अँगुल छोटी पड़ जाती हैं। श्री कृष्ण जी जब माता को परिश्रम से थका हुआ देखते हैं, तो वे रस्सी को ढीला कर देते हैं।

त्यारे एक दामणें बेंहू हाथ, बांधी कट ऊखल संघात।

एवो बांध्यो दामणिए बंध, जुओ कान्हजी रुए अचंभ॥१७॥

तब यशोदा जी एक ही रस्सी से श्री कृष्ण जी के दोनों हाथों तथा कमर को ओखली के साथ बाँध देती हैं। इस प्रकार रस्सी से बन्ध जाने पर श्री कृष्ण जी कृत्रिम ढंग

से रोने का अभिनय करने लगते हैं। उनकी यह मधुर लीला बहुत ही आश्चर्य में डालने वाली है।

तिहां रोटो रीकतो जाय, रह्यो वृख ऊखल भराय।

तिहां थी निसरवा कीधूं जोर, पड्यो विरिख थयो अति सोर॥१८॥

श्री कृष्ण जी रोते-सिसकते जा रहे होते हैं। इतने में ओखली दो वृक्षों के बीच में फँस जाती है। उसमें से निकलने के लिये जब वे जोर लगाते हैं, तो दोनों वृक्ष गिर पड़ते हैं, जिससे वहाँ बहुत कोलाहल हो जाता है।

तेमां पुरुख बे प्रगट थया, अंग मोडीने ऊभा रह्या।

कर जोडीने अस्तुत कीधी, तेणे तरत वाले सीख दीधी॥१९॥

उन दोनों वृक्षों से दो पुरुष प्रकट होते हैं। वे अपना शिर झुका कर खड़े रहते हैं। जब वे हाथ जोड़ कर श्री कृष्ण



जी की स्तुति करते हैं, तो श्री कृष्ण जी उन्हें उस समय बड़ो की अवहेलना न करने का उपदेश देते हैं।

**भावार्थ**— यक्षराज कुबेर के दो पुत्र थे— नलकुबेर तथा मणिग्रीव। ये युवावस्था में एक बार सरोवर में स्नान कर रहे थे, अचानक वहाँ पर नारद जी का आगमन हुआ। किन्तु उन दोनों ने प्रमादवश उन्हें प्रणाम नहीं किया। इससे क्रुद्ध होकर नारद जी ने उन्हें वृक्ष होने का श्राप दे दिया। बाद में क्षमा माँगने पर उन्होंने कहा कि अभी तुम ब्रज मण्डल में वृक्ष हो जाओ। उचित समय पर श्री कृष्ण जी के हाथों तुम्हारा उद्धार होगा। दोनों भाई गोकुल में अर्जुन के वृक्ष बन गये, अर्थात् वृक्ष योनि में जन्म लिये। ये दोनों बहुत पास-पास उगे थे, इसलिये इनका नाम "यमलार्जुन" पड़ गया था।

इहां आवी जसोदा उजाणी, कान्हजी भीडी रही भुज ताणी।

स्वांस मांहे न माय स्वांस, मुख चुमती आस ने पास॥२०॥

वृक्षों के गिरने का कोलाहल सुनकर माता यशोदा भागती हुई आती हैं, और प्यारे कन्हैया को अपनी भुजाओं में लेकर हृदय से लगा लेती हैं। अनिष्ट (अशुभ) की आशंका से घबराहट के कारण उनकी श्वांस नहीं आ रही है, अर्थात् रुकी सी प्रतीत हो रही है। वे वात्सल्य प्रेम की अधिकता से बार-बार श्री कृष्ण जी का मुख चूम रही हैं।

**भावार्थ-** बहुत घबराहट की अवस्था में हृदय और मुख की स्थिति ऐसी हो जाती है कि जैसे श्वांस रुक सी गयी हो। यद्यपि श्वांस रुकी नहीं होती, बल्कि बहुत कम हो गयी होती है। उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण में यही भाव दर्शाया गया है।

एक धरे ते गोवरधन, हरख उपजावे मन।

इंद्रनो कीधो मान भंग, एम रमे ते जुजवे रंग॥२१॥

एक सखी श्री कृष्ण का रूप धारण कर अपनी अंगुली पर गोर्वधन पर्वत को उठाती है तथा सबके मन को आनन्दित करती है। यह लीला करके वह इन्द्र के अभिमान को नष्ट करती है। इस प्रकार सभी सखियाँ ब्रज की अलग-अलग लीलाओं का अभिनय करती हैं।

लई चारे वाछरू वन, मांहोंमांहें गोवाला जन।

हाथ मांहें वांसली लाल, मांहें रामत करे रसाल॥२२॥

श्री कृष्ण जी ग्वाल बालों के साथ बछड़े चराने वन में जाते हैं। उनके हाथ में लाल रंग की मनोहर बाँसुरी है। वे वन में तरह-तरह की आनन्दमयी क्रीड़ाएँ करते हैं।

आपणमां कोइक कामनी वेख, एक वेख वालोजी वसेख।  
 वालो पूरे कामनीनां काम, भाजे हैडा केरी हाम॥२३॥  
 अपने में से कोई सखी कृष्ण का मनोहर वेश धारण  
 करती है, तो कोई गोपियों का। श्री कृष्ण जी गोपियों की  
 प्रेम भरी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं।

एक दाणलीला वेख नार, मही माथे मटुकी भार।  
 वालो करे तेसूं हांस, लिए माखण ढोले छास॥२४॥  
 दान लीला के अभिनय में एक सखी अपने शिर पर दही  
 से भरी हुई मटकी लेकर चलती है। प्रियतम उसके साथ  
 प्रेम भरी हँसी करते हैं। वे उसकी मटकी में से मक्खन  
 तो ले लेते हैं और छाछ को गिरा देते हैं।

कहे वचन सामा कामनी, गाल जुगते दिए भामनी।

तेणी लिए मटुकी उजाय, वालो गोरस गोवालाने पाय॥२५॥

जब श्री कृष्ण जी गोपियों के सामने प्रेम भरी हँसी करते हैं, तो वे गाली देने का नाटक करती हैं। ऐसी स्थिति में कन्हैया उनकी मटकी छीन लेते हैं और उसमें रखा हुआ मक्खन तथा दही ग्वालबालों में बाँट देते हैं।

वालो वृजमां रम्या जे जुगते, अमे सहु वेख लीधां ते विगते।

पिउडो तोहे न दीसे क्यांहे, कालजडूं कांपे मांहे॥२६॥

प्रियतम ने ब्रज में जैसी-जैसी लीलायें की थीं, हमने भी वैसे वेश धारण कर उन लीलाओं का नाटक किया। फिर भी जब प्राणेश्वर दिखायी नहीं दिए, तो सबका हृदय अन्दर ही अन्दर काँपने लगा।

राजसिए कीधो विरह जोर, रुए पाडे बुंभ बकोर।

स्वांतसियो बेसुध थाय, तामसियोने आंझो न जाय॥२७॥

राजसी सखियों में विरह बहुत अधिक बढ़ गया। वे दहाड़ मार-मारकर (जोर-जोर से) रोने लगीं। सात्विकी सखियाँ बेहोश (मूर्च्छित) हो गयीं, किन्तु तामसी सखियों का यह विश्वास स्थिर रहा कि प्रियतम अवश्य आयेंगे।

एक वेख वाले वेण वायो, साथ सहु जोवाने धायो।

जाणे वेण वालानो थयो, सोक रुदया मांहेँथी गयो॥२८॥

एक सखी ने श्री कृष्ण जी का वेश धारण करके बाँसुरी बजायी। सब सखियाँ श्री कृष्ण जी का दर्शन करने की भावना से दौड़ीं। सबके हृदय में ऐसा आभास हो गया कि यह बाँसुरी श्री कृष्ण जी ने ही बजायी है। प्रियतम के

मिलन की आशा ने सबके हृदय का शोक समाप्त कर दिया।

**विशेष-** श्री कृष्ण जी का वेश धारण कर बाँसुरी बजाने वाली सखी श्री इन्द्रावती जी थीं। इसलिये जागनी ब्रह्माण्ड में उन्हें अक्षरातीत कहलाने की शोभा मिली।

**सहुने सरूप रुदेमां समाणो, आवी आनंद अंग उभराणो।**

**उलस्या मलवाने अंग, मांहेंथी प्रगट्या उछरंग॥२९॥**

अब सभी सखियों के हृदय में प्रियतम की मधुर छवि बस गयी, जिससे सबके अंग-अंग में आनन्द प्रकट हो गया। अपने प्राणवल्लभ से मिलने के लिये सबके हृदय में अपार उत्साह प्रकट हो गया।

**विशेष-** इसी प्रकार, इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी जब सभी सुन्दरसाथ विरह तथा प्रेम के भावों में भावित

होकर चितवनि में डूब जायेंगे तथा प्रियतम की छवि को अपने धाम हृदय में बसा लेंगे, तो महाप्रलय होने एवं परात्म में जाग्रत होने की भूमिका तैयार हो जायेगी।

वली मांडी ते रामत जोर, गाए गीत करे अति सोर।

त्यारे हरख वाध्यो अपार, आव्यो जुवतीनो आधार॥३०॥

सखियों ने पुनः प्रेमपूर्वक बहुत अच्छी तरह से रामत खेली। वे प्रियतम के प्रकट होने का गीत जोर-जोर से गाने लगीं। इस मनोहर घड़ी में सखियों के जीवन के आधार प्रियतम प्रकट हो गये। उन्हें देखकर सबके मन में अपार आनन्द छा गया।

दोडी वलगी वालाने वसेख, जाणे पिउजी हुता परदेस।

सघलीना हैडा मांहे, हाम मलवानी मन मांहे॥३१॥



उन्हें देखते ही सखियाँ दौड़कर लिपट गयीं। सखियों को ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उनके प्राणवल्लभ कहीं विदेश चले गये थे। सबके हृदय में अपने प्रियतम से प्रेम भरे आलिंगन की प्रबल चाहना थी।

**वालेजीए कीधो विचार, केम मलसे सघली नार।**

**त्यारे देह धरया अनेक, सखी सखी प्रते एक॥३२॥**

श्री राज जी ने विचार किया कि सभी सखियाँ एक – साथ मुझसे कैसे मिल सकती हैं? तब उन्होंने प्रत्येक सखी के लिये अलग-अलग स्वरूप धारण कर लिया।

**भावार्थ-** रास में १२००० ब्रह्मसृष्टियों के लिये उन्होंने १२००० तन धारण कर लिये और सबकी इच्छा पूर्ण की।

सखी सहुने मल्या एकांत, रम्या वनमां जुजवी भांत।

वाले पूरण मनोरथ कीधां, अनेक विधे सुख दीधां॥३३॥

इस प्रकार, श्री राज जी ने प्रत्येक सखी के साथ वन के एकान्त में मिलकर अलग-अलग प्रकार से प्रेममयी लीला की। उन्होंने सबकी प्रेमभरी इच्छाओं को पूर्ण किया तथा अनेक प्रकार से सुख दिया।

इंद्रावतीने आनंद थाय, उमंग अंग न माय।

वली रमे नाना विध रंग, कांई वाध्यो अति उछरंग॥३४॥

प्रियतम से मिलने के पश्चात् श्री इन्द्रावती जी के हृदय में अपार आनन्द है। उनमें रास की क्रीड़ा करने के लिये इतनी उमंग है कि वह समाती नहीं है। वह अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं से रास कर रही हैं और उनके अंग-अंग में रास के प्रति अत्यधिक उत्साह छाया हुआ है।

## प्रकरण ॥३३॥ चौपाई ॥६९३॥

## चरचरी राग केदारो

इस प्रकरण में अन्तर्धान के पश्चात् सखियों के हृदय में प्रकट होने वाली प्रसन्नता का चित्रण किया गया है।

उछरंग अंग सुंदरी, हेत चित मन धरी।

सुख ल्यावियां वालो वली, सुख ल्यावियां वालो वली॥१॥

अपने प्राण प्रियतम के साथ रास क्रीड़ा करने के लिये सखियों के अंग-अंग में उत्साह भरा है। उन्होंने अपने मन-चित्त में अपने धाम धनी के लिये अपार प्रेम बसा रखा है। प्रियतम अक्षरातीत अपनी अंगनाओं के लिये प्रेम का सुख लेकर पुनः प्रकट हो गये हैं।

कर माहें कर करी, सकल मली हरवरी।

बाहें न मूके स्यामतणी, अलगी न जाय कोय टली॥२॥

सभी सखियाँ उतावली होकर प्रियतम की बाँहों में बाँहें डालकर मिल रही हैं। वे न तो श्री कृष्ण जी की बाँहों को छोड़ना चाहती हैं और न ही पल भर के लिये भी उनसे अलग होना चाहती हैं।

एक एक लिए आलिङ्घन, एक एक दिए चुमण।

बांहोंडी वाली जीवन, खेवना भाजे मली॥३॥

प्रियतम अपने पास आने वाली प्रत्येक सखी का आलिङ्गन करते हैं तथा उसे प्रेम भरा चुम्बन देते हैं। सखियाँ भी अपने प्राणेश्वर के गले में बाँहें डालकर अपनी प्रेम भरी चाहत को पूर्ण करती हैं।

जीवन मन विमासियूं, सखी केम भाजसे खेवना।

आ तां पूर जाणे सायरतणां, एम आव्यां हलीमली॥४॥

सखियों के जीवन के आधार प्रियतम ने सोचा कि मैं इन सबकी इच्छा को कैसे पूर्ण करूँ? ये तो झुण्ड की झुण्ड इस प्रकार चली आ रही हैं, जैसे सागर की लहरों का प्रवाह चला आता है।

**पछे एक वालो एक सुंदरी, एम रमूं रंगे रस भरी।**

**लिए आलिंघण फरी फरी, दाझ अंगतणी गई गली॥५॥**

इसलिये प्रियतम ने सोचा कि मैं प्रत्येक सखी के लिये अलग-अलग रूप धारण करूँ और इनके साथ प्रेम भरी लीला करूँ। इस प्रकार धाम धनी ने अपने १२००० रूप धारण कर प्रत्येक सखी का बारम्बार आलिंगन किया, जिससे सखियों की विरहाग्नि समाप्त हो गयी तथा उनकी प्रेम की चाहत भी पूर्ण हो गयी।

विनोद हांस अतिघणो, वाले वधारियो सुखतणो।

कामनी प्रते कंथ आपणो, एणे सुखे दुख नाख्यां दली॥६॥

प्रत्येक सखी के साथ प्रियतम अक्षरातीत ने बहुत अधिक विनोद भरी हँसी करके उनका सुख बढ़ा दिया। इस लीला से होने वाले सुख ने हम सब सखियों के विरह के दुःख को समाप्त कर दिया।

अधुर अमृत पीवतां, कठण कुच खूंचता।

स्याम संगे सुख लेवतां, ए लीला अति सवली॥७॥

आलिंगनबद्ध होकर अधरामृत का रसपान करते समय सखियों के कठोर स्तन प्रियतम को चुभते हैं। सखियाँ इस प्रकार प्रियतम का प्रेम भरा सुख लेती हैं। प्रेम की यह लीला बहुत ही प्रबल है।

**प्रश्न—** क्या उपरोक्त वर्णन मानवीय प्रणय लीला की

तरह नहीं है?

**उत्तर-** बाह्य रूप से देखने पर तो यह लीला मानवीय प्रणय लीला की तरह ही दिखती है, किन्तु आन्तरिक रूप से देखने पर यह आभास होता है कि यह ब्रह्मलीला है और इसमें मानवीय काम विकारों के लिये कोई भी स्थान नहीं है।

नव दम्पति जब आलिंगनबद्ध होते हैं , तो उनमें शारीरिक आकर्षण के कारण काम विकार होना स्वभाविक है, किन्तु माँ-बेटे, पिता-पुत्री, तथा भाई-बहन का आलिंगन निर्विकार होता है, क्योंकि इनकी आसक्ति हृदय के धरातल पर होती है, शरीर के स्तर पर नहीं। एक शिशु माँ का स्तनपान करता है, गले से लिपट जाता है, तथा उसके मुख पर पवित्र भाव से अनेकों चुम्बन दे देता है, और बड़े होने पर अपना शिर माँ के



चरणों में रख देता है।

इन क्रियाओं में आलिंगन-चुम्बन होने पर भी कोई पाप नहीं मानता क्योंकि ये क्रियायें पवित्र आत्मिक सम्बन्धों के हार्दिक प्रेम रस में डूबी होती हैं। सखियाँ प्रियतम की ही अंग रूपा हैं। ऐसी स्थिति में प्रियतम से आलिंगनबद्ध होने में कोई पाप नहीं माना जा सकता। कोई व्यक्ति अपने एक हाथ से दूसरे हाथ का स्पर्श करे, तो क्या यह पाप है? जब लौकिक सम्बन्धों के त्रिगुणात्मक स्वरूप में निर्विकार प्रेम हो सकता है, तो परमधाम की आत्माओं के साथ प्रियतम परब्रह्म के त्रिगुणातीत शरीरों में पवित्र प्रेम क्यों नहीं हो सकता?

वस्तुतः रास लीला का ज्ञान संसार और शरीर से परे रहने वाली ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही है, संसारी जीवों के लिये नहीं। स्त्री और पुरुष में भेद न समझने वाले

शुकदेव जैसे योगेश्वर भी जब रास लीला के वर्णन का अधिकार नहीं पा सके, तो स्थूल माँस-पिण्ड के कामुक विकारों में खोये रहने वाले मनुष्य भला इस ब्रह्मलीला को कैसे समझ सकते हैं?

**साथ मांहें इंद्रावती, वालातणे मन भावती।**

**रस रंगे उपजावती, कांई उपनी छे अति रली॥८॥**

प्रियतम के मन को श्री इन्द्रावती जी सब सखियों से अधिक भा गयी हैं। वे रास की आनन्दमयी क्रीड़ाओं में प्रेम का रस भर रही हैं। यथार्थता यह है कि रास लीला में प्रेम का अपार रस भरने के लिये ही श्री इन्द्रावती जी ने योगमाया का तन धारण किया है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में यद्यपि "उपनी छे" का अर्थ "उत्पन्न हुई है" होता है, किन्तु इसका

आशय योगमाया में रास के लिये तन धारण करने से है।  
इसी प्रकार के अन्य कथन भी हैं, जैसे—

"यों उपजे हम ब्रज वधु जन।" (प्रकटवाणी)

"उपनी छे मूल धणी थकी।" (रास १/४)

प्रकरण ॥३४॥ चौपाई ॥७०१॥

## राग मलार

इस प्रकरण में रास की प्रेम भरी क्रीड़ाओं का मनोरम वर्णन किया गया है।

आपण रंग भर रमिए रास, वालोजी वली आविया रे।

कांई उपनू अंग उलास, सुंदर सुख लाविया रे॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! प्रियतम पुनः हमारे मध्य आ गये हैं, इसलिये हम सभी आनन्दपूर्वक उनके साथ रास खेलें। वे हमारे लिये प्रेम का अखण्ड सुख लेकर आये हैं तथा हम सबके अन्दर भी उनके साथ क्रीड़ा करने के लिये अत्यधिक उल्लास छाया हुआ है।

सखी दियो रे मांहों मांहें हाथ, वचे जोड लीजिए रे।

स्याम स्यामाजी पाखलवाड, सखियो तणी कीजिए रे॥२॥

हे सखियों! हम ऐसा करें कि हम एक –दूसरे का हाथ पकड़ कर घेरा बना लें तथा उसके बीच में श्याम श्यामा की मनोहर जोड़ी को रखें।

हवे रामत रमिए एम, खरो ग्रहीजिए रे।

आपण एणी पेरे बंधेज, सहु रहीजिए रे॥३॥

अब हम इस प्रकार की रामतें करें कि हम एक –दूसरे का हाथ अच्छी तरह से पकड़े रहें। इस प्रकार हम सभी बन्धनों में रहेंगे और कभी भी अलग नहीं हो सकेंगे।

एनूं रूदे अति कठोर, ए थकी विहीजिए रे।

हवे ए अलगो एक पल, आपण न पतीजिए रे॥४॥

हमारे इन प्रियतम का हृदय बहुत ही कठोर है। इसलिये इनसे डरते रहना चाहिये कि ये पुनः कहीं अदृश्य न हो

जायें। इन पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। हमें यही प्रयास करना है कि अब ये हमसे एक पलक के लिये भी अलग न होने पायें।

**भावार्थ-** चौपाई २-४ में वर्णित निश्छल प्रेम की यह मधुर अभिव्यक्ति संसार में खोजने से भी नहीं मिलेगी।

फरतां रमतां रास, चुमन मुख दीजिए रे।

लीजिए रस अधुर, अमृत पीजिए रे॥५॥

हमें रास की रामतें खेलते हुए प्रियतम के मनोहर मुख पर प्रेम भरा चुम्बन देना है तथा उनके होठों से अपने होठों का स्पर्श कराकर अधरामृत का रसपान करना है।

एणे भीडिए अंगों अंग, कुचो वचे आणिए रे।

एना विलास अनेक भांत, मोहन वेल माणिए रे॥६॥

हमें प्रियतम के अंग-प्रत्यंग से इस प्रकार आलिंगनबद्ध होना है कि हमें ऐसा प्रतीत हो कि जैसे वे हमारे दोनों स्तनों के मध्य आ गये हैं। इनसे आनन्दमयी लीला करने के बहुत से ढंग हैं। इन्हें तो दूसरों को सम्मोहित करने वाली मोहिनी लता ही माननी चाहिए।

**भावार्थ-** दोनों स्तनों के बीच हृदय का स्थान होता है। "हृदि हि एषः आत्मा " उपनिषद् के इस कथन के अनुसार स्थूल हृदय में ही सूक्ष्म हृदय, अर्थात् कारण शरीर (मन, चित्त, बुद्धि, और, अहंकार), का निवास होता है। इसके अन्तर्गत ही जीव का भी वास होता है, जिस पर विराजमान होकर आत्मा इस मायावी खेल को देख रही है। आलिंगनबद्ध होते समय प्रेमास्पद की छवि को अपने हृदय में अनुभव करना प्रेम की पहचान है, क्योंकि प्रेम हृदय की बहती हुई अमृत धारा है।

जिस प्रकार तिरछी होकर लिपटती हुई लता वृक्ष पर चढ़ती है, उसी प्रकार श्री कृष्ण जी की तिरछी भंगिमा (गर्दन, कमर, तथा पैरों को टेढ़ा करके खड़े होने) को सम्मोहित करने वाली मोहिनी लता कहा गया है।

मुख मांहें दई अधुर, जीवन सुख जाणिए रे।

अदभुत एहेना सनेह, ते केम वखाणिए रे॥७॥

प्रियतम के मुख से अपने होठों का स्पर्श कराने में जीवन का सर्वोपरि सुख मानना चाहिए। इनका प्रेम अद्भुत है। भला उसका वर्णन कैसे हो सकता है, कदापि नहीं?

वाले सांभलियां रे वचन, भरी अंक लीधियो रे।

वाले चितडूं दईने चित, सरीखी कीधियो रे॥८॥



सखियों की इस वार्ता को प्रियतम ने सुन लिया तथा उन्हें आनन्दित करने के लिये आलिंगनबद्ध कर लिया। प्रेम लीला के द्वारा सखियों के चित्त से अपने चित्त को मिलाकर, उन्हें अपने समान बना लिया।

**भावार्थ-** यद्यपि प्रिया-प्रियतम तो आन्तरिक रूप से एक समान ही होते हैं, किन्तु प्रेम की पूर्ण तृप्ति न होने से उनमें द्वैत का भाव प्रतीत होता है। प्रेम लीला में डूबकर दोनों ही एकात्म भाव में ओत-प्रोत हो जाते हैं।

ऐना मनोरथ अनेक पेर, उपाया अमने घणां रे।

सनेह उपाईने आण्यां, सागर सुख तणां रे॥९॥

प्रियतम ने हमारे मन में प्रेम की अनेक प्रकार की बहुत सी इच्छायें उत्पन्न की हैं। उन्होंने हमारे हृदय में प्रेम प्रकट कर, हमें सागर के समान अपार सुख भी दिया है।

सखी सागरनी सी वात, सुणो सुख स्यामनी।

मारी जिभ्या आणे अंग, न केहेवाय भामनी॥१०॥

हे सखी! प्रियतम के सुखों की उपमा तो सागर से भी नहीं दी जा सकती। धाम धनी से मिलने वाले सुख को तो मेरे इस शरीर की जिह्वा (वाणी) से कभी कहा ही नहीं जा सकता।

**भावार्थ-** सागर से उपमा न करने का आशय यह है कि सागर की जलराशि की भी माप हो सकती है, किन्तु प्रियतम के सुखों का माप होना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

वाले चितडूं दईने चित, ताणी लीधां आपणां रे।

पछे वनमां कीधां विलास, न रही केहेने मणां रे॥११॥

प्राणेश्वर ने अपने चित्त को हमारे चित्त से जोड़ लिया

और हमें अपने स्वरूप में खींच लिया। इसके पश्चात् उन्होंने वन में प्रेम भरी इतनी अधिक लीलायें की कि किसी भी प्रकार की कमी नहीं रही।

कहे इंद्रावती आनंद, वालोजी रंगे गाए छे।

हजी रामतडी वृध, वसेके थाय छे रे॥१२॥

श्री इंद्रावती जी कहती हैं कि इस समय प्रियतम बहुत ही आनन्दपूर्वक गा रहे हैं। इसलिये ऐसा लगता है कि यह खेल विशेष रूप से अभी लम्बा होता जायेगा।

प्रकरण ॥३५॥ चौपाई ॥७१३॥

## राग वेराडी चरचरी

रमत रास करत हांस, कान्ह मोहन वेल री।

कान्ह मोहन वेल, सखी कान्ह मोहन वेल री॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखी! देखो! हमारे श्री कृष्ण मोहिनी लता की तरह कितने आकर्षक लग रहे हैं? वे रास की रामतें करते हुए बहुत ही मोहक हँसी कर रहे हैं।

रासमां विनोद हांस, हांसमा करुं विलास।

पूरतो अमारी आस, करे रंग रेल री॥२॥

रास की क्रीड़ा में हास्य-विनोद की मधुरता अपने चरम पर है। मेरी भी इच्छा है कि मैं इस हास्य-विनोद में सम्मिलित होकर आनन्द का रसपान करूँ। आनन्दमयी

लीला में निमग्न प्राणेश्वर अक्षरातीत अवश्य ही हमारी इच्छा को पूर्ण करेंगे।

वालैयो वन विलासी, गयो तो अमथी नासी।

कठण करीने हांसी, दीधां दुख दोहेल री॥३॥

वन में आनन्दमयी लीला करते हुए प्रियतम हम से छिप गये थे। उन्होंने हमें विरह का भयानक कष्ट देकर हमारे ऊपर कठिन हँसी की थी।

**भावार्थ-** महारास के मध्य प्रियतम का अन्तर्धान हो जाना सखियों के लिये वज्रपात की तरह था। वे विरह की असह्य ज्वाला में जलने लगी थीं। अचानक ही ब्रज की नाटक लीला के समय उन्होंने प्रकट होकर यह दर्शा दिया कि मैं तो कहीं गया ही नहीं था। इस प्रकार उन्होंने विरह की असह्य वेदना देने वाली हँसी की, इसलिये इस

चौपाई के तीसरे चरण में उसे कठिन हँसी कह कर सम्बोधित किया गया है।

सखियो करती मान, तेणे विरह ना कीधां पान।

विसरी सरीर सान, एवो कीधो खेल री॥४॥

सखियों के अन्दर प्रेम का मान आ गया था और उन्होंने विरह की पीड़ा का अनुभव भी नहीं किया था, इसलिये धाम धनी ने उन्हें विरह की ऐसी लीला दिखायी कि सखियों को अपने शरीर की सुधि भी भूल गयी।

**भावार्थ**— मान, अभिमान, और अहंकार में बहुत अधिक सूक्ष्म भेद है। अपने प्रेम को अधिक महत्व देते हुए अपने प्रेमी के प्रति प्रेमास्पद के मन में यह भावना घर कर जाती है कि मेरा प्रियतम मेरे प्रेम के वश में हो गया है। इसे ही "मान" कहते हैं। यह प्रेम की त्रिगुणातीत अवस्था

में योगमाया के अन्दर होता है। परमधाम की अद्वैत भूमिका के एकत्व में मान की स्थिति नहीं है। जब यही मान की स्थिति त्रिगुणात्मक भावों के साथ जुड़ जाती है, तो वह "अभिमान" है। उसमें तामसी भावों की प्रबलता "अहंकार" है। अभिमान तथा अहंकार की प्रवृत्ति मात्र कालमाया के ही ब्रह्माण्ड में होती है, योगमाया या परमधाम में नहीं।

**मन तामसियो हरती, मान माननियो करती।**

**अंगे न विरह धरती, तो अम पर थई हेल री॥५॥**

तामसी सखियों ने अपने प्रेम के द्वारा प्रियतम के मन को हर लिया था, जिसके कारण उन्हें अपने प्रेम का मान हो गया था। उन्होंने केवल प्रेम ही देखा था, विरह नहीं, इसलिये धाम धनी ने हम सभी सखियों को विरह का यह

कष्टकारी खेल दिखाया।

**भावार्थ-** अक्षरातीत प्रेम के अनन्त सागर हैं। तामसी सखियों के द्वारा प्रेम में एक कदम चलने पर, उनके द्वारा १० कदम चलना स्वाभाविक है। इसे ही श्री राज जी का सखियों के द्वारा वश में होना कहा गया है।

आतुर करी सर्वे जन, मीठडां बोले वचन।

हेतसूं हरतो मन, एवो अलवेल री॥६॥

प्रियतम ने अपने अति मधुर वचनों से सभी सखियों को प्रेम में व्याकुल कर दिया है। उनका प्रेम इतना अलौकिक है कि उन्होंने सबका मन पूर्णतया हर लिया है।

हवे न मूकूं अधखिण, धुतारो छे अतिघण।

पल न वालूं पांपण, भूलियो पेहेल री॥७॥



अब मैं अपने प्राणेश्वर को आधे क्षण के लिये भी अपने से अलग नहीं होने दूँगी, क्योंकि ये बड़े ही छलिया हैं। मैं पहले भूल कर चुकी हूँ, इसलिये अब तो मैं एक पल के लिये भी इनसे अपनी दृष्टि नहीं हटाऊँगी।

इंद्रावती कहे साथ, हवे न कीजे विस्वास।

खिण न मूकिए पास, एवी बांधो वेल री॥८॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! अब हमें इस छलिया प्रियतम पर विश्वास नहीं करना है। लता की तरह इनसे लिपट कर हमेशा अपने पास ही रखना है तथा एक क्षण के लिये भी इनका साथ नहीं छोड़ना है।

प्रकरण ॥३६॥ चौपाई ॥७२१॥

## राग धोलनी चाल

जुओ रे सखियो तमे वाणी वालातणी, बोलेते बोल सुहामणां रे।  
मीठी मधुरी वात करे, हूं तो लऊं ते मुखनां भामणां रे॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! प्रियतम के मुखारविन्द से निकलने वाली वाणी की अमृत धारा को तो देखो। ये कितने सुन्दर वचन बोल रहे हैं। ये बहुत ही मधुर एवं मीठे शब्दों में बातें कर रहे हैं। मैं इतनी मधुर वाणी बोलने वाले इनके सुन्दर मुखारविन्द पर बार-बार न्योछावर होती हूँ।

**भावार्थ-** वाणी की मिठास एवं मधुरता में सूक्ष्म अन्तर है। "मीठी वाणी" का तात्पर्य है, शाब्दिक दृष्टि से मिठास, जबकि "मधुर वाणी" का आशय है, उच्चारण की दृष्टि से मिठास। साहित्य के परिप्रेक्ष्य में देखने पर ये दोनों एकार्थवाची सिद्ध होते हैं। इनमें भेद केवल तत्सम्

या तद्भव का होता है, अर्थात् "मधुर" शब्द "मीठा" का शुद्ध साहित्यिक रूप है।

हावसुं भाव करे वालो हेते, गुण ने घणां वालातणां रे।  
 रामत करतां रंग रेल करे, झकझोल मांहें नहीं मणां रे॥२॥  
 प्रियतम में अनन्त गुण हैं। ये बहुत ही उत्साहपूर्वक अपने प्रेम भाव को व्यक्त करते हैं। रास की रामतों के मध्य, वे प्रेम भरी आनन्दमयी क्रीड़ायेँ करते हैं। हास-परिहास से युक्त छेड़खानी करने में ये कृपणता (कन्जूसी) नहीं दिखाते।

जुओ रे सखियो मारा जीवनी वातडी, मारा मनमां ते एमज थाय रे।  
 नेणा ऊपर नेह धरी, हूं तो धरूं वालाजीना पाय रे॥३॥  
 हे सखियों! मेरे जीव के हृदय में उठने वाली एक बात

देखो। मेरे मन में यह बात आ रही है कि अपने प्राणवल्लभ के चरण कमलों को अति प्रेमपूर्वक अपने नेत्रों की पलकों पर रख लूँ।

**भावार्थ-** "नेत्रों की पलकों में रखना " या "आँखों का तारा होना" के कथन मुहावरों के अन्तर्गत आते हैं। नेत्र हृदय का स्थूल दर्पण होता है। नेत्रों की पलकों पर रखने का आशय होता है, अपने हृदय मन्दिर (धाम) में विराजमान करना।

सुण सुंदरी एक वात कहूं खरी, ए ते एम केम थाय रे।

नेणां ऊपर केम करीस, ए तो नहीं धरवा दिए पाय रे॥४॥

यह सुनकर एक सखी कहती है- हे इन्द्रावती! मेरी बात सुनो। मैं स्पष्ट रूप से कह रही हूँ। जो तुम कहती हो, वह कैसे हो सकता है? जब प्रियतम अपने चरण

कमल किसी के भी नेत्रों की पलकों पर रखेंगे ही नहीं ,  
तो तुम कैसे रख लोगी?

जो हूं एम करूं रे बेहेनी, मारा जीवनी दाझ तो जाय रे।  
कोई विध करी छेतरूं वालो, तो मूने केहेजो वाह वाह रे॥५॥  
इसके उत्तर में श्री इन्द्रावती जी कहती हैं – हे बहन  
(सखी)! यदि मैं ऐसा कर लेती हूँ, तो मेरे जीव के हृदय  
की तड़प शान्त हो जायेगी। मैं किसी भी तरीके से  
प्रियतम को धोखे में रखकर यदि अपने इस लक्ष्य को पा  
लेती हूँ, तो तुम सभी मिलकर मुझे शाबासी देना (वाह-  
वाह करना)।

**द्रष्टव्य-** रास लीला में ब्रह्मात्मायें अपने जीव के साथ  
ही थीं। इसलिये कहीं-कहीं आत्मिक भाव के साथ –  
साथ जीव भाव भी दर्शाया गया है।

सुणो रे वालैया वात कहूं, तमारा भूखण बाजे भली भांत रे।  
लई चरणने निरखूं नेत्रे, मूने लागी रही छे खांत रे॥६॥

श्री इन्द्रावती जी प्रियतम के सम्मुख जाकर कहती हैं—  
प्राणेश्वर! मैं एक विशेष बात कह रही हूँ, उसे आप सुनिये। आपके आभूषण बहुत ही मोहक ध्वनि करते हैं। मेरे मन में यह प्रबल चाहना है कि मैं आपके चरण कमलों को अपने हाथों में लेकर अपने नेत्रों से जी भर कर देखूँ (निहारूँ)।

जुओ रे सखियो मारा भूखण बाजतां, झांझरिया ते बोले रसाल रे।  
लेनी पग धरूं तुझ आगल, पण बीजी म करजे आल रे॥७॥

श्री राज जी कहते हैं— हे सखियों! देखो, मेरे आभूषण से बहुत मधुर ध्वनि निकलती है। झांझरी की ध्वनि तो अत्यधिक रसीली है। मैं तुम्हारे आगे अपना पैर रख देता

हूँ, किन्तु तुम कोई दाव न चल देना (हँसीपूर्ण खेल न करना)।

लई चरण ने भेल्या नेणां, वाले जोयूं विचारी चित रे।

वटकी चरण ने लीधां वेगलां, जाणी इन्द्रावती रामत रे॥८॥

श्री इन्द्रावती जी ने धनी के चरणों को उठाकर अपने नेत्रों से लगा लिया। यह देखकर प्रियतम ने अपने चित्त में विचार किया कि यह तो इन्द्रावती जी का एक खेल है। ऐसा जानकर उन्होंने शीघ्रतापूर्वक अपने चरणों को वापस खींच लिया।

वाले वेगे लीधी कंठ बांहोंडी, बेठा अंग भीडीने हेतमां रे।

नेह थयो घणो नेंणांसुं, दिए नेत्रने चुमन खांतमां रे॥९॥

प्रियतम ने शीघ्रता से श्री इन्द्रावती जी के गले में बाँहें

डालकर अति प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध कर लिया। उनके हृदय में श्री इन्द्रावती जी के नेत्रों के प्रति बहुत ही प्रेम हो गया और उन्होंने अति चाहना से उन्हें चूम लिया।

रंग रेल करी रस बस थया, सखी स्याम घणां अमृतमां रे।

लथबथ थई कलोल थया, ए तो कूपी रह्या बेहू चितमां रे॥१०॥

प्रेम के वशीभूत होकर श्री राज जी तथा श्री इन्द्रावती जी, दोनों ही आनन्दमयी क्रीड़ा में निमग्न हो गये। उन्होंने प्रेम के अमृत का बहुत अधिक रसपान किया। प्रियतम के साथ एकाकार होकर श्री इन्द्रावती जी आनन्द में डूब गयीं। दोनों के चित्त में इस लीला का अखण्ड आनन्द विद्यमान हो गया।

**भावार्थ-** एकाकार का तात्पर्य है- प्रेम में डूबकर अद्वैत की उस अवस्था को प्राप्त कर लेना जिसमें स्वयं का



अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तथा प्रेमी (आशिक) को केवल अपने प्रेमास्पद (माशूक) का और प्रेमास्पद को केवल प्रियतम का ही आभास रहता है।

कहे इंद्रावती सुणो रे साथ जी, वाले सुख दीधां घणां घणां रे।  
 नवलो नेह वधार्यो रमतां, गुण किहां कहूं वालातणा रे॥११॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी ! सुनिये! प्रियतम ने रास क्रीड़ा के समय नये-नये ढंग (तरीके) से हमारे हृदय में प्रेम बढ़ाया तथा बहुत अधिक सुख दिया। उनके गुणों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ? प्रियतम के गुण तो अनन्त हैं।

**प्रकरण ॥३७॥ चौपाई ॥७३२॥**

## राग केदारो

इस प्रकरण में रास की मनोहर झांकी प्रस्तुत की गयी है।

बलियामां दीसे बल, अंग आछे निरमल।

नेणां कटाछे वल, पांपण चलवे पल, अजब अख्यात॥१॥

श्री इन्द्रावती कहती हैं— प्रेम का अथाह बल रखने वाले प्रियतम में, लीला करने के लिये, उत्साह का विशाल बल दिखायी दे रहा है। उनके अंग-अंग अति सुन्दर और स्वच्छ हैं। जब वे अपने नेत्रों की तिरछी दृष्टि से प्रेम का संकेत देते हुए अपनी पलकों को घुमाते हैं, तो उस समय उनकी अनुपम शोभा होती है।

जनम संघाती जाण्यो, मन तो ऊपर माण्यो।

सुंदरी चितसुं आण्यो, विविध पेरे वखाण्यो, वालानी विख्यात॥२॥

हे सखियों! तुम पूर्ण मनोयोग से यह बात मान लो कि ये हमारे जन्म-जन्म के मीत (प्रेमी) हैं। इन्हें अपने चित्त (हृदय) में बसा लो। मैंने प्रियतम की महिमा को पहले भी अनेकों प्रकार से तुम्हारे सम्मुख वर्णित किया है।

**भावार्थ-** यद्यपि आत्माओं का जन्म नहीं होता, किन्तु रास में वे अपने जीव के ब्रज वाले संस्कारों के भाव से ऐसा कह रही हैं कि ये हमारे जन्म-जन्म के प्रेमी हैं, अर्थात् इनसे हमारा अनादि काल का अखण्ड प्रेम सम्बन्ध है।

वालोजी वसेके हित, चालतो ऊपर चित।

इछा मन जे इछत, खरी साथनी पूरे खंत, भलो भली भांत॥३॥

प्रियतम विशेष रूप से हमारा हित चाहने वाले हैं। हमारे हृदय के भावों के अनुसार ही ये हमारे साथ व्यवहार करते हैं। हम सभी सखियों के मन में जो भी इच्छा होती है, उसे ये निश्चित रूप से पूरी चाहना के साथ भली भांति (अच्छी तरह से) पूर्ण करते हैं।

**इंद्रावती कहे खरुं, मूलनो संघाती वरुं।**

**ए धन रुदयामां धरुं, अंग्थी अलगो न करुं, खरी मूने खांत॥४॥**

श्री इंद्रावती जी स्पष्ट रूप से कहती हैं कि अनादि काल के मूल सम्बन्ध से मैं अपने पति के रूप में इनका वरण करती हूँ। मेरी यह प्रबल चाहना है कि मैं अपने प्राणधन प्रियतम को अपने हृदय मन्दिर में बसा लूँ और कभी भी अपने से अलग न होने दूँ।

वरजीने दऊं वीड, भीडतां न करुं जीड।

अंग माहें हुती पीड, काम केरी भाजूं भीड, जो जो मारी वात॥५॥

हे सखियों! मेरी बात सुनो। मेरी यह कामना है कि मैं अपने प्राणवल्लभ से आलिंगनबद्ध होने में जरा भी देर न करूँ तथा संकोच छोड़कर उनसे लिपट जाऊँ। मेरे हृदय में विरह की पीड़ा थी, साथ ही प्रियतम का प्रेम पाने की इच्छा भी हिलोरे मार रही थी, इसलिये मैं इसे उनके गले लिपट कर पूर्ण करना चाहती हूँ।

**भावार्थ—** रास की यह क्रीड़ा इस जागनी ब्रह्माण्ड में हमें बारम्बार प्रेरित कर रही है कि हम चितवनि के द्वारा अपने प्राणेश्वर को अपने हृदय धाम में विराजमान करें तथा अखण्ड आनन्द में डूब जायें।

बांहोंडी कंठमां घाली, एकी गमा लीधो टाली।

लई चाली अणियाली, सखी मुख हाथ ताली, जोई रह्यो साथ॥६॥

श्री इन्द्रावती जी के इस कथन को सुनकर प्रियतम ने उनके गले में अपनी बाँहें डाल दी और उन्हें एकान्त स्थान की ओर ले गये। सभी सखियाँ अपने मुख में हाथ डालकर, अर्थात् आश्चर्य भरी दृष्टि से, श्री इन्द्रावती जी को प्रियतम के साथ अकेली जाती हुई देखती रहीं।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई से हमें यह शिक्षा मिलती है कि इस जागनी लीला में हमें अपनी आत्म -जाग्रति के लिये अपनी हीन भावना पूर्णतया समाप्त कर देनी चाहिए तथा प्रियतम के प्रेम पर अपना पूर्ण अधिकार समझते हुए उनके मधुर दर्शन के लिये प्रेममयी चितवनि में डूब जाना चाहिए।

रामत करती रंगे, चुमन देवन्ती वंगे।

उमंग आवियो संगे, भेली मुख भीडे अंगे, मूके नहीं बाथ॥७॥

श्री इन्द्रावती जी प्रियतम के साथ आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करती हैं। वे निःसंकोच भाव से प्रेम भरा चुम्बन भी देती हैं। प्रियतम के साथ लीला करने के लिये उनके अंग-अंग में उमंग भरी है। वे धाम धनी के मुख से मुख मिलाकर गले लिपटती हैं तथा किसी भी अवस्था में आलिंगनबद्ध होना नहीं छोड़तीं।

रंगना करती रोल, झीलती मांहें झकोल।

करी मुख चकचोल, जोरावर झलाबोल, लेवा न दे स्वांस॥८॥

श्री इन्द्रावती जी लीला में आनन्दपूर्वक झूम रही हैं। वे प्रेम भरी धक्का-मुक्की में आनन्द ले रही हैं। रामतों में तल्लीन रहने से उनका मुख लालिमा से भरा हुआ है।

रामत करते हुए वे प्रियतम का हाथ पकड़कर इतनी तीव्रता से झकझोरती हैं कि उन्हें दम भी नहीं लेने देतीं।

पिउना अधुर पिए, अमृत घूंटडे लिए।

सामा वली पोते दिए, देवंता मुख नव विहे, अंग प्रेम वास॥९॥

श्री इन्द्रावती जी प्रियतम के अधरों से अमृत के घूँट पी रही हैं। पुनः अपने अधरों का अमृत प्रियतम को समर्पित करती हैं। उनके अंग-अंग में अपने प्राणेश्वर के लिये प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है। धाम धनी के मुख (अधरों) से अपने मुख (अधरों) का स्पर्श कराने में वे कभी भी पीछे नहीं हटती हैं।

वली इछा जुई धरे, फुंदडी फेरसूं फरे।

जोर अति घणो करे, इंद्रावती काम सरे, रमे पिउ रास॥१०॥



श्री इन्द्रावती जी के मन में पुनः दूसरी इच्छा होती है कि वह अपने प्राणवल्लभ के हाथों में हाथ रखकर वृत्ताकार (गोलाई) में घूमें। इस रामत में वे बहुत अधिक शक्ति लगाती हैं। धाम धनी के साथ रास की रामत खेलती हुई इन्द्रावती जी अपने प्रेम की इच्छा पूर्ण करती हैं।

**फुंदडी मेलीने हाथ, चटकासूं घाली बाथ।**

**रामत करे निघात, कंठ बांहोंडी फरे साथ, रंगे प्राणनाथ॥११॥**

अचानक ही श्री इन्द्रावती जी वृत्ताकार घूमना बन्द कर देती हैं तथा प्रियतम के हाथों से अपना हाथ छुड़ाकर शीघ्रतापूर्वक उनसे आलिंगनबद्ध हो जाती हैं। वे निर्भय होकर प्रियतम के गले में अपनी बाँहें डाल लेती हैं तथा उनके साथ रास की रामत करते हुए आनन्द लेती हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त चौपाई में "प्राणनाथ" शब्द का प्रयोग यही दर्शा रहा है कि यह कोई विशेष व्यक्तिमूलक नाम नहीं है, बल्कि अक्षरातीत परब्रह्म के लिये प्रयुक्त होने वाला भावमूलक शब्द (नाम) है। नामकरण पञ्चभौतिक तनों का होता है। अक्षरातीत अनादि हैं, इसलिये उनके गुण भी अनादि हैं। इस प्रकार उनके गुणों के आधार पर श्री राज, श्री प्राणनाथ, श्री जी, आदि अनेक भावमूलक नाम अनादि काल से तथा सृष्टि के प्रारम्भ से चले आ रहे हैं तथा चलते रहेंगे। यद्यपि शब्द के नितय होने से (सृष्टि के अस्तित्व की स्थिति में ) श्री कृष्ण, श्री देवचन्द्र, तथा श्री मिहिरराज आदि शब्द भी पूर्व से चले आ रहे हैं, किन्तु ये शरीरपरक नाम हैं। इनके अन्दर विराजमान होकर लीला करने वाले भी श्री राज जी, प्राणनाथ, या श्री जी हैं।

वली लिए हाथ ताली, फरती देवंती वाली।

बेठंती उठंती वाली, रामत वचे रसाली, विविध विलास॥१२॥

पुनः वे घूमते हुए हाथों की ताली देने की रामत करने लगती हैं, तो कभी बैठकर और कभी उठकर ताली देने की रामत खेलती हैं। इन रसमयी रामतों में अपने धाम धनी के साथ वे अनेक प्रकार की आनन्दमयी क्रीड़ाओं का रसपान करती हैं।

छटके रामत मेली, वालाजी संघाते गेहेली।

आलिंघण लिए ठेली, चुमन दिए पिउ पेहेली, मुख आस पास॥१३॥

प्रियतम के साथ रामत करती हुई श्री इन्द्रावती जी प्रेम में बेसुध हैं। वे रामत में कभी तो अलग हो जाती हैं, कभी पास आ जाती हैं। कभी तो वे धाम धनी से पहले आलिङ्गनबद्ध हो जाती हैं, तत्पश्चात् उनके मुख के

आस-पास चुम्बन देने लगती हैं।

सर्वे जोवंता सुंदरी, रामत तो घणी करी।

पिउ कंठे बांहो धरी, इंद्रावती वाले वरी, जोइए कोण मुकावे हाथ॥१४॥

सभी सखियों के देखते-देखते श्री इन्द्रावती जी ने श्री राज जी के साथ बहुत अधिक रामतें की। वे अपने प्राणेश्वर के गले में बाँहें डालकर कहती हैं कि मैंने धाम धनी का वरण कर लिया है। देखती हूँ, कौन सखी मुझसे इनका हाथ छुड़ाती है?

प्रकरण ॥३८॥ चौपाई ॥७४६॥

## केसरबाईनो झगडो

केशरबाई का विवाद करना

इस प्रकरण में श्री इन्द्रावती और श्री केशरबाई के झगड़े का मनोरम वर्णन किया गया है।

आवी केसरबाई कहे रे बेहेनी, सुणो वात कहूँ तमसूँ।

भली रामत वालासूँ रंगे करी, हवे मूको रमे अमसूँ॥१॥

श्री इन्द्रावती जी के प्रेम भरे अधिकारपूर्ण कथन को सुनकर केशर बाई जी आकर कहती हैं— हे बहन! मैं तुम से एक बात कह रही हूँ, उसे सुनो! प्रियतम के साथ तुमने बहुत अच्छी तरह से आनन्दमयी रामतें कर ली हैं। अब इन्हें छोड़ दो, जिससे हम सब भी खेल सकें।

हूं तो नहीं रे मूकूं मारो नाहोजी, तमे जोर करो जथाबल।

आवी वलगो वालाजीने हाथ, आतां देखे छे सैयर साथ॥२॥

प्रत्युत्तर में श्री इन्द्रावती जी कहती है कि मैं तो अपने प्राण प्रियतम को किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ूँगी, तुम्हें जितनी शक्ति लगानी हो लगा लो। तुम केवल वाला जी का हाथ पकड़ कर लिपट सकती हो। इस बात को सभी सखियाँ देख रही हैं कि मेरे साथ पहले से लीला चल रही है।

इंद्रावती कहे अमसूं रमतां, केसरबाई करो एम कांए।

तमे हाथ आवी वालाजीने वलगो, पण हूं नव मूकूं बांहेँ॥३॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे केशर बाई! प्रियतम के साथ होने वाले खेल में तुम इस प्रकार बाधा क्यों डाल रही हो? तुम भी आकर धाम धनी के हाथों को पकड़

सकती हो, किन्तु मैं तो किसी भी स्थिति में अपने प्राणधन के हाथों को नहीं छोड़ूँगी।

हूँ कंठ बांहोंडी वालीने ऊभी, मारो प्राणतणो ए नाथ।  
 नेहेचे सखी हूँ नहीं रे मूकूँ, तमे कां करो वलगती वात॥४॥  
 मैं अपने प्रियतम के गले में बाँहें डालकर खड़ी हूँ। ये मेरे प्राणों के नाथ हैं, अर्थात् मेरे जीवन के आधार हैं। हे सखी! मैं निश्चित रूप से अपने धनी को नहीं छोड़ूँगी। तुम व्यर्थ में झगड़े की बातें क्यों करती हो?

अनेक प्रकार करो रे बेहेनी, हूँ नही मूकूँ प्राणनो नाथ।  
 बीजी रामत जई करो रे बेहेनी, आतां ऊभो छे एवडो साथ॥५॥  
 हे बहन केशर बाई! चाहे तुम कुछ भी क्यों न कर लो, किन्तु मैं अपने प्राणनाथ को नहीं छोड़ूँगी। यहाँ इतनी

सखियाँ खड़ी हैं। तुम इन्हें अपने साथ ले जाकर कोई  
और खेल खेलो।

केम रे मूकू कहे केसरबाई, तमने रमतां थई घणी वार।

हवे तमे केम नहीं मूको, मारा प्राणतणो आधार॥६॥

श्री इन्दावती जी के कथन "मैं अपने प्रियतम को कैसे  
छोड़ सकती हूँ" को सुनकर केशरबाई जी कहती हैं—  
तुम्हें प्रियतम के साथ लीला करते हुए बहुत देर हो गयी  
है। ऐसी अवस्था में तुम मेरे प्राणों के आधार प्रियतम को  
क्यों नहीं छोड़ोगी?

सुणो केसरबाई वात अमारी, इंद्रावती कहे आ वार।

लाख वातो जो करो रे बेहेनी, पण हूं नहीं मूकू निरधार॥७॥

यह सुनकर श्री इन्द्रावती जी कहती हैं— हे बहन



केशरबाई! इस बार तुम मेरी बात सुनो। भले ही तुम लाखों बातें कह दो, किन्तु मैं अपने प्राण प्रियतम को किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ूँगी।

कहे केसरबाई अमसूं इंद्रावती, कां करो एवडूं बल।

एटला लगे तमे रामत कीधी, हवे नहीं मूकूं पाणीवल॥८॥

केशरबाई जी कहती हैं कि हे इंद्रावती! तुम मुझे अपनी इतनी शक्ति क्यों दिखा रही हो? तुम इतनी देर से धनी के साथ रामत करती रही हो। अब तो मैं इन्हें एक पल के लिये भी नहीं छोड़ूँगी।

बीजी सखी इहां नहीं रे बापडी, आंहीं तो इंद्रावती नार।

जोर करो जोइए केटलूं केसरबाई, केम ने मुकावो आधार॥९॥

इसके उत्तर में श्री इंद्रावती जी कहती हैं कि तुम्हारे

सामने यहाँ कोई दुर्बल असहाय सखी नहीं है, बल्कि यह याद रखो कि मैं इन्द्रावती हूँ। चाहे तुम कितनी भी शक्ति क्यों न लगा लो, मैं भी देखती हूँ कि तुम मेरे सर्वस्व, मेरे आधार, श्री राज जी को मुझसे कैसे छुड़ा लेती हो?

**एटला दिवस थया अमने रमतां, पण कोणे न कीधूं एम।**

**भोला ढालनी वात जुई छे, जोइए जोर करी जीतो केम॥१०॥**

प्रियतम के साथ लीला करते हुए मुझे इतना समय बीत गया, किन्तु किसी ने भी मुझसे इस प्रकार विरोध नहीं किया। सीधे ढंग से स्नेहपूर्वक माँगने की बात अलग है, किन्तु मैं देखती हूँ कि तुम अपनी शक्ति लगाकर मुझसे कैसे जीतती हो, अर्थात् प्रियतम को कैसे ले लेती हो?

वेढ देखीने वालोजी हँसिया, वलगे मांहोंमांहें नार।

कोई केने नमी न दिए, आतां बंने जाणे झुंझार॥११॥

इन दोनों की खींचतान को देखकर श्री राज जी हँसने लगे कि ये दोनों सखियाँ आपस में किस प्रकार लड़ रही हैं? इनमें से कोई भी किसी के सामने झुकने के लिये तैयार नहीं है। ये दोनों तो स्वयं को ही दूसरे से अधिक शक्तिशाली मानती हैं।

सिखामण दिए रे वालोजी, कोई न नमे रे लगार।

त्यारे रूप कीधां रंगे रमवा, संतोखी सर्वे नार॥१२॥

प्रियतम ने उन्हें शान्त करने के लिये सिखापन दी, किन्तु कोई भी जरा भी झुकने के लिये तैयार नहीं थी। तब रामत को आनन्दमयी बनाने के लिये श्री राज जी ने सभी सखियों के साथ अलग-अलग रूप धारण कर

लीला की। इससे सभी सखियाँ संतुष्ट हो गयीं।

केसरबाई जाणे अमकने आव्या, इंद्रावती जाणे अमपास।

सघलीसूं सनेह करी, वन मांहें कीधां विलास॥१३॥

केशर बाई सोचती थी कि धनी केवल मेरे पास हैं। इसी प्रकार श्री इन्द्रावती जी समझती थीं कि प्राणेश्वर मेरे साथ हैं। किन्तु प्रियतम ने तो सभी सखियों के साथ प्रेममयी लीला करने के लिये १२००० स्वरूप धारण कर लिये और वन में आनन्दमयी लीला की।

इंद्रावती केसरबाई मलियो, बंने कहे एम।

ओसियाली थैयो मन मांहें, जुओ आपण कीधूं छे केम॥१४॥

इस लीला के पश्चात् जब श्री इन्द्रावती जी और केशर बाई जी मिलीं, तो दोनों मन ही मन लज्जित होकर इस

प्रकार कहने लगीं कि देखो सखी! हमने आपस में विवाद करके कितना अनर्थ किया?

**भीडीने मलियो बंने उछरंगे, भाजी हैडानी हाम।**

**इंद्रावती कहे केसरबाई, वाले पूरण कीधां मन काम॥१५॥**

दोनों ही बहुत उत्साहपूर्वक गले मिलीं। इस प्रकार पारस्परिक प्रेम की चाहत से उन्होंने अपने मन की खटास (मलिनता) को समाप्त कर दिया। श्री इन्द्रावती जी कहने लगीं— केशर बाई! इस खेल में प्राणेश्वर ने हमारी सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण कर दिया।

**भावार्थ—** इस प्रकरण में सुन्दरसाथ के लिये एक विशेष शिक्षा है कि उन्हें यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि अक्षरातीत सबके हैं और उनके हृदय में सबके लिये समान प्रेम है। इसलिये इस जागनी ब्रह्माण्ड में हमें क्षेत्र,

वर्ग, धन, पद, रूप, और प्रतिष्ठा आदि के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव न करते हुए, सबके साथ आत्मीय प्रेम का मधुर व्यवहार ही करना चाहिए तथा मन, वाणी, एवं कर्म से किसी के भी हृदय को दुःखी नहीं करना चाहिए।

प्रकरण ॥३९॥ चौपाई ॥७६१॥

## राग केदारो छंद

इस प्रकरण में रास लीला की एक मनोहारिणी झांकी दर्शायी गयी है।

**छेड़ो न छटके, अंग न अटके,**

**भरे पांउं चटके, मानवंती मटके॥१॥**

महारास में सखियों की साड़ी का पल्ला कहीं खुलता नहीं है और न उनका कोई अंग ही उसमें अटकता है। सखियाँ रामत करते समय बहुत शीघ्रता से अपने कदम रखती हैं। मानिनी सखियाँ मटक-मटक कर चलती हैं।

**भावार्थ-** लौकिक दृष्टि से साड़ी एक ऐसा वस्त्र है , जिसके खुलने या शारीरिक अंगों (हाथ, पैर, आदि) के उसमें अटकने की सम्भावना बनी रहती है, किन्तु इस दिव्य रास में ऐसी कोई भी विकृति नहीं आती।

प्रेम का मान करने वाली सखियों को "मानिनी" कहते हैं। आनन्द की अति उमंग (मस्ती) भरी चाल से चलने को मटक-मटक कर चलना कहते हैं।

लिए रंग लटके, घुटावे अधुर घटके, वली वली सटके।  
खांत घणी खटके, रमवा रंगे रास री॥२॥

सखियाँ नृत्य का अभिनय करते हुए रास का आनन्द ले रही हैं तथा प्रियतम के साथ अधरामृत का रसपान करती हुई सुशोभित हो रही हैं। वे बारम्बार अपने प्राणेश्वर के साथ आलिंगनबद्ध हो रही हैं। प्रेम में जीत जाने की प्रबल इच्छा के साथ वे आनन्दपूर्वक रास खेल रही हैं।

रमती रास कामनी, जामती चंद्र जामनी।

मली वल्लभे माननी, भलंती रंगे भामनी॥३॥



रात्रि की इस मनोहर वेला में श्री राज जी के साथ क्रीड़ा करती हुई सखियों को देखकर चन्द्रमा भी रुक गया है। सभी मानिनी सखियाँ अपने प्राण प्रियतम के पास ही दिखायी दे रही हैं। वे आनन्द के रस में आकण्ठ डूबी हुई हैं।

स्यामाजी संगे स्यामनी, बांहोंडी कंठे कामनी।

ताणती अंगे आमनी, मुख बीडी सोहे पाननी॥

एम रमत सकल साथ री॥४॥

श्यामा जी अपने प्रियतम श्री राज जी के साथ रास क्रीड़ा कर रही हैं। वे उनके गले में बाँहें डालकर अपने अंगों (हृदय) की ओर खींच रही हैं। सभी सखियों के मुख में पानों का बीड़ा सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार, सभी आनन्दपूर्वक रास खेल रही हैं।

मारो साथ रमे रे सोहामणो, कांई रामत रमे रंग।

वालाजीसुं वातो, करे अख्यातो, उलट भीडे अंग॥५॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरी सखियाँ (सुन्दरसाथ) बहुत ही सुहावने ढंग से आनन्दपूर्वक रामतें कर रही हैं। वे अपने प्रियतम के साथ प्रेम की अद्भुत बातें करती हैं और उमंग में भरकर आलिंगनबद्ध हो जाती हैं।

बांहोंडी वाले भूखण संभाले, रखे खूंचे कोई नंग।

लिए बाथो वालाजी संघातो, उनमद बल अनंग॥६॥

धाम धनी के गले में बाँहें डाली हुई सखियाँ अपने आभूषणों को इस प्रकार सम्भाले रहती हैं कि उनके नग प्रियतम के हृदय में चुभ न जायें। अपने हृदय में उमड़ने वाले प्रेम के वशीभूत होकर वे प्रियतम से लिपट जाती

हैं।

**भावार्थ-** मात्र कालमाया के ब्रह्माण्ड में ही नग के शरीर में चुभने की सम्भावना होती है, बेहद मण्डल या परमधाम में नहीं, क्योंकि वहाँ नग आदि प्रत्येक वस्तु चेतन होती है। प्रेम भरी भावुकता के कारण सखियों के मन में इस प्रकार की भावना होती है। दूसरा कारण यह है कि सखियाँ अभी पूर्ण रूप से जाग्रत नहीं हैं तथा उनके अन्दर विद्यमान जीव भी कालमाया के संस्कारों से ग्रस्त हैं। इस चौपाई के चौथे चरण में "अनंग" शब्द का अर्थ यद्यपि "काम" होता है, किन्तु यह विकार रूपी काम नहीं है, बल्कि दिव्य त्रिगुणातीत प्रेम ही यहाँ अनंग (काम) के रूप वर्णित हुआ है।

छटके रमे पाखल भमे, रामत न करे भंग।

छेलाइए छेके अंग वसेके, सखी सर्वे सुचंग॥७॥

प्रियतम के आलिंगन से छूटकर सखियाँ उनके चारों ओर वृत्ताकार (गोलाई में) घूमने लगती हैं और रामत को भंग होने नहीं देती हैं। सभी सखियाँ बहुत ही सुन्दर दिख रही हैं और विशेषकर अपने अंगों को सम्भालकर कूदने में बहुत ही चतुर हैं।

केटलीक सुंदरी उलट भरी, आवी वालाजीने पास।

उमंग आणे आप वखाणे, विरह विनता गयो नास॥८॥

प्रेम के नशे में डूबी हुई कुछ सखियाँ श्री राज जी के पास आती हैं तथा उमंग में भरकर स्वयं ही कहने लगती हैं— हे प्राणेश्वर! अब हमारा विरह समाप्त हो गया है।

गीत गाए रंग थाय, विविध पेरे विलास।

जुवती जोड़े एकठी दोड़े, मारा वालाजीसुं करवा हांस॥९॥

प्रेम के गीत गाती हुई सखियाँ आनन्दित हो रही हैं और प्रियतम के साथ अनेक प्रकार से आनन्दमयी क्रीड़ाएँ कर रही हैं। अपने प्राणवल्लभ के साथ हास-परिहास (हँसी-मजाक) करने के लिये सखियाँ दो-दो जोड़े में दौड़ी चली आ रही हैं।

वालैए विमासी अंग उलासी, देह धरया अनेक।

सखियो सघली जुजवी मली, मारा वालाजीसुं रमे वैसेक॥१०॥

प्रियतम ने भी अपने हृदय में प्रेम का उल्लास लेकर लीला करने के सम्बन्ध में विचार किया तथा सभी सखियों के लिये अलग-अलग (१२०००) तन धारण कर लिया। इस प्रकार प्रत्येक सखी अपने प्राण प्रियतम

से अलग-अलग मिली और जी भरकर विशेष रूप से आनन्दमयी लीला की।

**भावार्थ-** सखियों की संख्या १२००० थी। श्री राज जी के द्वारा भी १२००० तन धारण कर लेने पर सबको यह अवसर प्राप्त हो गया कि वे व्यक्तिगत रूप से अकेले धनी के साथ लीला कर सकें। इस प्रकार धाम धनी ने अन्तर्धान से पूर्व तथा पश्चात् कई बार १२००० तन धारण कर सबको सुख दिया।

**अंगडा वाले नेंणां चाले, उपजावे रंग रेल।**

**बोले बंगे आवे रंगे, जाणे पेहेले भणियो पेस॥११॥**

प्रेम के सागर में डूबी हुई सखियाँ अपने अंगों को मोहक भंगिमा के साथ मोड़ती हैं। इसके अतिरिक्त वे अपने नेत्रों को प्रेम भाव के संकेतों में इस प्रकार चलाती हैं कि

उससे अपार आनन्द आता है। उत्साह में भरकर वे प्रेम के अति मनमोहक अटपटे बोल बोलती हैं तथा आनन्दित होती हैं। उनकी इस लीला को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे इन्होंने पहले से ही सब कुछ सीख रखा है।

**भावार्थ-** सखियाँ प्रियतम अक्षरातीत की अर्धांगिनी हैं। उनमें परब्रह्म की प्रेरणा मात्र से सभी कलायें और सभी गुण निरन्तर विद्यमान रहते हैं।

अति उछरंगे वाध्यो संगे, उमंग अंग न माय।

वालाजीनी बांहे कंठ वलाय, रमतां तानी जाय॥१२॥

सखियों के अन्दर लीला के लिये अपार उमंग है। वे उत्साह में भरकर धाम धनी के गले में अपनी बाँहें डाल देती हैं और रामत खेलने के लिये अपनी ओर खींचते हुए

ले जाती हैं।

बांहोंडी झाली वनमां घाली, रामत रमे अति दाय।

वनमां विगते जुजवी जुगते, रंग मन इछा थाय॥१३॥

सखियाँ प्रियतम की बाँहें पकड़कर वन में ले जाती हैं तथा बहुत से दाव-पेंचों के साथ रामतेँ करती हैं। वन में वे अपने-अपने मन की इच्छानुसार अलग-अलग प्रकार से खेलती हैं।

एक निरत करे फेरी फरे, छेक वाले तेणे ताय।

एक दिए ठेक वली वसेक, रेत उडाडे पाय॥१४॥

सखियों की एक जोड़ी नृत्य करती हुई चारों ओर गोलाई में घूमती है। इसी प्रकार एक जोड़ी अपने पैरों से धरती पर विशेष रूप से ठेक देती है तथा रेत उड़ाती है।



एक घूमे घूमरडे कोइक दौडे, वचन गाय रसाल।

एक लिए ताली दिए वाली, साम सामी पडताल॥१५॥

सखियों की एक जोड़ी गोलाई में घूमती है , तो एक जोड़ी प्रेम के गीत गाती हुई दौड़ लगाती है। एक जोड़ी आमने-सामने होकर ताली देती है तथा लेती है।

एक चढे वने इछा गमे, हींचे हिचोले डाल।

एक कोणियां रमे गाए गमे, प्रेमतणी दिए गाल॥१६॥

एक सखी वन में इच्छानुसार वृक्षों पर चढ़ती है और डालियों से लटक कर झूला झूलती है। एक जोड़ी कोहनी की रामत करती है तथा साथ ही साथ प्रेम के मधुर गीत गाते हुए मीठी गालियाँ भी देती है।

एक फरे फेरी कर धरी, बांहोंडी कंठ आधार।

एक फूँदडी फरे रामत करे, रंग थाय रसाल॥१७॥

सखियों की एक जोड़ी एक-दूसरे के कन्धे पर हाथ रखकर तथा गले में बाँहें डालकर चारों ओर घूमती रहती है। एक जोड़ी फूँदडी की रामत करती है, अर्थात् एक-दूसरे का हाथ पकड़कर वृत्ताकार घूमती है। इस प्रकार चारों ओर प्रेम भरा आनन्दमयी वातावरण बना रहता है।

मोरलिया नाचे रंगे राचे, सब्द करे टहुंकार।

वांदरडा पाय ऊभा थाय, लिए गुलाटो सार॥१८॥

इस वृन्दावन में मोर आनन्ददायी नृत्य कर रहे हैं, जो बहुत ही आकर्षक होता है। मोर अति मीठे स्वरों में बोल रहे हैं। बन्दर अपने पैरों पर खड़े हो जाते हैं और मनोहर गुलाटियां लगाते हैं।

**विशेष-** हवा में कलाबाजी खाने को गुलाटियाँ लगाना कहते हैं।

पसु पंखी वासे मन उलासे, आनंदियो अपार।

वन कुलांभे वेलो आवे, फूलडा करे बेहेकार॥१९॥

रास मण्डल के पीछे से पशु-पक्षी सारी लीला देख रहे हैं। उनके मन में लीला देखने के लिये उल्लास भरा हुआ है। वे अपार आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। वन में वृक्षों से लतायें लिपटी हुई हैं। सुन्दर-सुन्दर फूलों से चारों ओर मुग्धकारी सुगन्धि फैल रही है।

चांदलियो तेंजे जुए हेजे, नीचो आवी निरधार।

जल जमुना ना वाध्यां घणां, आघा न वहे लगार॥२०॥

रास की मनोहारिता इतनी अधिक है कि चन्द्रमा भी

तेजी से नीचे आकर बहुत प्रेम से लीला को देख रहा है। इसी तरह रास लीला का आनन्द लेने के लिये यमुना जी का बहता हुआ जल भी रुक गया है तथा थोड़ा भी नहीं बह रहा है।

**भावार्थ-** योगमाया के ब्रह्माण्ड का कण-कण चेतन है और ब्रह्म स्वरूप है। इसलिये चन्द्रमा के नीचे आने तथा यमुना जी के जल के रुक जाने के सम्बन्ध में संशय नहीं करना चाहिए।

**पडछंदा बाजे भोम विराजे, पडताले धमकार।**

**सघली संगे उमंग अंगे, अजब रमे आधार॥२१॥**

जब सखियाँ अपने पैरों से धरती में ठेक (ताल) देती हैं, तो उसकी मधुर प्रतिध्वनि सारी जगह सुनायी देती है। जीवन के आधार श्री राज जी अंग-अंग में उमंग से

भरी हुई सभी सखियों के साथ अनुपम रास खेल रहे हैं।

भूखण बाजे धरणी गाजे, वृंदावन हो हो कार।

अमृत वा वाय लहेरों लिए वनराय, अंग उपजावे करार॥२२॥

सखियों के आभूषणों से निकलने वाली मोहक ध्वनि की गूँज धरती में सुनायी पड़ रही है। रामतों के मध्य में "हो-हो" की भी आकर्षक आवाज सुनायी दे रही है। अमृत के समान शीतल एवं सुगन्धित मधुर झोकों से वृक्षों की डालियाँ झूम रही हैं। इस मनोहर शोभा को देखकर हृदय में अपार शान्ति छा जाती है।

एम केटलीक भांते रमियां खांते, रामत रंग अपार।

कहे इंद्रावती एणी पेरे लीजे, वालो सुख तणो सिरदार॥२३॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! इस प्रकार

रास मण्डल में हमने अनेक प्रकार की रामतों के द्वारा प्रेम की चाहत के साथ लीला की। रामतों में हमने अपार आनन्द का अनुभव किया। प्राणेश्वर अक्षरातीत तो अनन्त सुख को देने वाले हैं। आप भी प्रेम मार्ग द्वारा उस सुख को प्रियतम से प्राप्त कीजिए।

**भावार्थ—** उपरोक्त चौपाई में सुख लेने का सम्बोधन रास की सखियों के लिये नहीं है, बल्कि जागनी ब्रह्माण्ड में आयी हुई ब्रह्मात्माओं के लिये है, क्योंकि रास की सखियों ने तो प्रियतम का सुख ले ही लिया था। रास मण्डल में प्रियतम का मनोहर रूप प्रत्यक्ष था, किन्तु इस समय या तो वे मूल मिलावे में प्रत्यक्षतः विराजमान हैं या अति सूक्ष्म रूप से आत्मा के धाम हृदय में। इस स्वरूप से मात्र प्रेममयी चितवनि के द्वारा ही साक्षात्कार किया जा सकता है और परमधाम के अखण्ड सुखों का

रसास्वादन किया जा सकता है।

प्रकरण ॥४०॥ चौपाई ॥७८४॥

## राग मारु

ऊभा ने रहो रे वाला ऊभा ने रहो, हजी आयत छे अति घणी।

रामत रमाडो अमने, उलट जे अमतणी॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राणेश्वर! आप जरा यहीं पर खड़े तो रहिए। अभी मेरे मन में बहुत सी इच्छायें शेष हैं। आपको उन्हें पूर्ण करना ही पड़ेगा। हमारी जो भी इच्छा है, उसके अनुसार हमारे साथ खेल कीजिए।

अनेक रंगे रमाडियां, केटलां लऊं तेना नाम।

सखी सखी प्रते जुजवा, सहुना पूरण कीधां मन काम॥२॥

आपने हमारे साथ अनेक प्रकार की आनन्दमयी रामतें की हैं। मैं उन रामतों में से कितनों के नाम का वर्णन करूँ? आपने एक-एक सखी के लिये अलग-अलग रूप



धारण कर लीला की है और सभी की प्रेम की चाहत को पूर्ण किया है।

आ भोमनो रंग उजलो, कांई तेज तणो अंबर।

वस्तर भूखण आपना, सूं कहूं सरूप सिणगार॥३॥

नित्य वृन्दावन की इस भूमिका का रंग अति उज्ज्वल है। चारों ओर नूरमयी तेज की अपार राशि दिखायी पड़ रही है। सब सखियों के (अपने) वस्त्रों, आभूषणों, सम्पूर्ण स्वरूप (नख से शिख तक), एवं श्रृंगार की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ? सभी कुछ अनन्त है।

नेहेकलंक दीसे चांदलो, नहीं कलातणो कोई पार।

उठे अलेखे किरणें, सहु झलकारों झलकार॥४॥

इस मनोरम चन्द्रमा में किसी भी तरह का दाग (कलंक)

नहीं है। इसकी सुन्दरता रूपी कलाओं की तो कोई सीमा ही नहीं है। इससे निकलने वाली अमृतमयी शीतल किरणें चारों ओर झलकार कर रही हैं।

**भावार्थ-** इस संसार का चन्द्रमा जड़ है। उसमें बड़े-बड़े गड्ढे हैं, जो सूर्य के प्रकाश में धब्बों के रूप में दिखायी पड़ते हैं। इसके विपरीत नित्य वृन्दावन का चन्द्रमा चेतन स्वरूप है। वह स्वतः प्रकाश स्वरूप है, इसलिये उसमें दाग-धब्बों का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यही कारण है कि उसे निष्कलंक कहा गया है।

अमावस्या को चन्द्रमा दिखायी नहीं पड़ता। इसके पश्चात् शुक्ल पक्ष की प्रथमा से लेकर पूर्णिमा तक सूर्य का प्रकाश इसके थोड़े-थोड़े भाग पर क्रमशः बढ़ता जाता है, जिससे उसका आकार प्रतिदिन बड़ा दिखायी देता है। पूर्णिमा को पूर्ण चन्द्रमा दिखायी देता है। इसके पश्चात्

कृष्ण पक्ष की प्रथमा से चतुर्दशी तक वह घटना प्रारम्भ हो जाती है। इसे ही चन्द्रमा की कलाओं का बढ़ना कहते हैं। चन्द्रमा की अनन्त कलाओं से आशय, उसके सूर्य से प्रकाशित भाग से नहीं, बल्कि उसके सौन्दर्य से है।

वन वेलडियो छाड़्यो, रलियामणां फूल कई रंग।

वाय सीतल रंग प्रेमल, कांई अंगडे वाध्यो उमंग॥५॥

वृन्दावन के वृक्षों पर सुन्दर लतायें छायी हुई हैं। उनमें अनेक रंगों के सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हुए हैं। शीतल, मन्द, और सुगन्धित हवा बह रही है, जिससे अंग-अंग में प्रेम की उमंग बढ़ रही है।

वली रस वनमां छे घणों, मीठी पंखीडानी वाण।

ए वन मुकाय नहीं, रूडो अवसर ए प्रमाण॥६॥

पुनः वन में पक्षियों की अति मीठी ध्वनि गुँजार कर रही है। इससे यह बहुत ही मनमोहक लग रहा है। इस वृन्दावन को तो किसी भी स्थिति में छोड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि प्रेममयी लीला के लिये इसी में सुनहरा अवसर प्राप्त है।

**अनेक विलास कीधां वनमां, मली सहुए एकांत।**

**ए सुखनी वातो सी कहूं, कांई रमियां अनेक भांत॥७॥**

इस वृन्दावन के एकान्त में हम सभी सखियों ने आपके साथ अनेक प्रकार की आनन्दमयी लीलायें की हैं। हमने जिन अनेक प्रकार की रामतों को खेला है, उनके असीम सुख का वर्णन मैं कैसे करूँ?

हवे एक मनोरथ एह छे, आपण रमिए एणी रीते।

बाथ लीजे बने बल करी, जोइए कौण हारे कौण जीते॥८॥

अब मेरे मन में केवल एक ही इच्छा बाकी है। आप उसे अवश्य पूर्ण कीजिए। हम दोनों इस प्रकार खेलें कि हम आलिंगनबद्ध होकर दोनों एक-दूसरे को जोर से दबायें। देखना यह है कि इसमें किसकी हार होती है और किसकी जीत होती है?

झलके झीणी रेतडी, नहीं कांकरडी लगाए।

थाय रूडी इहां रामत, आपण रमिए आधार॥९॥

हे प्रियतम! यहाँ पर बारीक और कोमल रेत झलकार कर रही है। जरा भी कंकड़ नहीं है, इसलिये यह रामत यहाँ पर बहुत ही अच्छी होगी। हम दोनों को यह खेल अवश्य खेलना चाहिए।

सखियो तमे ऊभा रहो, जेवुं होय तेवुं केहेजो।

बने लऊं अमें बाथडी, तमे साख ते सांची देजो॥१०॥

हे सखियों! तुम सभी खड़ी रहकर यह खेल देखो। इस खेल में जैसा परिणाम आये, वैसा ही कहना। हम दोनों (श्री इन्द्रावती जी और श्री राज जी) आलिंगनबद्ध होते हैं। तुम सभी परिणाम की सच्ची साक्षी देना।

दोडी लीधी कंठ बांहोंडी, बने करी हो हो कार।

सखियो मनमां आनंदियो, सुख देखी थयो करार॥११॥

प्रसन्नता के आवेग में "हो-हो" की मधुर ध्वनि करते हुए दोनों ने एक-दूसरे के गले में अपनी बाँहें डाल दीं। इस प्रेममयी लीला को देखकर सखियाँ बहुत ही आनन्दित हो गयीं। इस क्रीड़ा का सुख देखकर उनके हृदय में अपार शान्ति का अनुभव हुआ।

**प्रश्न-** "हो-हो" करते हुए गले लिपटना, क्या मानवीय लीला जैसा प्रतीत नहीं होता? क्या सच्चिदानन्द परब्रह्म भी ऐसा कर सकते हैं? क्या इस तरह की लीला से प्रेम की शालीनता भंग नहीं हो जाती?

**उत्तर-** यह सत्य है कि आज का सामान्य युवा वर्ग ऐसा ही करता है, किन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि केवल ब्रह्म की अद्वैत भूमिका में होने वाली महारास की लीला शब्दातीत है। उसे इस नश्वर जगत में ग्राह्य बनाने हेतु मानवीय व्यवहारों के सांचे में ढाला गया है। "हो-हो" करना हिन्दुस्तानी भाषा का शब्द है। केवल ब्रह्म की शब्दातीत भूमिका में "हो-हो" शब्द का उच्चारण ही नहीं हो सकता। यह तो प्रसन्नता के आवेग को दर्शाने के लिये प्रयुक्त हुआ है।

वस्तुतः प्रेम की लीला विधि और निषेध (मर्यादाओं के

पालन एवं उल्लंघन) से परे है, क्योंकि वह त्रिगुणातीत और शब्दातीत है। विधि और निषेध का सिद्धान्त केवल कालमाया के ब्रह्माण्ड में ही प्रयुक्त होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपना शीश सीता जी के चरणों में नहीं रख सकते। इसी तरह योगेश्वर श्री कृष्ण भी रुक्मिणी के चरणों में अपना शीश नहीं रख सकते, किन्तु रूठी हुई राधा को मनाने के लिये श्री कृष्ण बारम्बार अपना शीश राधा जी के कदमों में रखते हैं।

प्रेम की महाभाव दशा में राम कृष्ण परमहंस, चैतन्य महाप्रभु, और रसखान आदि की विचित्र अवस्था हो जाती थी। एक सामान्य बुद्धिजीवी उन्हें पागल मान सकता है, किन्तु अध्यात्म के परम तत्त्व को जानने वाला उन्हें सम्मान के सिंहासन पर ही आरूढ़ (विराजमान) करता है।



पृथ्वी जैसे असंख्य लोकों के मनीषी जिस अक्षर ब्रह्म के बारे में नाम मात्र भी ज्ञान नहीं रखते, उसी अक्षर ब्रह्म ने प्रेम की लीला देखने की इच्छा की थी। धाम धनी ने अक्षर ब्रह्म को व्रज में प्रेम की लीला दिखायी, तो रास में प्रेम की लीला का विलास (परमानन्द) दिखाया। यदि हम संसार की विधि-निषेध की जंजीर को तोड़ कर आत्मिक प्रेम की दृष्टि से देखें, तो आपत्ति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि सखियाँ और श्री राज जी दो हैं ही नहीं।

जिस प्रकार सागर अपनी ही अपार जलराशि को लहरों में परिवर्तित करके निरन्तर क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार परब्रह्म अपनी अभिन्न स्वरूपा सखियों के साथ महारास की क्रीड़ा करते हैं। उसे लौकिक दृष्टि से नहीं देखा जा सकता।

चरण आंटी भुज बंध वाली, कोई न नमे रे अभंग।

बाथो लिए बने बल करी, रस चढतो जाय रंग॥१२॥

दोनों ने अपने चरणों से पृथ्वी पर टेक दे रखी है तथा एक-दूसरे को भुजाओं से बाँध रखा है, अर्थात् आलिंगनबद्ध कर रखा है। कोई भी झुकने के लिये तैयार नहीं है, बल्कि तने हुए हैं। एक-दूसरे को आलिंगित किये हुए, दोनों ही (श्री राज जी एवं श्री इन्द्रावती जी) बल लगा रहे हैं। इस प्रकार प्रेम के रस से भरी इस लीला का आनन्द बढ़ता ही जा रहा है।

वालो वलाका देवाने, नीचा नमाव्या चरण।

हो हो वालाजी हारिया, हँसी हँसी पडे सहु धरण॥१३॥

श्री इन्द्रावती जी को चकमा देने (दाव-पेंच से उलझन में डालने, चक्कर) के लिये जैसे ही श्री राज जी अपने पैर

को थोड़ा सा झुकाते हैं, तो सभी सखियाँ हो-हो करके कोलाहल करने लगती हैं कि धनी हार गये-हार गये। वे हँसते-हँसते धरती पर गिर जाती हैं।

सखियो कहे अमे जीतियो, सुख उपनूं आसाधार।

ताली दई दई हरखियो, लडथडे पडे सहु नार॥१४॥

सखियाँ कहती हैं कि हम जीत गयीं। उनके हृदय में अपार आनन्द छा जाता है। वे ताली बजा-बजाकर हर्षित हो रही हैं तथा लड़खड़ा कर धरती पर गिर रही हैं।

अणची कां करो रे सखियो, हूं जाणूं छूं तमारु जोर।

जीत्या विना एवडी उलट, कां करो एवडो सोर॥१५॥

यह देखकर श्री राज जी कहते हैं- हे सखियों! तुम इस

प्रकार अन्याय क्यों कर रही हो? मैं तुम्हारी शक्ति को अच्छी तरह से जानता हूँ। बिना जीते ही अति उमंग में भरकर तुम इतना कोलाहल क्यों कर रही हो?

हारया हारया अमने कां कहो, आवो लीजे बीजी बाथ।  
 जे हारसे ते हमणां जोसूं, तमे सांची केहेजो सहु साथ॥१६॥  
 मुझे बारम्बार हारा हुआ (हार गये, हार गये) क्यों कह रही हो? आओ, दूसरी बार आलिंगन करके यह रामत खेलें। जो भी हारेगा, उसका निर्णय अभी हो जायेगा (देख लिया जायेगा)। हे सखियों! तुम हारने-जीतने के सम्बन्ध में सच्ची साक्षी देना।

आवो वली बाथो बीजी लीजिए, एक पूठीने अनेक।  
 हमणां हरावुं तमने, वली हंसावुं वसेक॥१७॥

श्री राज जी कहते हैं- हे इन्द्रावती! आओ, हम पुनः गले लिपटकर इस रामत को एक बार नहीं, बल्कि अनेक बार खेलें। मैं अभी तुम्हें हराकर सखियों को पुनः विशेष रूप से हँसाऊँगा।

कहे इन्द्रावती हूँ बलवन्ती, सुणजो सखियो वात।

नेहेचे तमने ऊंचूँ जोवरावुं, वली रामत करुं अख्यात॥१८॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! मेरी बात सुनो। मैं बहुत अधिक बलशालिनी हूँ। निश्चित रूप से प्रियतम को जीतकर ही तुम्हें दिखाऊँगी। अब मैं पुनः एक अद्भुत रामत खेलूँगी।

प्रकरण ॥४१॥ चौपाई ॥८०२॥

## छन्दनी चाल

**द्रष्टव्य-** सामान्यतः यह माना जाता है कि रास ग्रन्थ के प्र. ४२ एवं प्र. ४३ का विशेष पठन-पाठन उचित नहीं है, क्योंकि इससे अश्लीलता फैलती है। प्रश्न यह है कि यदि श्रीमुखवाणी के शब्दों में ही किसी को अश्लीलता की गन्ध आने लगे, तो वह सच्चिदानन्द परब्रह्म की वाणी कैसे कहलायेगी? अक्षरातीत परब्रह्म के मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द न तो अश्लील है और न निरर्थक। आवश्यकता है, केवल शुद्ध मनोभावों से युक्त होकर, उसमें निहित आशय को समझने की।

इस मायावी जगत में भी ऐसा देखा जाता है कि पिता अपनी नवयौवना पुत्री को ससुराल के लिये विदा करते समय गले लगाता है। भाई-बहन भी रक्षा बन्धन आदि त्योहारों में गले मिलते हैं। माँ भी अपने युवा पुत्र का

आलिंगन करती हैं तथा छोटे बच्चों को सभी चुम्बन देते हैं। जब इन लौकिक व्यवहारों में कोई नाम मात्र के लिये भी काम जनित विकार की कल्पना नहीं करता, तो रास ग्रन्थ में वर्णित परब्रह्म की लीला के प्रति काम विकारों के आरोप की ओछी मानसिकता क्यों पाली जाती है?

धर्म ग्रन्थों में कहा गया है कि "कामस्य बीजं संकल्पः संकल्पादेव जायते", अर्थात् काम का कारण संकल्प है। मन में काम के संकल्प से ही काम विकार की उत्पत्ति होती है। रजोगुण से युक्त संस्कारों के कारण, मन में होने वाले काम जनित संकल्पों से ही काम विकार उत्पन्न होता है। जब बेहद मण्डल में सत्व, रज, तम हैं ही नहीं, तो वहाँ की ब्रह्मलीला में काम विकार की कल्पना करना शशक के सींग, आकाश के फूल, तथा वन्ध्या स्त्री के पुत्र के विवाह की मान्यता के समान मिथ्या है।

क्या अक्षरातीत की लीला की पवित्रता भाई-बहन, पिता-पुत्री, एवं माँ-पुत्र की लौकिक लीला की पवित्रता से भी निम्न है। वस्तुतः माँ-पुत्र, भाई-बहन, एवं पिता-पुत्री के पवित्र आलिंगन तथा माथा चुम्बन आदि में जो पवित्रता होती है, उससे भी करोड़ों गुना अधिक पवित्रता महारास की लीला में है।

महारास की लीला को यहाँ के शब्दों में दर्शाने हेतु आलिंगन तथा चुम्बन आदि लौकिक शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है। महारास की लीला के प्रति काम विकार की कल्पना भी एक मानसिक पाप है। इस कालमाया के ब्रह्माण्ड में उस महारास की लीला मानवीय धरातल पर सम्भव नहीं है। प्रियतम अक्षरातीत की छत्रछाया में इन दोनों प्रकरणों का गुह्य (बातिनी) अर्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—



एणे समे रामत गमे, वालो विलसी लिए सोसी।

अधुरी मधुरी, अमृत घूटें, छोले छूटे, लिए लूटे॥१॥

इस समय होने वाली रामत में प्रियतम ने अपनी आनन्दमयी लीला से सब सखियों के हृदय की तपन को समाप्त कर दिया। उन्होंने उनके मधुर अधरामृत का पान किया, जिससे हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगीं।

लथ बथ, हथ सथ, अंग संग, रंग बंग चंग, चोली चूथी,  
भाजी भूसी, हांसी सांसी, जाणी पाणी, नैणी माणी,  
वदू वाणी, रहोजी होजी, माजी काजी, भाखूं जाखूं,  
रंगे राखूं, समारूं सिणगार जी॥२॥

अलौकिक प्रेम के आवेश में श्री इन्द्रावती जी और श्री राज जी परस्पर आलिंगनबद्ध हो गये, जिससे उनके अंग-प्रत्यंग मिल गये और आनन्द का रस प्रवाहित होने

लगा। अपलक नेत्रों से प्रवाहित अथाह प्रेम के कारण उन्हें अपने शरीर की भी सुधि नहीं रही। परिणामस्वरूप स्वयं के अस्तित्व का भान कराने वाली "मैं" रूपी चोली नष्ट हो गयी। मधुर हास्य ने उस आनन्द में और वृद्धि कर दी, जिसका वर्णन करने में वाणी सर्वथा ही असमर्थ है। मैं यह समझ ही नहीं पा रही हूँ कि पहले मैं अपने आनन्द को सम्भालूँ या अपने श्रृंगार को।

वली वसेखे, राखूं रेखे, लेऊं लेखूं, जोऊं जोखूं,  
प्रेमें पेखूं, घसी मसी, आवी रसी, हँसी खसी वसी,  
भीसी रीसी खीसी, जरडी मरडी, करडी खरडी॥३॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राण प्रियतम! उस ब्रह्मानन्द को धारण करने के लिये आपने मुझे अपना सम्बल प्रदान किया। मैं आपके प्रेम को पाकर और

आपको जी भर निहारकर स्वयं को सौभाग्यशालिनी मानती हूँ। आपके द्वारा की जाने वाली पुनीत प्रेम की सभी लीलायें, जैसे- ढकेलना, मद भरी मोहक चाल से आना, मृदु मुस्कान से हँसना, कृत्रिम उपेक्षा दर्शाने के लिये खिसकना, पुनः प्रेम प्रदर्शित करने के लिये पास आ जाना, हास-परिहास में हाथ आदि अंगों को दबाना और जोर से खींचना, हाथों को ऐँठना, दाँतों से अँगुली आदि को चबाना अलौकिक है और अखण्ड आनन्द के रस से भरपूर है। मेरे प्राणेश्वर! मैं आपको निरन्तर अपलक नेत्रों से देखती ही रहना चाहती हूँ।

खंडी खांडी, छांडी मांडी, मेली भेली, भूमी चूमी, गाली लाली, लोपी चापी, लाजी भाजी, दाझी काढी, आंजी हांजी, जीती जोपे, रूडी रीते, उठी इंद्रावती आ वार जी॥४॥

अपने प्राणवल्लभ के अखण्ड प्रेम से भरपूर हृदय वाली तथा उसे पूरी तरह न सम्भाल पाने की स्थिति में शिथिलता का अनुभव करने वाली श्री इन्द्रावती जी ने समर्पण की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया , जिसके फलस्वरूप उनके मुख पर ब्रह्मानन्द की लाली छा गयी। उस अवस्था में स्वयं के अस्तित्व का भान न होने से श्री इन्द्रावती जी ने अपने हृदय के प्रेम की दाझ को मिटा लिया और अति प्रसन्न मुद्रा में अगली रामत के लिये धनी को हाँ की स्वीकृति भी दे दी।

**प्रकरण ॥४२॥ चौपाई ॥८०६॥**

## राग धना छंद

छेल छंछेरीने लीधी बाथ जुगते, रामत कीधी अति रंग जी।

स्याम सुन्दरी बंने सरखी जोड, जाणिए एकै अंग जी॥१॥

अत्यधिक मोहक स्वरूप वाले श्री राज जी ने श्री इन्द्रावती जी का बड़ी युक्ति के साथ आलिंगन किया और बहुत ही आनन्ददायक रामत की। श्री राज जी तथा श्री इन्द्रावती जी की जोड़ी एक ही अंग होने से समान रूप से सुन्दर है।

**भावार्थ-** सुन्दरी शब्द का प्रयोग उपरोक्त चौपाई में श्यामा जी के लिये नहीं, बल्कि श्री इन्द्रावती जी के लिये किया गया है। इसी प्रकार अन्य कई उदाहरणों में सखियों को सुन्दरी कहा गया है, जैसे-

पछे एक वालो एक सुन्दरी, एम रमुं रंगे रस भरी।

रास ३४/५

सुण सुन्दरी एक वात कहूं खरी, ए ते एम केम थाय रे।

रास ३७/४

सो रस बृज की सुन्दरी, पायो सुगम।

सो सेहेजे घर आइया, जो कहे वेद अगम॥

प्र. हि. ३१/११

परमधाम की वाहेदत (एकत्व) में सभी समान हैं, इसलिये उपरोक्त चौपाई में श्री इन्द्रावती जी को श्यामा जी की तरह ही श्री राज जी के समान कहा गया है।

वली रामत मांडी एक जुगते, जाणिए सघली अभंग जी।

रामत करतां आलिंघण लेतां, लटके दिए चुमन जी॥२॥

पुनः उन्होंने ऐसी रामत की, जिसमें उनके सभी अंग एकरूप प्रतीत होने लगे। रामतें करते हुए श्री राज जी ने श्री इन्द्रावती जी का आलिंगन करके चुम्बन दिया।

रमतां भीडे कठण कुचसों, छबकेसूं रंग लेत जी।

अमृत पिए वालोजी रमतां, अधुर इन्द्रावती देत जी॥३॥

रामत करते हुए, श्री इन्द्रावती जी में प्रेम की अग्नि बढ़ाते हुए, प्रियतम आनन्द लेते हैं। श्री इन्द्रावती जी प्रियतम को अपने अधरामृत का पान कराती हैं।

अधुर लई मुख मांहें मारे वाले, आयत कीधी अपार जी।

भूखण उठ्या उठ्या अंगों अंगे, रहो रहो समरथ सार आधार जी॥४॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे सर्वसमर्थ प्राणवल्लभ! मेरे अन्दर यह अपार चाहना थी कि आप अपने मुख से

मेरे अधरामृत का पान करें, इसलिये आपने ऐसा किया। आप हमारे साथ ऐसी ही अलौकिक प्रेम लीला करते रहिए। आपकी इस लीला में तो अंग-अंग पर सुशोभित आभूषण भी आनन्द में थिरकने लगे हैं।

रम्या रम्या मारा मारा वाला वाला, पाछी पाछी रामत कोय न रही।  
हवे ने हवे आधार, आयत पूरण थई॥५॥

मेरे जीवन के आधार, प्राण प्रियतम! आपके साथ लीला करने में कोई भी सखी पीछे नहीं रही है। आपने हम सबकी प्रेम भरी चाहना पूर्ण की है।

सम सम दऊं दऊं स्याम स्याम, सुणो सुणो, मम मम भीडो एणी भांत जी।  
बोली बोली न न सकूं बलिया रे बलिया, पूरी पूरी मारी मारी खांत जी॥६॥  
मेरे सर्वसमर्थ प्राणवल्लभ ! मैं आपको सौगन्ध देकर



कहती हूँ कि आप मुझे अपने आलिंगन रूपी प्रेम का उपहार इतना अधिक मत दीजिए, क्योंकि आपके प्रेम रूपी सागर में डूब जाने के पश्चात् अब मेरे अन्दर बोलने का सामर्थ्य भी नहीं रहा है। आपने प्रेम की मेरी सम्पूर्ण इच्छा को पूर्ण कर दिया है।

**दर्ई दर्ई सम सम थाकी थाकी तमने, कां कां करो भीडा भीड जी।**

**आयत आयत आवे रे अंगों अंगें, त्यारे न देखो पीड जी॥७॥**

मैं आपको सौगन्ध देकर थक गयी हूँ, तो भी आप जबरन मुझे अपने प्रेम सागर में डूबोते ही जा रहे हैं। मेरे अंग-अंग की प्रेम की चाहत अब पूर्ण हो चुकी है, फिर भी आपके प्रेम को न सम्भाल पाने की मेरी व्यथा पर आप ध्यान नहीं दे रहे हैं (नजरअंदाज कर रहे हैं)।

मन मन मनोरथ पूरया पूरया वाला वाला, वली वली लागूं पाय जी।  
 केही केही पेरे पेरे कहूं कहूं तमने, स्वांस स्वांस हैडे मुझाय जी॥८॥  
 मेरे प्रियतम! मेरे मन के सभी मनोरथ पूर्ण हो गये हैं। मैं बारम्बार आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ। मैं आपसे कैसे कहूँ कि आपके प्रेम में परितृप्त होने से मेरे हृदय की साँसें भी रुकने लगी हैं, अर्थात् इस शब्दातीत प्रेम और आनन्द को व्यक्त करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।

कर कर जोड़ी जोड़ी कहूं कहूं वाला वाला, वली वली मानज मांगूं जी।  
 मेलो मेलो मुखथी वात कहूं, नमी नमी चरणे लागूंजी॥९॥  
 मेरे धाम धनी! मैं आपके चरणों में बारम्बार प्रणाम करते हुए हाथ जोड़ कर यही माँगती हूँ कि मैं आपके नेत्र से नेत्र मिलाकर इसी तरह बातें करती रहूँ।

जेवी अमने आयत हुती, तमे तेवा रमाड्या रंग जी।  
साथ सकलमां एम सुख दीधां, इंद्रावती पामी आनन्द जी॥१०॥  
मेरे प्राणधन! आपने हमारी इच्छा के अनुकूल  
अलौकिक प्रेम के आनन्द में डुबोया और समस्त  
सखियों सहित मुझ इन्द्रावती को अपना अखण्ड आनन्द  
दिया।

प्रकरण ॥४३॥ चौपाई ॥८१६॥

## राग मलार

सखी सखी प्रते स्याम, वालेजीए देह धरया।

कांई वल्लभसूं आ वार, आनन्द अति कर्या॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि प्रियतम ने एक-एक सखी के लिये अलग-अलग तन धारण किया। इस प्रकार हमने अपने प्राणेश्वर के साथ बहुत ही आनन्दमयी लीला की।

मारा पूरण मनोरथ जेह, थया वरसूं मली।

कांई रही नहीं लवलेस, वालाजीसूं रंग रली॥२॥

मेरे मन में प्रेम की जो भी चाहना थी, वह पूर्ण हुई। मैं अपने प्रियतम से मिलकर इस प्रकार आनन्द में डूब गयी कि उसमें किसी भी प्रकार की कमी नहीं रही।

अमे जेम कह्यूं वाले तेम, कीधी रामत घणी।  
हाम हुती हैडा मांहें, वाले टाली अमतणी॥३॥  
हमने जैसा भी कहा, प्रियतम ने वैसा ही खेल खेलाया।  
हमारे हृदय में जिस प्रकार की भी इच्छा थी, धाम धनी  
ने उसे पूर्ण किया।

एणे समे जे सुख, थया जे साथमा।  
कां जाणे वल्लभ, कां जाणे मारी आतमा॥४॥  
इस समय सभी सखियों को जो सुख प्राप्त हुआ, उसे  
या तो मात्र श्री राज जी ही जानते हैं या हमारी आत्मा  
जानती है।

जेहेना मनमां जेह, उछाह हुता घणां।

सुख दीधां तेहेने तेह, पार नहीं तेहतणां॥५॥

जिसके मन में प्रेम लीला करने का जितना अधिक उत्साह था, प्राणेश्वर ने उसके साथ उसी के अनुसार लीला करके सुख दिया, जिसकी कोई सीमा ही नहीं है।

एम रामत कीधी वन मांहे, रमीने आवियां।

ए सुख आ वन मांहे, भला भमाडियां॥६॥

इस प्रकार नित्य वृन्दावन में रामतें करके हम यमुना जी के किनारे आये। प्रियतम ने हमें इस वन में अच्छी तरह खेलाकर अपार सुख दिया।

कहे इंद्रावती साथ, एणी वातो जेटली।

न केहेवाय कोटमों भाग, मारे अंग एटली॥७॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! प्रियतम के प्रेम और आनन्द की जो भी बातें मेरे हृदय में बसी हुई हैं, उसके करोड़वें भाग का भी वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

प्रकरण ॥४४॥ चौपाई ॥८२३॥

## राग गोडी – झीलणां

इस प्रकरण में यमुना जी के अन्दर होने वाली जल क्रीड़ा का अति सुन्दर वर्णन है।

अणी हारे झीलण रंग सोहांमणां रे, आपण झीलसूं वालाजीने साथ।

रामत रमीने सहु आवियां, कांई पूरण थयो रंग रास॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! यमुना जी में जल क्रीड़ा करने का आनन्द बहुत ही मनोरम है। अब हम अपने प्रियतम के साथ जल में स्नान करेंगी। इस समय रास की लीला पूर्ण हो चुकी है, इसलिये हम सभी जल में रामतें करने के लिये यहाँ पर आयी हुई हैं।

श्री राज कहे स्यामाजी सुणो, कांई तमारा मनमां जेह।

साथ सहुने मनोरथ, कांई रह्यो छे एक एह॥२॥



श्री राज जी कहते हैं कि हे श्यामा जी! मेरी बात सुनो! तुम्हारे तथा सभी सखियों के मन में जो भी इच्छायें थीं, वे सभी तो पूर्ण हो गयीं, किन्तु अभी भी एक इच्छा शेष है, जिसे पूर्ण करने के लिये यह आवश्यक है कि।

**अंगे उमंग उपाइने, भेला नाहिए ते भली भांत।**

**झीलणां कीजे मन गमतां, खरी पूरूं तमारी खांत॥३॥**

तुम सभी अपने अंग-अंग में उमंग भरकर मेरे साथ अच्छी प्रकार जल क्रीड़ा (स्नान) करो। तुम्हें अपनी इच्छानुसार जी भरकर स्नान करना है। इस प्रकार मैं तुम्हारी इच्छा को पूर्ण कर सकता हूँ।

**वेलडिए कुसम प्रेमल, कांई वन झलूवे वाए।**

**फले रस चढ्या कई भांतना, भोम सोभा वाधंती जाए॥४॥**

मनोहर लताओं तथा सुगन्धित फूलों से सुसज्जित इस वृन्दावन के वृक्षों की डालियाँ हवा के झोकों से झूम रही हैं। इस वन में अनेक रसों (मीठे, खट्टे, कड़वे, आदि) के फल दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस प्रकार, इस भूमिका की शोभा विलक्षण है।

**जल उछले उछरंगमां, लेहेरडियो लेहेर तरंग।**

**पसु पंखीना सब्द सुहामणां, कांई उलट पसरयो अंग॥५॥**

यमुना जी का अति उज्ज्वल जल अत्यधिक उत्साह में उछल रहा है। तरंगों के रूप में लहरों पर लहर आती हुई दिखायी दे रही हैं। इसकी किनार पर पशु-पक्षियों के मधुर शब्द सुनायी पड़ रहे हैं। इस अनुपम शोभा को देखकर सबके अंग-अंग में उमंग भर गयी है।

साथ मलीने भेलो थयो, आव्यो ते आनन्द मांहें।

अमें सखियो त्रट ऊपर, वालाजीनी ग्रही बांहें॥६॥

हम सभी सखियों के अन्दर जल क्रीड़ा करने के लिये आनन्द छाया हुआ था। सभी एकत्रित होकर यमुना जी के किनारे आयीं और हमने प्रेमपूर्वक प्रियतम की बाँहों को पकड़ लिया।

वागा वधारीने कांठे मूकियां, कांई वस्तर पेहेरया झीलण।

सखी एक बीजीने आनन्दमां, जल मांहें लागी ठेलण॥७॥

सभी ने अपने वस्त्रों को उतार कर किनारे पर रख दिया और स्नान करने के कुछ वस्त्र पहन लिये। यमुना जी के जल में सखियों ने अति आनन्दपूर्वक एक - दूसरे को धकेलना प्रारम्भ कर दिया।

त्रट जोईने जलमां सांचरया, साथ वालो स्यामाजी संग।  
 परियाणीने थया सहु जुजवा, जल मांहें कीजे आनंद॥८॥

श्री राज श्यामा जी के साथ सखियों ने यमुना जी के मनोरम किनारे को देखकर जल में प्रवेश किया। जल में आनन्दमयी क्रीड़ा करने का विचार करके सभी अलग-अलग वर्गों में बँट गये।

एकीगमां साथ स्यामाजी, कांई बीजी गमां प्राणनाथ।  
 क्रीडा कीजिए जलमां, विलसिए वालाजीने साथ॥९॥

जल क्रीड़ा करने के लिये एक ओर सखियाँ और श्यामा जी, तथा दूसरी ओर प्रियतम प्राणनाथ। श्री इन्द्रावती जी सब सखियों को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि अब हमें प्रियतम के साथ जल क्रीड़ा करते हुए आनन्द लेना है।

जल उछाले उछरंगसूं, सहु वालाजीने छांटे।

वालोजी छांटे एणी विधसूं, त्यारे सर्व नासंतियो कांठे॥१०॥

सभी सखियाँ उत्साह में भरकर प्रियतम के ऊपर जल उछालती हैं। श्री राज जी उनके ऊपर इस प्रकार जल उछालते हैं कि सभी सखियाँ भागकर किनारे पर आ जाती हैं।

वली सामी थाय सखियो, जल छांटतियो छोले।

वालोजी उछाले जल जोरसूं, त्यारे नासंतियो टोले॥११॥

सखियाँ पुनः सामने आकर लहरों की तरह जल को जोर से उछालती हैं। जब धाम धनी अति जोर से जल को उछालते हैं, तो सखियाँ टोली-टोली में होकर भागती हैं।

वली आवतियो उमंगसूं, वालो वीट्यो ते चारे गम।

सूझे नहीं कांई जल आडे, आंखे आवी गयो छे तम॥१२॥

सखियाँ उमंग में भरकर पुनः आती हैं तथा प्रियतम अक्षरातीत को चारों ओर से घेर लेती हैं। उछाले गये जल की अधिकता के कारण सबकी आँखों के आगे अन्धेरा छा जाता है और किसी को कुछ भी दिखायी नहीं देता।

**शंका-** एक-दूसरे के ऊपर जल उछालने की क्रीड़ा या तो किशोरावस्था के बच्चे किया करते हैं, या पहले राज घराने एवं सम्पन्न वर्ग के लोग अपनी प्रेयसियों के साथ किया करते थे। इसे ब्रह्म लीला कैसे कहा जा सकता है?

**समाधान-** कालमाया के ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण क्रीड़ाएँ सत्व, रज, और तम के धरातल पर ही होती हैं। छोटी आयु या किशोरावस्था के बच्चे जब जल में क्रीड़ा करते

हैं, तो उसमें सत्व एवं रज का विशेष प्रभाव होता है। इस प्रकार की क्रीड़ा में बालपन का निश्छल स्नेह भरा होता है। इसी प्रकार पूर्वकाल में राज घराने या सम्पन्न वर्ग से जुड़े हुए लोग जब अनेक स्त्रियों के साथ जल क्रीड़ा करते थे, तो काम विकार की भावना से करते थे। उनका यह व्यवहार रज और तम की मानसिकता से पूर्ण था।

किन्तु योगमाया के ब्रह्माण्ड में होने वाली जल क्रीड़ा विशुद्ध प्रेम पर आधारित है। यह त्रिगुणातीत और शब्दातीत है। वस्तुतः अक्षरातीत का हृदय प्रेम की माधुर्यता का अनन्त सागर है। वह लीला रूप में अपनी अभिन्न स्वरूपा सखियों के साथ आँखों, वाणी, अथवा त्वग् इन्द्रिय आदि के माध्यम से प्रकट हो जाता है। श्री राज जी के बोलने, प्रेम भरी दृष्टि से देखने, अथवा सखियों को आलिंगन करने की लीला को सांसारिक दृष्टि

से नहीं देखना चाहिए।

उपरोक्त सभी क्रियाओं में अक्षरातीत के हृदय का प्रेम रस ही प्रवाहित होता है। इसलिये इसे ब्रह्म लीला कहते हैं। अन्यथा, यही कार्य कोई मनुष्य करे तो वह काम विकार की श्रेणी में आ जायेगा, क्योंकि एक सामान्य मानव सत्व, रज और तम के बन्धन से परे नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ— ब्रज लीला में श्री राज जी ने गायों एवं बछड़ों को चराया, आज लाखों बालक इस कार्य को करते हैं, किन्तु उसे ब्रह्म लीला नहीं बल्कि एक सामान्य मानवीय कार्य माना जाता है।

यदि यह कहा जाये कि अक्षरातीत परब्रह्म की अनन्त गरिमा है और उनके लिये जल क्रीड़ा उपयुक्त नहीं, तो इसका समाधान यह है कि प्रेम के वशीभूत होकर योगेश्वर श्री कृष्ण अर्जुन के रथ के सारथी बनते हैं, तथा मर्यादा



पुरुषोत्तम राम सीता के वियोग में पशु-पक्षियों तक से सीता का पता पूछते-पूछते वन-वन भटकते फिरते हैं।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि त्रिगुणातीत प्रेम में विधि और निषेध की मर्यादा नहीं होती। इसे तो स्वयं की गरिमा और पञ्चभूतात्मक अस्तित्व को मिटाकर ही कुछ समझा जा सकता है। तभी तो योगेश्वर श्री कृष्ण भी अपने मित्र सुदामा के धूल भरे पैरों को अपने आँसुओं से धो देते हैं। व्रज लीला में श्री कृष्ण जी का ग्वाल-बालकों के साथ मोहक बाल सुलभ लीलायें करना तथा राधा जी को प्रसन्न करने के लिये चरणों तक में झुक जाना, सब कुछ कह देता है। प्रेम तत्त्व को समझने के लिये शुष्क ज्ञान की पोटली को हटाकर निश्छल एवं कोमल हृदय की आवश्यकता होती है।

एणे समे हवे जे थयूं, बाई इन्द्रावतीनूं काम।

विध विध विलसी वरसूं, भाजी हैडानी हाम॥१३॥

इस समय होने वाली जल क्रीड़ा में श्री इन्द्रावती जी ने अपने प्राणेश्वर के साथ अनेक प्रकार की आनन्दमयी लीलायें की तथा अपने हृदय की इच्छा पूर्ण की।

एम जल क्रीडा करी, पछे नाह्या ते पिउजी।

घणां रस लीधां अंग चोलतां, वालैयाने विलसी॥१४॥

इस प्रकार यमुना जी के जल में क्रीड़ा करने के पश्चात् श्री राज जी ने स्नान किया। सखियों ने अपने धाम धनी के अंग-अंग को मल-मलकर नहलाने का आनन्द लिया।

**भावार्थ-** योगमाया के नूरी तनों में मैल नहीं होती। मात्र लीला रूप में ऐसा वर्णन किया गया है।

स्यामाजीने नवरावियां, पेरे पेरे ते घणी प्रीत।

साथ सहु एणी विधे, कांई नाह्यो छे रूडी रीत॥१५॥

इसी प्रकार, सखियों ने श्यामा जी को भी बहुत प्रेमपूर्वक तरह-तरह से स्नान कराया। इसी प्रकार सभी सखियों ने बहुत अच्छी प्रकार से स्नान किया।

सुंदरबाई इन्द्रावती, कांई रत्नावती संग।

लालबाई पेहेले निसरयां, सिणगार कीधां सरवा अंग॥१६॥

सुन्दरबाई, इन्द्रावती, रत्नावती, तथा लालबाई यमुना जी के जल से सर्वप्रथम बाहर निकलीं, तत्पश्चात् उन्होंने अपने सभी अंगों का श्रृंगार किया।

**भावार्थ-** रास में सुन्दरबाई और श्यामा जी दो हैं, किन्तु सम्पूर्ण तारतम वाणी में परमधाम में श्यामा जी को ही सुन्दरबाई कहा गया है। इसी कारण श्यामा जी की

अंगरूपा सखियों को सुन्दरसाथ कहते हैं। इस सम्बन्ध में प्र. हि. ३७/६६ में स्पष्ट कहा गया है कि "यामें सुरत आई स्यामा जी की सार, मतू मेहता घर अवतार।" पुराण संहिता ३४/४३ के कथन "स्वामिनी वासना साक्षादाविष्टा सुन्दरी मनः" अर्थात् "श्यामा जी की ही सुरता सुन्दरबाई के अन्दर प्रविष्ट हो गयी" को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। तारतम वाणी का कथन अन्तिम सत्य है। बी. सा. ६/३० में भी स्वयं श्री राज जी श्री देवचन्द्र जी (श्यामा जी) से कहते हैं— "नाम तुम्हारा बाई सुन्दर, खेले तुम ब्रज रास में।"

**वस्तर भूखण स्यामाजीने, पेहेराव्या भली भांत।**

**अधवीच आवीने वालैए, वेण गूंथी करी खांत॥१७॥**

इन चारों सखियों ने श्यामा जी को वस्त्र –आभूषण

अच्छी प्रकार से पहनाये। इसी बीच प्रियतम ने आकर बहुत प्रेम भरी चाहत के साथ उनके बालों की चोटी गूँथी।

**भावार्थ-** श्री राज जी के द्वारा श्यामा जी के बालों की चोटी गूँथने को लौकिक सम्बन्धों की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। स्वलीला अद्वैत परमधाम का एक-एक कण अक्षरातीत का ही स्वरूप है। इस सम्बन्ध से श्री राज जी और श्यामा जी एक ही स्वरूप हैं। इनमें रंच मात्र भी भेद नहीं किया जा सकता। सागर ६/३ में कहा गया है-

"अन्तर पट खोल देखिए, दोऊ आवत एक नजर।"

**सिणगार सर्वे सजी करी, स्यामाजी घणूं सोहे।**

**दरपण लईने हाथमां, मन वालानूं मोहे॥१८॥**

इस प्रकार, सम्पूर्ण श्रृंगार से सुसज्जित होकर श्यामा जी

बहुत अधिक शोभायमान होने लगती हैं। जब वे हाथ में दर्पण लेकर अपना अति सुन्दर मुखारविन्द देखती हैं, तो वे इतनी अनुपम छवि वाली दिखायी देती हैं कि उन्हें देखकर श्री राज जी का मन मुग्ध हो जाता है।

आसबाई कमलावती, कांई फूलबाई मल्या।

चंपावती चारे मली, सिणगार कीधां भेला॥१९॥

इसके पश्चात् आशबाई, कमलावती, फूलबाई, और चम्पावती, इन चारों सखियों ने मिलकर एकसाथ अपना श्रृंगार किया।

चार सखी मली श्रीराजने, कराव्या सिणगार।

वस्तर भूखण विधोगते, कांई सोभ्या ते प्राण आधार॥२०॥

इन चार सखियों ने मिलकर श्री राज जी का श्रृंगार

कराया। अति सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर प्रियतम की अनुपम शोभा दिखायी दे रही है।

एक बीजीने करावियां, सिणगार ते सर्वे एम।

चितडू दईने में जोइयूं, कांई साथनो अतंत प्रेम॥२१॥

इस प्रकार, सभी सखियों ने एक-दूसरे का श्रृंगार कराया। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैंने इस लीला में सुन्दरसाथ (सखियों) के अन्दर विद्यमान अनन्त प्रेम को बहुत अच्छी तरह से (ध्यानपूर्वक) देखा।

परसेवे वस्तर साथना, नाहवा समे उतारया जेह।

श्रीराज बेठा तेह ऊपर, तमे प्रेम ते जो जो एह॥२२॥

स्नान करने से पूर्व, सखियों ने पसीने से युक्त अपने जो वस्त्र उतारे थे, श्री राज जी उन्हीं के ऊपर बैठ गये। हे

साथ जी! धाम धनी का यह अनुपम प्रेम तो देखिये।

**भावार्थ-** केवल ब्रह्म की चेतन भूमिका में सूर्य की उष्णता नहीं है, इसलिये वहाँ पसीने का अस्तित्व नहीं हो सकता। उपरोक्त चौपाई में पसीने (स्वेद) का वर्णन यहाँ के भावों के अनुसार किया गया है। केवल ब्रह्म तथा परमधाम की लीला शब्दातीत है। उसे नश्वर जगत में व्यक्त करने के लिये यहाँ के भावों का आधार लेना पड़ता है। पानों का बीड़ा आदि ग्रहण करना तथा भोजन करना भी इसी के अन्तर्गत आता है।

जमुनाजी ने कांठडे, कांई द्रुमवेलीनी छांहे।

साथ सहु मलीने सामटो, कांई आव्यो ते आनंद मांहे॥२३॥

यमुना जी के किनारे वृक्षों तथा लताओं की मनोहर छाया थी। वहीं पर आनन्द में भरी हुई सभी सखियाँ



एकत्रित हुई।

बेठा मली आरोगवा, कांई सोभित जुजवी पांत।

सो सखी सों इंद्रावती, थया प्रीसने भली भांत॥२४॥

इसके पश्चात् भोजन करने के लिये सभी सखियाँ अलग-अलग पंक्तियों में बैठ गयीं। श्री इन्द्रावती जी, सौ सखियों के साथ, विधिवत् भोजन परोसने के लिये तैयार हो गयीं।

प्रकरण ॥४५॥ चौपाई ॥८४७॥

## राग वेराडी – भोग

इस प्रकरण में भोजन लीला का मनोरम चित्रण किया गया है।

फरतण फेर बाजोटिया, रंग पाकी परवाली।

कांबी पडगी जे कांगरी, जाणे रहिए निहाली॥१॥

पहलदार एवं गोल आकृति वाली एक चौकी है, जो प्रवाल के समान पक्के लाल रंग की है। उसके पायों की किनार पर कांगरी की इतनी सुन्दर शोभा आयी है कि उसे सर्वदा ही देखते रहने की इच्छा होती है।

चारे गमां वाल्या चाकला, बेठां वाली पलाठी।

सोभा मारा वालाजीनी सी कहूं, जे आतमाए दीठी॥२॥

चौकी के चारों ओर अति सुन्दर चाकला बिछाया हुआ है, जिस पर पालथी मार कर प्रियतम बैठे हुए हैं। मेरी आत्मा ने अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत की जिस अनुपम शोभा को देखा है, उसे मैं यथार्थ रूप में किस प्रकार वर्णित करूँ?

**श्रीठकुराणीजी श्रीराजसों, भेलां बेसे सदाय।**

**आसबाई सुन्दरबाई, बेठा एणी अदाय॥३॥**

श्री श्यामा जी श्री राज जी के पास तो सदा ही बैठती हैं। इसी प्रकार आशबाई और सुन्दरबाई भी उसी भावना से बैठी हैं।

**भावार्थ—** उसी अदा (भावना) से बैठने का आशय यह है कि आशबाई एवं सुन्दरबाई भी स्वयं को श्यामा जी की तरह ही अक्षरातीत की प्रियतमा मानती हैं। यही भावना

सभी सखियों में है।

हाथ पखाल्या पात्रमां, जुजवी जुगते।

पासे साथ बेठो मली, सहु कोय एणी विगते॥४॥

एक पात्र में विशेष युक्ति से युगल स्वरूप के हाथ धुलवाये गये। पास में जो सखियाँ श्री आशबाई एवं सुन्दरबाई थीं, उन्होंने भी उसी पात्र में अपने हाथ धोये।

ऊपर वन रंग छाड़्यो, जाणे मंडप रचियो।

प्रीसणे साथ जे हुतो, ते तो रंग माहें मचियो॥५॥

वन के वृक्षों की छाया ऊपर से इस प्रकार छायी हुई है कि ऐसे लगता है जैसे कोई मण्डप बना हुआ हो। भोजन परोसने वाली सखियाँ प्रियतम को खिलाने मात्र की भावना से ही आनन्द से भर गयी हैं।

थाली धात वसेकनी, जुगते अजवाली।

लाल जडाव लोटे जल, लई प्रेमे पखाली॥६॥

भोजन की थाली एक विशेष धातु की (नूरमयी) है, जिसे बहुत अच्छी तरह से साफ किया गया है। लाल नगों से जड़े हुए लोटे में जल रखा हुआ है, जिससे बहुत ही प्रेमपूर्वक थाली को धोया गया है।

वाटका फूल कचोलियां, ते तो जुगते जडिया।

अजवालीने पखालिया, थाली मांहें मलिया॥७॥

फूल अर्थात् कांसे के कटोरे एवं कटोरियाँ हैं। ये अति मनोहर नगों से जड़ी हुई हैं। इन्हें जल से धोने के पश्चात् कपड़े से पोंछ कर थाली में रखा गया है।

**भावार्थ—** जिस प्रकार, ताँबा और ज़िंक को मिलाकर पीतल बनाया जाता है, उसी प्रकार ताँबे से बनायी जाने

वाली यह एक मिश्रित धातु है। वैसे तो योगमाया की प्रत्येक वस्तु चेतन और प्रकाशमयी है, किन्तु कांसे की धातु का प्रयोग सुन्दरता के आधार पर किया गया है। यहाँ के भावों के आधार पर ही बर्तनों को धोने तथा पोंछने की लीला दर्शायी गयी है।

**वली नितारी अजवालिया, रूमाल संघातें।**

**प्रीसें छे सारी सूखडी, विध विध कई भांते॥८॥**

बर्तनों में लगे जल को निकाल कर रूमाल से पोछा गया है। इसके पश्चात् थालियों में अनेक प्रकार की मिठाइयाँ परोसी जा रही हैं।

**बाई भागवंती भली पेरे, प्रीसे सूखडी सारी।**

**कहूं केटली घणी भांतनी, सर्वे मूकी संभारी॥९॥**

भागवन्ती बाई बहुत ही अच्छी तरह से मिठाइयाँ परोस रही हैं। वे इतनी प्रकार की हैं कि मैं उनका कितना वर्णन करूँ? सभी मिठाइयों को वे सम्भाल कर परोसती हैं।

**पकवान सर्वे प्रीसी करी, साक मूक्यां छे घणां।**

**कंदमूल भांत भांतनां, अलेखे अथाणां॥१०॥**

अनेक प्रकार के बहुत से पकवान परोसे जा रहे हैं, जिनमें कई किस्म की सब्जियाँ हैं, कई तरह के कन्दमूल हैं, तथा कई प्रकार के अचार हैं।

**साक ते सूकवणी तणां, कई सेक्यां सुतलियां।**

**विध विध मेवा वन फल, अति उत्तम गलियां॥११॥**

कई शाक (सब्जियाँ) तो सूखे हैं, कई भुने हुए हैं, और कई तले हुए हैं। अनेक प्रकार के मेवे तथा वनफल हैं,

जो बहुत ही अच्छी तरह से पके हुए हैं।

आरोग्या अति हेतसों, राज साथ संघाते।

प्रीसंता प्रेम जो में दीठो, ते न केहेवाय भांते॥१२॥

श्री राज जी के साथ सब सखियों ने बहुत ही प्रेमपूर्वक भोजन किया। भोजन परोसने में सखियों के अन्दर मैंने जो अथाह प्रेम देखा, उसका वर्णन किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता।

कंचन रंग झारी भरी, जल विच मांहें लीधो।

श्री इंद्रावतीजी ने कोलियो, श्री राजे मुख मांहें दीधो॥१३॥

जल से भरी हुई कञ्चन रंग की एक झारी (बर्तन) है। धाम धनी ने भोजन के बीच में उससे जल पिया तथा श्री इन्द्रावती जी के मुख में अपने हाथ से भोजन का एक



ग्रास डाला।

हरख थयो जे एणे समे, साथे सहु कोइए दीठो।

हसियां रमियां साथसो, घणो लाग्यो छे मीठो॥१४॥

इस लीला से सबके हृदय में अपार प्रसन्नता हुई, जिसका अनुभव सभी सखियों ने किया। प्राणेश्वर अक्षरातीत का अपनी अंगरूपा सखियों के साथ हँसना-खेलना बहुत ही मीठा लगता है।

आरोग्या आनंद सों, जेणे जे भाव्यां।

दूध दधी ते ऊपर, लाडबाई लई आव्यां॥१५॥

जिसे जो भी अच्छा लगा, उसने उसे आनन्दपूर्वक ग्रहण किया। इसके पश्चात् लाडबाई जी सबके लिये दूध-दही लेकर आयीं।

**भावार्थ-** भूख-प्यास का लक्षण मात्र माया के पञ्चभूतात्मक तनों में ही होता है, योगमाया या परमधाम के त्रिगुणातीत नूरमयी तनों में नहीं। उपरोक्त चौपाइयों में भोजन लीला का जो वर्णन है, वह मात्र आत्मिक आनन्द के लिये ही लीला रूप है। इसे नश्वर जगत की भोजन क्रिया नहीं समझना चाहिए।

केवल ब्रह्म की आनन्द शक्ति आनन्द योगमाया के द्वारा पल भर में लीला रूप में सभी सामग्री उपलब्ध हो जाती है।

ते लीधां चल्लू करावियां, बेठा वांसे तकियो दर्ई।

थाल बाजोट उपाडियां, लोयुं मुख रूमाल लई॥१६॥

उसे ग्रहण करने के पश्चात् सबको चुल्लू कराया गया। सब तकियों का सहारा लेकर बैठ गये। उनके आगे से

चौकियाँ एवं थालियाँ उठा ली गयीं। सभी ने रुमाल लेकर अपना मुख पोंछा।

**भावार्थ-** चुल्लू कराने का अभिप्राय है- हाथ और मुख धुलाकर कुल्ला आदि कराना।

फोफल काथो चूना जावन्त्री, केसर कपूर घाली।

ऊपर लवंग दई करी, पान बीडी वाली॥१७॥

पान के पत्तों में कत्था एवं चूना लगाकर उसके साथ जावन्त्री, केशर, कपूर, और लौंग आदि मिलाकर बीड़े तैयार किये गये।

बीडी ते लई आरोगिया, वली लीधी सहु साथ।

साथ हुतो जे प्रीसणे, सखियोने प्रीसे प्राणनाथ॥१८॥

श्री राज जी ने सर्वप्रथम पानों का बीड़ा ग्रहण किया। इसके पश्चात् सभी सखियों ने भी पानों का बीड़ा लिया। जो सखियाँ भोजन परोस रही थीं, उन्हें स्वयं श्री राज जी ने भोजन परोसा।

**भावार्थ**— योगमाया या परमधाम में पानों का बीड़ा खाने का प्रसंग इस संसार की लोकरीति के भावों के अनुसार है। श्री मिहिरराज जी का जीव इस संसार के जिन संस्कारों में रहा था, उसके अनुसार ही शब्दातीत लीला को व्यक्त किया गया है, अन्यथा योगमाया एवं परमधाम की अद्वैत भूमिका में केवल प्रेम की ही महत्ता है। लौकिक रीतियों, जैसे— पान खाना, भोजन करना, स्नान, आदि करने को अखण्ड धाम की लीला में अनिवार्य रूप से थोपा नहीं जा सकता।

आरोग्या सहु अति रंगे, बीडी लीधी श्री मुख।

बेठा मली वातो करवा, वाणी लेवा सुख॥१९॥

परोसने वाली सभी सखियों ने बहुत ही आनन्दपूर्वक भोजन किया और अपने मुख में पानों का बीड़ा लिया। इसके पश्चात् सभी सखियाँ श्री राज जी के साथ बातचीत का आनन्द लेने के लिये उनके पास बैठ गयीं।

कहे इंद्रावती साथजी, वाले विलास जो कीधा।

चढी आव्या अंग अधिका, वचे ब्रह जो दीधा॥२०॥

श्री इंद्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! धाम धनी के साथ बातें करते-करते सखियों को विरह के उस कष्ट की विशेष याद आयी, जो प्रियतम ने आनन्दमयी लीला के मध्य में दिया था।

प्रकरण ॥४६॥ चौपाई ॥८६७॥

## राग श्री गोडी रामग्री

इस प्रकरण में सखियों तथा श्री राज जी के मध्य होने वाली वार्ता का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

वाला वालमजी मारा, जीरे प्रीतम अमारा॥टेक॥

तमे रामत रंगे रमाडियां, पण सांभलो मारी वात।

अम ऊपर एवडी, तमे कां कीधी प्राणनाथ॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं— मेरे प्राणवल्लभ! प्राण प्रियतम प्राणनाथ! आपने हमें बहुत ही आनन्दमयी रामतें खेलवाई, किन्तु मेरी बात सुनिये। आपने हमारे साथ इस प्रकार का व्यवहार क्यों किया?

**भावार्थ—** इस चौपाई में वाला, वालम, प्रीतम, तथा प्राणनाथ शब्द एकार्थवाची हैं। इसके अतिरिक्त "मारा" तथा "मारी " शब्द, जिनके अर्थ "मेरा" और "मेरी" होते

हैं, यही सिद्ध करते हैं कि सभी सखियों की ओर से यह कथन श्री इन्द्रावती जी के द्वारा कहा गया है।

अवगुण एवडा अमतणां, किहां हुता वालम।

एम अमने एकलां, मूकी गया वृन्दावन॥२॥

प्राणेश्वर! आप यह बताइये कि हमारा इतना बड़ा क्या अपराध था कि आप हमें वृन्दावन में विलखते हुए छोड़कर चले गये?

तमे अमथी अलगां थया, त्यारे ब्रह थयो अति जोर।

तमे वनमां मूकी गया, अमे कीधा घणां बकोर॥३॥

आप जैसे ही हमसे अलग हुए, उसी क्षण हम विरह की प्रचण्ड अग्नि में जलने लगीं। जब आप हमें वन में छोड़कर चले गये, तो हम आपके लिये बहुत अधिक

रोती-विलखती रहीं।

तम विना जे घडी गई, अमे जाण्यां जुग अनेक।

ए दुख मारो साथ जाणे, के जाणे जीव वसेक॥४॥

आपके बिना हमारा जो भी समय बीता, उसमें हमें ऐसा लगा कि जैसे अनेक युग बीत गये हैं। विरह की उस पीड़ा को या तो मेरा जीव विशेष रूप से जानता है या मेरी ये सखियाँ जानती हैं।

ए दुखनी वातो केही कहूं, जीव जाणे मन मांहें।

जे अम ऊपर थई एवडी, त्यारे तमे हुता क्यांहें॥५॥

विरह के उस दुःख को मैं कैसे कहूँ? उसे तो मेरा जीव अपने मन में अच्छी तरह से जानता है। जब हमारे ऊपर दुःख की ऐसी घड़ी थी, उस समय आप कहाँ थे?



हवे न मूकूं अलगो वाला, पल मात्र तमने।

तमारा मनमां नहीं, पण दुख लाग्युं अमने॥६॥

मेरे प्राणनाथ! अब मैं आपको एक क्षण के लिये भी अपने से अलग नहीं होने दूँगी। आपको तो विरह के उस कष्ट का अनुभव नहीं है, किन्तु हम जानती हैं कि वह दुःख कितना असहनीय था?

पालखी अमे करुं रे वाला, तमे बेसो तेहज मांहें।

अमें उपाडीने चालिए, हवे नहीं मूकूं खिण क्यांहें॥७॥

हम सब सखियाँ अपने बाँहों की प्रेम भरी पालकी बनाती हैं। आप उसमें विराजमान हो जाइए। आपकी पालकी को उठाकर हम सब चला करेंगीं, किन्तु अब किसी भी स्थिति में एक क्षण के लिये भी आपको छोड़ नहीं सकती हैं।

हूं अलगा न थाऊं रे सखियो, आपणी आतमा एक।

रामत करतां जुजवी, कांई दीसे छे अनेक॥८॥

हे सखियों! मैं तो कभी भी तुमसे अलग नहीं हो सकता, क्योंकि हम सबकी आत्मा एक है। भले ही रास की रामतें करते समय हमारे अनेक तन क्यों न दिखायी पड़ते हों?

सखियो वात हूं केही कहूं, जीव मारो नरम।

वल्लभ मारा जीवनी प्रीतम, अलगी करूं हूं केम॥९॥

सखियों! मैं तुमसे यह बात कैसे कहूँ? मेरा हृदय बहुत ही कोमल है। तुम सभी मेरी हृदयेश्वरी (प्राणेश्वरी) हो, प्रियतमा हो। भला मैं स्वप्न में भी तुम्हें अपने से अलग कैसे कर सकता हूँ?

तमथी अलगो जे रहूं, ते जीव मारे न खमाय।

एक पलक मांहें रे सखियो, कोटानकोट जुग थाय॥१०॥

यदि मैं तुमसे अलग रहता हूँ, तो उसे मेरा हृदय किसी भी स्थिति में सहन नहीं कर सकता? हे सखियों! तुम्हारे वियोग में एक पल का समय भी मुझे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे करोड़ों युग बीत गये हैं।

**शंका—** सभी धर्मग्रन्थों एवं तारतम वाणी के अनुसार भी जीव की उत्पत्ति आदिनारायण से है। वह सामान्यतः निराकार से पार भी नहीं जा पाता तथा महाप्रलय में आदिनारायण में लीन हो जाता है। किन्तु उपरोक्त दोनों चौपाइयों में अक्षरातीत अपने अन्दर जीव का अस्तित्व बता रहे हैं। यहाँ तक कि इसी प्रकरण की चौपाई १६ में आत्मा के साथ जीव का भी वर्णन किया गया है—

"आतमना आधार छो मारा, जीवसूं जीव सनेह।

करूं वात जीवन सखी, मुख मांहें थी कहो जेह॥"

**समाधान-** चेतन के तीन स्वरूप है- जीव चेतना, ईश्वरीय चेतना, आत्मिक चेतना। "जीव" शब्द का भाव मात्र कालमाया एवं योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही होता है। यहाँ जीव भाव को दो रूपों में प्रयुक्त किया जाता है - एक आदिनारायण की अंशीभूत चेतना व दूसरी आत्म-चेतना। इन्हीं को जीव शब्द से सम्बोधित कर दिया जाता है।

ये कथन अक्षरातीत श्री राज जी के हैं, जो उन्होंने रास के ब्रह्माण्ड में सखियों से कहे थे। यह निर्विवाद सत्य है कि रास के समय श्री राज जी के उस नूरमयी तन में जीव का अस्तित्व नहीं था, फिर भी उन्होंने अपनी आत्म-चेतना को "जीव" शब्द से संबोधित करके कहा।

इसी प्रकार दस प्राणों का कथन भी मात्र कालमाया के ब्रह्माण्ड में ही प्रयुक्त होता है, योगमाया या परमधाम में नहीं, क्योंकि वहाँ जन्म-मरण की प्रक्रिया है ही नहीं, फिर भी रास ४७/२३ में अपनी आत्म-चेतना को स्वयं धाम धनी ने "प्राण" शब्द से सम्बोधित किया है। इसी प्रकार कलश हिंदुस्तानी में स्वयं धाम धनी अपनी आत्माओं को अपने "प्राणों का प्रियतम" कहते हैं।

स्पष्ट है कि श्रीमुखवाणी के इन कथनों में जीव और प्राण (जीवन) का बाह्य अर्थ न लेकर गुह्य (लाक्षणिक) अर्थ लिया गया है और इसे आत्मपरक माना गया है। इसी प्रकार श्री श्यामा जी के श्रृंगार वर्णन में कथित "मेरे जीव के एही जीवन" का भाव समझना चाहिए।

यहाँ "जीव" शब्द का तात्पर्य "आत्मिक भाव" से ही है।

विरह तमने दोहेलो लागे, मूने तेथी जोर।

मुख करमाणां नव सहूं, तो केम करावुं बकोर॥११॥

सखियों! तुम्हें मेरे विरह का जो कष्ट हुआ है, उससे अधिक कष्ट मुझे हुआ है। तुम्हारे मुख को मुरझाया हुआ देखने की भी सहनशक्ति मेरे पास नहीं है। ऐसी अवस्था में भला मैं तुम्हें कैसे फूट-फूट कर रुला सकता हूँ?

जेम कहो तेम करूं रे सखियो, बांध्या जीव जीवन।

अधखिण अलगो न थाऊं, करार करो तमे मन॥१२॥

हे सखियों! अब तुम जैसा कहो, मैं वैसा ही करने के लिये तैयार हूँ। मेरे जीव का अस्तित्व तुमसे ही बँधा हुआ है। मैं तुमसे अब आधे क्षण के लिये भी अलग नहीं हो सकता। मेरी इस बात पर विश्वास करके तुम अपने मन को शान्त करो।

एवडा दुख ते कां करो, हूं दऊं एम केम छेह।

तमे मारा प्राणनां प्रीतम, बांध्या जे मूल सनेह॥१३॥

तुम सभी इस प्रकार दुःखी क्यों हो रही हो? भला मैं तुम्हें वियोग का ऐसा कष्ट कैसे दे सकता हूँ? तुम मेरे प्राणों की प्रियतमा (प्राणेश्वरी) हो। मेरा-तुम्हारा प्रेम-सम्बन्ध अनादि काल से है।

**भावार्थ-** अक्षरातीत के योगमाया में धारण किये गये चैतन्य नूरमयी शरीर में नश्वर जगत की तरह प्राणों (पाँच प्राण+पाँच उपप्राण) का व्यवहार नहीं है, किन्तु उपरोक्त चौपाई में प्राणों का कथन लौकिक भावना के आधार पर किया गया है। इसका वास्तविक आशय जीवनी शक्ति, चैतन्य, आत्मा, या आवेश स्वरूप से है।

प्राणपे वल्लभ छो मूने, एम करुं हूं केम।

में वृन्दावन मूकयूं नथी, तमे कां कहो अमने एम॥१४॥

तुम मेरे प्राणों की स्वामिनी हो। मैं तुम्हारे साथ ऐसा कठोर व्यवहार कैसे कर सकता हूँ? मैंने तो वृन्दावन छोड़ा ही नहीं था। तुम मुझे इस प्रकार दोषी क्यों बना रही हो?

**भावार्थ—** अक्षरातीत हास-परिहास में भी कभी मिथ्या नहीं बोल सकते। यदि वे कहते हैं कि मैं तुमसे एक पल के लिये भी कभी अलग नहीं हुआ तथा पल भर के लिये भी इस वृन्दावन को मैंने नहीं छोड़ा, तो इसमें कोई भी मिथ्या बात नहीं है। इसका रहस्य इस प्रकार है—

अन्तर्धान के समय आवेश स्वरूप श्री राज जी अपने जोश के साथ श्री कृष्ण जी का तन छोड़कर श्यामा जी के धाम हृदय में विराजमान हो गये थे। श्यामा जी पूर्ण



जाग्रत अवस्था में नहीं थीं, इसलिये उन्हें अपने धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत की पहचान नहीं हो सकी और वे भी अन्य सखियों के साथ विरह में तड़पती रहीं। इसी प्रकार, श्री इन्द्रावती जी भी वि.सं. १७१२-१७१५ तक अपने धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप की पहचान नहीं कर पायीं, और हब्बे में विरह में छः माह तक तड़पती रहीं।

इधर, श्री कृष्ण जी के तन में अक्षरातीत का जोश-आवेश न होने से सखियों को वह तन दिखायी ही नहीं दे रहा था, जबकि वह वहीं पर था। इसी प्रकरण की चौपाई ३६ में यह बात दर्शायी गयी है, जिसमें श्री राज जी कहते हैं कि मेरे और तुम्हारे बीच में एक वृक्ष आ गया था, जिसके कारण तुम मुझे देख नहीं सकी। वह वृक्ष कोई और नहीं, बल्कि श्री राज जी का श्यामा जी के

धाम हृदय में गुप्त रूप से विराजमान हो जाना था।  
 १२००० सखियों के लिये सामान्य वृक्ष के पीछे छिपे  
 हुए श्री कृष्ण जी को खोजना कुछ भी कठिन नहीं था।

चित ऊपर चालूं रे सखियो, तमे मारा जीवन।  
 जेम कहो तेम करूं रे सुंदरी, कां दुख आणो मन॥१५॥  
 सखियों! तुम्हीं मेरे जीवन की आधार स्वरूपा हो। मैं तो  
 तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही सारा व्यवहार करता हूँ।  
 अभी भी तुम जैसा कहो, मैं वैसा ही करने के लिये तैयार  
 हूँ। तुम अपने मन को इस प्रकार दुःखी क्यों कर रही  
 हो?

आतमना आधार छो मारा, जीवसूं जीव सनेह।  
 करूं वात जीवन सखी, मुख मांहेंथी कहो जेह॥१६॥

तुम सभी मेरी आत्मा की आधार स्वरूपा हो। मेरी चेतना तुम्हारी चेतना से अखण्ड प्रेम करती है। इसलिये मेरी जीवन स्वरूपा सखियों! तुम्हारे मन में जो कुछ भी है, वह अपने मुख से अवश्य कहो। मैं उसी के अनुसार तुमसे बातें करूँगा, अर्थात् तुम्हारी शंकाओं का समाधान करूँगा।

मैं तां एम न जाण्युं रे वाला, करसो एम निघात।

नाहोजी हूं तो नेह जाणती, आपण मूल संघात॥१७॥

यह सुनकर श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि प्राणेश्वर! मैं तो यह जानती ही नहीं थी कि आप हम सबके हृदय में अपने उथले वचनों से ऐसी चोट पहुँचायेंगे। अपने अनादि काल के मूल सम्बन्ध के प्रेम के कारण ही मैं आपसे प्रेम करती थी।

एम आंखडी न चढाविए तेने, जे होय पोतानो तन।

जाणिए मेलो नथी जनमनो, उथले रास वचन॥१८॥

जो अपना ही तन हो, उससे इस प्रकार रूखे वचन नहीं बोलना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा और आपका अनादि काल से चला आ रहा प्रेम नहीं था, तभी तो आपने रास में उथले (उलाहना के रूखे) वचनों का प्रयोग किया।

**भावार्थ-** आँख चढ़ाना एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ होता है- रूखे वचनों से बोलना।

अमे तूने जोपे जाणूं, बीजो न जाणे जंन।

अमसूं छेडा छोडीने ऊभा, जाणिए नेह निसंन॥१९॥

आपको हम सब सखियाँ अच्छी तरह से जानती हैं। हमारे अतिरिक्त अन्य कोई भी आपको यथार्थ रूप से

नहीं जानता है। आप तो हमसे पल्ला छुड़ाकर वैसे ही खड़े हो गये थे, जैसे खेल-खेल में बच्चे रूठ कर अलग हो जाते हैं।

**सांभलो सखियो वात कहूं, में जोयूं मायानूं पास।**

**केम रमाय रामत रैणी, मन उछरंगे रास॥२०॥**

यह सुनकर श्री राज जी कहते हैं— हे सखियों! मेरी बात सुनो! उथले वचन कहकर मैंने यह जानना चाहा था (तुम्हारी परीक्षा ली थी) कि कहीं अभी भी तुम्हारे अन्दर ब्रज की तरह माया का प्रवेश तो नहीं है। यदि वैसा ही होता, तो तुम पूरी रात इतनी उमंग में भरकर मेरे साथ रास लीला कैसे कर सकती थी?

ते माटे बोल कह्या में कठण, जोवाने विस्वास।

नव दीठो कोई फेर चितमां, हवे हूं तमारे पास॥२१॥

इसलिये तुम्हारे विश्वास की परीक्षा लेने के लिये ही मैंने कठोर शब्दों का प्रयोग किया था। मैंने तुम्हारे हृदय में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं देखा था, अर्थात् माया में आसक्ति नहीं थी। इसी का परिणाम यह है कि अब मैं तुम्हारे पास हूँ।

एनो तमे जवाब दीधो, केम रोतां मूक्यां वन।

नहीं विसरे दुख ते विरहना, अमने जे उतपन॥२२॥

पुनः सखियाँ कहती हैं— प्रियतम! यह तो ठीक है, किन्तु आप हमारे इस प्रश्न का उत्तर दीजिए कि आपने वृन्दावन में हमें रोते हुए क्यों छोड़ दिया? उस समय हमें विरह का जो कष्ट हुआ, उसे हम अभी तक भूल नहीं

पायी हैं।

घणूज साले विरह वालैया, जे दीधूं तमे अमने।

केटली वात संभारूं दुखनी, हवे सूं कहूं तमने॥२३॥

प्राणवल्लभ! आपने अन्तर्धान होकर विरह का जो कष्ट दिया, उसकी याद हमें अभी भी सताया करती है। दुःख की उन बातों को याद करके, अब मैं आपको कितना सुनाऊँ?

कां जाणो एवडो अंतर, हूं अलगो न थाऊं।

तमने मेली वनमां, हूं ते किहां जाऊं॥२४॥

प्रत्युत्तर में श्री राज जी कहते हैं – प्रिय सखियों! मैं तुमसे किसी भी प्रकार अलग नहीं हो सकता। तुम मुझसे अपने प्रति इतना भेद (अन्तर) क्यों मान रही हो? तुम्हीं

बताओ, भला, तुम्हें वन में अकेली छोड़कर मैं कहाँ जा सकता था?

विरह तमारो नव सहूं, गायूं तमारूं गाऊं।

अंग मारूं अलगूं न करूं, प्रेम तमने पाऊं॥२५॥

मैं तुम्हारा विरह किसी भी प्रकार से सहन नहीं कर सकता हूँ। जिस विरह की बातें तुम कर रही हो, वही स्थिति मेरी भी तो है। तुम सभी मेरी अंगरूपा हो। मैं तुम्हें किसी भी स्थिति में अपने से अलग नहीं कर सकता और तुमसे अनवरत प्रेम करता ही रहूँगा।

अमे ठाम सघला जोया रे वाला, क्याहें न दीठो कोय।

जो तमे हुता वनमां, तो विरह केणी पेरे होय॥२६॥

सखियाँ कहती हैं— हे प्रियतम! हमने आपको वृन्दावन



में प्रत्येक स्थान पर खोजा , किन्तु आप कहीं भी दिखायी नहीं पड़े। यदि आप उस समय वृन्दावन में होते, तो हमें विरह का असहनीय दुख क्यों भोगना पड़ता?

वन वेलडियो जोई सर्वे, घणे दुखे घणूं रोय।

घणी जुगते जोयूं तमने, पण केणे न दीठो कोय।।२७।।

हमने वृन्दावन की सभी लताओं के झुरमुट तक में आपको खोजा। विरह के अत्यधिक दुःख में हम सभी बहुत रोयीं। हमने बहुत सी युक्तियों से आपको खोजा, किन्तु आप किसी को भी किसी भी स्थान पर दिखायी नहीं पड़े।

तमे कहो छो वनमां हुता, तो कां नव लीधी सार।

अमे वन वन हेठे विलखियो, त्यारे कां नव आव्या आधार।।२८।।

प्राणाधार! आप कह रहे हैं- "मैं तो वृन्दावन में ही था।" यदि आप सचमुच ही उस समय वृन्दावन में थे, तो आपने हमारी सुधि क्यों नहीं ली ? हम सभी वन के कोने-कोने में जब भटकती हुई विलख रही थीं, उस समय आप हमारे सम्मुख क्यों नहीं आये?

**जो तमे न होता वेगला, तो कां नव सुणी पुकार।**

**अमने देखी रोवंतां, केम खम्या एवडी वार॥२९॥**

आप जरा यह बताइये कि यदि आप हमसे अलग नहीं हुए थे, तो आपने विरह-व्यथा से भरी हमारी पुकार क्यों नहीं सुनी? हमें इतनी देर तक विलख-विलख कर रोते हुए देखना आपको कैसे सहन हुआ?

बोलो ते सर्वे वात झूठी, वनमां न हुता निरधार।

नेहेचे जाणूं नाहोजी, तमे झूठा बोल्या अपार॥३०॥

प्राण प्रियतम! आप जो भी बातें कह रहे हैं, वह झूठी हैं। यह तो निश्चित है कि आप वृन्दावन में नहीं थे। हम निश्चित रूप से यह बात जानती हैं कि आप बहुत अधिक झूठ बोल रहे हैं।

**भावार्थ-** अक्षरातीत को किसी भी स्थिति में झूठा नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः सखियाँ श्री राज जी के आवेश स्वरूप को श्यामा जी के धाम हृदय में विराजमान होने के रहस्य को समझ नहीं पा रही हैं, क्योंकि उस समय पूर्ण जाग्रति नहीं थी।

जो विरह अमारो होय तमने, तो केम बेसो करार।

तम बिना खिण जुग थई, वन भोम थई खांडा धार॥३१॥

यदि आपको हमारे विरह का कष्ट होता , तो आप निश्चिन्त होकर शान्तिपूर्वक कैसे बैठे रह सकते थे? उस समय, आपके बिना हमारा एक-एक पल युगों के समान व्यतीत हो रहा था। वृन्दावन की इस मनोरम धरती पर चलने में हमें ऐसा लग रहा था कि जैसे हम तलवार की तीखी धार पर चल रही हैं।

**दाझ घणी थई देहमां, लागी कालजडे झाल।**

**जाणूं जीव नहीं रहेसे, निसरसे तत्काल॥३२॥**

प्राणेश्वर! हमारे शरीर में विरह की ऐसी अग्नि लगी थी कि हमारे हृदय से विरह के दुःख की लपटें निकल रही थीं, अर्थात् हमारा हृदय बहुत दुःखी था। हमें ऐसा लग रहा था कि हमारा जीव अब इस शरीर में रह ही नहीं सकेगा, और इसी क्षण निकल जायेगा।

**भावार्थ-** योगमाया के चेतन नूरमयी शरीरों में मृत्यु नहीं हो सकती, मात्र लीला रूप में विरह की अवस्था को दर्शाने के लिये ही इस प्रकार का वर्णन किया गया है।

एवो विरह खमी रह्यो, में जाणूं जीवनी नाल।

आसा अमने नव मूके, नहीं तो देह छाडूं तत्काल॥३३॥

हमने इतना विरह इसलिये सहन कर लिया, क्योंकि हम अपनी चेतना से आपका अनादि सम्बन्ध जानती थीं। हमें इस बात की आशा थी कि आप हमें नहीं छोड़ेंगे, अन्यथा हम सभी उसी समय अपना शरीर छोड़ देतीं।

तमे केहेसो जे एम कहे छे, नेहेचे जाणो जीव माहें।

तमारा सम जो तम विना, एक अधखिण में न खमाए॥३४॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे धनी! आप कहेंगे कि ऐसा क्यों कह रही हैं? आप इस बात को निश्चित रूप से अपनी चेतना के अन्दर बसा लीजिए कि मैं आपके बिना आधे-एक क्षण भी नहीं रह सकती। यह बात मैं आपकी सौगन्ध खाकर कह रही हूँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण में "मैं" शब्द का प्रयोग यही सिद्ध करता है कि यह कथन श्री इन्द्रावती जी के द्वारा कहा गया है, सभी सखियों के द्वारा नहीं।

सखियो तमे साचूं कह्यूं, ए वीती छे मूने वात।

तमने विरह उपनूं मारो, हूं कहूं तेहेनी भांत॥३५॥

श्री राज जी कहते हैं कि हे सखियों! तुम पूर्णतया सच कह रही हो। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ है। तुम्हें मेरे वियोग से जो कष्ट हुआ है, मैं उसकी वास्तविकता

बताता हूँ।

आपण रंग भर रमतां, बिरिख आडो आव्यो खिण एक।

तमे प्रेमे जाण्युं कई जुग वीत्या, एम दीठां दुख अनेक॥३६॥

जब हम प्रेम में रास की रामतें खेल रहे थे, उस समय हमारे और तुम्हारे बीच में एक क्षण के लिये एक वृक्ष सामने आ गया। तुम उस समय प्रेम में गहनता से डूबी थी, इसलिये एक क्षण का भी वियोग तुम्हें ऐसा लगा, जैसे कई युग बीत गये हों। इस प्रकार, तुमने बहुत अधिक दुःख देखा।

**भावार्थ—** वियोग का कारण इस जागनी ब्रह्माण्ड में धाम धनी ने अपनी तारतम वाणी के द्वारा बताया है। योगमाया के ब्रह्माण्ड में वियोग का कारण बताना, उनके घावों पर नमक छिड़कने जैसा था। प्रियतम ने वृक्ष का उदाहरण

देकर आलंकारिक भावों में कहा , जिसे प्रेम में बेसुध सखियाँ समझ नहीं सकी।

ज्यारे पसरी जोगमाया, में इछा कीधी तमतणी।

हूं वेण लऊँ तिहां लगे, मुझपर थई घणी॥३७॥

श्री राज जी ब्रज से रास मण्डल में जाने के समय की याद दिलाते हुए कह रहे हैं कि सखियों ! जब मैं कालमाया के ब्रह्माण्ड को छोड़कर योगमाया के ब्रह्माण्ड (केवल ब्रह्म की भूमिका) में आया, तो मेरे आदेश से केवल ब्रह्म की अर्धांगिनी आनन्द योगमाया ने महारास के लिये नित्य वृन्दावन की क्षण भर में ही रचना कर दी (यही योगमाया का विस्तार है)। उस समय तुम ब्रजमण्डल में ही थीं। मेरे मन में तुमसे मिलने की अथाह तड़प थी। तुम्हें ब्रज से यहाँ तक बुलाने के लिये मैंने



अपने हाथों में बाँसुरी ली , किन्तु इतने समय का भी वियोग मेरे लिये बहुत कष्टकारी था।

एक पल मांहें रे सखियो, कल्प अनेक वितीत।

ए दुख मारो जीव जाणे, सखी प्रेमतणी ए रीत॥३८॥

मुझे ऐसा लगा कि इस एक पल में ही अनेक कल्प व्यतीत हो गये हैं। इस दुःख को तो एकमात्र मेरा हृदय ही जानता है। सखियों! प्रेम की लीला ही ऐसी विचित्र है, कि उसमें पल भर के लिये भी विरह सहना कठिन होता है।

**भावार्थ—** एक कल्प में ४,३२,००,००,००० (४ अरब ३२ करोड़) वर्ष होते हैं। इस प्रकार श्री राज जी ने स्वयं के विरह को सखियों के विरह से अधिक कष्टकारी बताकर, उनका मन मुग्ध कर लिया। अक्षरातीत प्रेम के

सागर हैं। उनकी अद्वैत लीला के गहन रहस्यों को मानवीय बुद्धि से यथार्थ रूप में नहीं समझा जा सकता।

भीडी ते अंग इंद्रावती, सखी कां करो तमे एम।

जीवन मारा जीवनी, दुख करो एम केम॥३९॥

श्री इन्द्रावती जी का आलिंगन करके श्री राज जी कहते हैं— सखी! तुम ऐसा क्यों कहती हो। तुम्हें इस प्रकार दुःखी नहीं होना चाहिए। तुम तो मेरी चेतना की आधार स्वरूपा हो, अर्थात् मेरा अस्तित्व तुम्हीं से है।

चित चोरी लीधूं दई चुमन, सखी कहो करूं हूं तेम।

मारा जीव थकी अलगी नव करूं, जुओ अलवी थैयो जेंम॥४०॥

श्री राज जी ने श्री इन्द्रावती जी के मुख पर अपना प्रेम भरा चुम्बन देकर उनके हृदय को मुग्ध कर लिया और

कहने लगे- हे सखी! जैसा तुम कहो, मैं वैसा ही करूँगा। मैं अब तुम्हें कभी भी अपने से अलग नहीं करूँगा, भले ही हम रास के मध्य में और ब्रज लीला में अलग हो गये थे।

सखियो मारी वात सुणो, कां करो ते एवडो दुख।

पूरुं मनोरथ तमतणां, सघली वाते दऊं सुख॥४१॥

हे सखियों! मेरी बात सुनो! तुम इस प्रकार दुःखी क्यों हो रही हो? मैं हर प्रकार से तुम्हें सारा सुख देकर, तुम्हारी सभी इच्छाओं को अवश्य ही पूर्ण करूँगा।

मारुं अंग वालूं तमतणे, वचन वालूं जिभ्या मुख।

बोलावुं ते मीठे बोलडे, जोऊं सकोमल चख॥४२॥

मैं अपना सम्पूर्ण हृदय तुम्हें समर्पित करता हूँ तथा

अपनी जिह्वा एवं मुख से कहे हुए उथले वचनों को वापस लेता हूँ। मैं वचन देता हूँ कि मैं हमेशा ही तुमसे मधुर वाणी में बोलूँगा और प्रेम भरी कोमल दृष्टि से ही तुम्हें देखूँगा।

**हवे वाला हूँ एटलूँ माँगूँ, खिण एक अलगां न थैए।**

**जिहां अमने विरह नहीं, चालो ते घर जैए॥४३॥**

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे प्रियतम ! अब मैं आपसे केवल यही माँगती हूँ कि आप हमसे एक क्षण के लिये भी अलग न होइए। अब हमें आप उस घर में ले चलिए, जहाँ हम एक पल के लिये भी आपसे अलग न हों।

मांगी दुख सुखनी रामत, ते वाले कीधी आवार।

मन चित रंगे रमाड्यां, कांई आपणने आधार॥४४॥

हमने अपने प्राणेश्वर से परमधाम में सुख और दुःख का खेल देखने के इच्छा की थी। उसे हमारे जीवन के आधार प्रियतम ने इस बार (व्रज-रास में) दिखा दिया, तथा हमारे मन और चित्त (हृदय) को रास के आनन्द से आनन्दित किया।

वृन्दावन देखाड्यूं, रास रमाड्यां रंग।

पूर्व जनमनी प्रीतडी, ते हमणां आणी अंग॥४५॥

प्रियतम ने हमें नित्य वृन्दावन देखाया तथा हमारे साथ रास की आनन्दमयी रामतें की। परमधाम के मूल सम्बन्ध का प्रेम अब हमारे अंग-अंग में सञ्चारित (प्रवाहित) हो रहा है।

**भावार्थ-** आत्मा का जन्म नहीं होता है, बल्कि जीव का जन्म होता है। इसलिये उपरोक्त चौपाई में कथित तीसरे चरण का तात्पर्य मूल सम्बन्ध से है, जो परमधाम का है।

इंद्रावती कहे अमने वाला, भला रमाड्यां रास।

पछे ते घर मूलगे, वालो तेडी चाल्या सहु साथ॥४६॥

वाला वालमजी मारा, जी रे प्रीतम अमारा।

श्री इंद्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राणवल्लभ ! प्राण प्रियतम! प्राणनाथ! आपने हमें बहुत अच्छी तरह से रास खेलायी है। इसके पश्चात् आप हम सभी सखियों को लेकर अपने मूल घर परमधाम चल दिये।

प्रकरण ॥४७॥ चौपाई ॥९१३॥

॥ रास – इंजील सम्पूर्ण ॥